वैदिक संस्कृति पर दृगस्पर्श

वैदिक संस्कृति एवं दूरस्पर्शी

आचार्य चतुरसेन

प्रथम संस्करण : १९८३

प्रकाशक सन्मार्ग प्रकाशन
१६, यू बी बंगलो रोड, दिल्ली-११०००७

मूल्य ५० रुपये

मुद्रक : कमल प्रिंटर्स
९/५८६६, गांधीनगर, दिल्ली-११००३१

वेदों की विश्व महानता

सन् १७५७ में प्लासी का निर्णायक युद्ध हुआ, जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत की अधिराज हो गई। खासकर सम्पूर्ण बंगाल अँग्रेजों की आधीनता में चला गया। सन् १७८३ में कलकत्ते में फोर्ट विलियम उपनिवेष में एक प्रधान न्यायाधीश आये, उनका नाम सर विलियम जॉन्स था। उन्हें संस्कृत पढ़ने का चस्का था। उन्होंने अभिज्ञान शाकुन्तल और मनुस्मृति का अँग्रेजी में अनुवाद किया। यह घटना १७९४ के लगभग की है। इसी समय सर जॉन्स का स्वर्गवास हो गया। उनके सहकारी हेनरी टॉमस काल्वक ने उनके बाद उनके कार्य को बढ़ाया, और उन्होंने सन् १८०६ में 'आन-द-वेदाज' नामक एक निबन्ध वेद-विपयक लिखा। इसके कुछ वर्ष बाद ही जर्मनी के 'वान' विश्वविद्यालय में आगस्ट विल्हैल्म फान श्लैगल संस्कृत का प्रधान अध्यापक नियुक्त हुआ। उसका भाई फ्राइडिस श्लैगल भी संस्कृत का प्रेमी था। इनका एक संस्कृत भक्त साथी हर्न विल्हैल्म फान हम्बोल्ट था, जो गीता का बड़ा प्रशंसक था। उसने गीता के विषय में अपने एक मित्र को लिखा कि यह कदाचित् गम्भीरतम उच्च वस्तु है, जो संसार को दिखानी है। इसके कुछ वर्प बाद ही जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक आर्थर शोपनहार ने फ्रैन्च लेखक अंक वेटिल डूपेरिन का उपनिषद् का लैटिन अनुवाद पढ़ा और कहा—कि यह मानव मस्तिप्क की सर्वोच्च उपज है। उनके विचार अति मानुष हैं, और यह हमारी शताब्दी की सबसे बड़ी देन है। उसकी मेज़ पर लैटिन का यह ग्रन्थ 'औपनिपद्' खुला पड़ा रहता था, और वह उसकी आराधना किया करता था।

इन लेखों और विचारों से जर्मन विद्वानों का प्रेम संस्कृत-वाङ्मय के प्रति बढ़ा तथा भारतीय संस्कृति के महत्त्व की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। विण्ट निट्रेज ने भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर लिखा—

"जब भारतीय साहित्य पश्चिम में सर्वप्रथम विदित हुआ तो लोगों की रुचि भारत से आने वाले प्रत्येक साहित्यक ग्रन्थ को अति प्राचीन युग का मानने की थी। वे भारत पर इस प्रकार दृष्टि डालते थे जैसे वह मनुष्यमात्र अथवा मानव सभ्यता की दौलत के समान है।"

उसके बाद तो बहुत विद्वान् भारतीय साहित्य, विज्ञान और स्थापत्य की खोज में लग गये, और भारत की प्राचीन सांस्कृतिक सभ्यता को देखकर योरोप आश्चर्यचकित रह गया।

योरोप इस समय यद्यपि ईसाई धर्म से प्रभावित था, उसमें बहुत उदार भावना भी आ गई थी, परन्तु अभी भी योरोप प्राचीन यहूदी धर्म के प्रभाव से प्रभावित था। यहूदी विश्वास के आधार पर उनका आदि पुरुष आदम है, जिसका समय वे ईसा पूर्व ४००४ मानते हैं। लगभग यही समय विवस्वान सूर्य का है, जो मनु के पिता हैं। सूर्य का ही नाम आदित्य, आद-आदम है। परन्तु योरोप को धर्म विश्वास का पता तो था—प्राचीन हिन्दू इतिहास का ज्ञान न था। इससे योरोप में यहूदी ही प्राचीनतम सभ्यता के प्रतीक समझे जाते थे, और ईसाई धर्म उसका परिष्कृत रूप समझा जाता था। उस समय तक समूचे योरोप की यही सांस्कृतिक दृष्टि थी कि जो देश ईसाई नहीं है, वे असभ्य हैं। उन्हें ईसाई बनाकर सभ्य बनाया जाय।

जब संस्कृत का गौरव योरोप पर प्रकट हुआ तो इंग्लैंड के कुछ लोगों ने विचार किया कि ईसाई धर्म-ग्रन्थों को संस्कृत में अनुवाद कराया जाय। सन् १८११ में कर्नल बोडन ने एक विपुल दान देकर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में एक आसन्दी इस अभिप्राय से स्थापित की कि ईसाई धर्म ग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद किया जाय, जिससे उच्चवर्गी भारतीयों को ईसाई बनाने में सफलता प्राप्त हो। इस आसन्दी का प्रथम महोपाध्याय होरेस हमेन विलसन था। उसने एक पुस्तक लिखी—दि रिलीजस एण्ड फिलोसोफीकल सिस्टम आफ दि हिन्दूज। यह पुस्तक वास्तव में दो व्याख्यान थे, जो जानमूर के दो सौ पौंड के पारितोषिक के लिए लिखे गये थे और जिनका उद्देश्य छात्रों को सहायता देना बताया गया था। जान-मूर संस्कृत का ज्ञाता एक वृद्ध पुरुष था। उसके पारितोषिक का अभिप्राय था—हिन्दू धर्म के विश्वास का उत्कृष्ट खण्डन।

यूजेन बर्नफ सन् १८०१ से १८४० तक फ्रान्स में संस्कृताध्यापक रहा। उसके दो प्रधान जर्मन शिष्य थे—एक रुडल्फ रॉथ और दूसरा मैक्समूलर। आगे चलकर ये दोनों शिष्य बहुत प्रसिद्ध हो गये। डा० रॉथ ने सन् १८४६ में एक ग्रन्थ लिखा—'सुर लिट्रेत्तर इण्ट गैशिख्ट डस वेद' (वेद और वैदिक इतिहास)। इसके बाद उसने निरुक्त को छापा। परन्तु उसने, निरुक्त की अपेक्षा वेद के मंत्रों के अर्थ जर्मन पद्धति में अधिक ठीक किए जा सकते हैं, यह व्यक्त किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वेद की अपौरुषेयता की भावना को धक्का लगा। डा० रॉथ का समर्थन ह्विट्ने ने किया और इस प्रकार योरोप में निरुक्त का उल्लंघन करके वेदार्थ की एक स्वतन्त्र परिपाटी का प्रचलन हुआ।

मैक्समूलर ने वैदिक साहित्य पर बहुत परिश्रम किया। वह योरोप भर में वेद का सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता प्रसिद्ध हो गया। उसने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। स्वामी दयानन्द ने उसके वैदिक व्याख्यानों को कठोरता से खण्डित किया। मैक्समूलर ने वेदों पर परिश्रम तो बहुत किया—परन्तु वेद के सम्बन्ध में उसकी धारणा बहुत

हीन रही। सन् १८६६ में उसने अपनी पत्नी को एक पत्र लिखा था। उसमें उसने लिखा था—'मेरा यह वेदों का संस्करण तथा मेरा वेद भाष्य, उत्तरकाल में भारत के भाग्य पर भी भारी प्रभाव डालेगा। यह उनके धर्म का मूल ग्रन्थ है, और मैं निश्चयपूर्वक यह कह सकता हूँ कि उन्हें उसका दिग्दर्शन कराती गत तीन हजार वर्षों की दीर्घकालीन आस्तिक भावना को निर्मूल कर देगा।' एक बार उसने ड्यूक आव अर्गाइल को, जो तत्कालीन भारत मन्त्री थे, लिखा था कि—भारत का धर्म नष्टप्राय: है। अब यदि ईसाई धर्म उसका स्थान नहीं लेता तो दोष किसका ?

वेवर का मत था कि गीता और महाभारत पर ईसाई प्रभाव है। वेवर के समर्थक में लौरिसर और वाशवर्न-हापकिन्स ने भी वहुत कुछ लिखा। इसका परिमाण यह हुआ कि योरोप में यह मत उत्पन्न हो गया कि महाभारत ईस्वी सन् के वाद का ग्रन्थ है। वेवर और ह्विटलिंग ने एक संस्कृत कोश बनाया, जिसमें फूहन उनका सहायक था। उसमें इन विद्वानों ने अधिक परिश्रम किया और भाषा विज्ञान पर उसे आधारित किया। अध्यापक गोल्टुस्टर ने इसकी आलोचना की थी और यह रहस्य उद्घाटन किया कि रॉथ, वेवर, ह्विटलिंग, फूहन आदि विद्वान लेखक किसी रहस्यपूर्ण कारण से इस बात के लिए दृढ़ संकल्प हैं कि जैसे भी सम्भव हो, भारत का गौरव नष्ट किया जाय।

सन् १७६१ में अँग्रेज सरकार ने वेदों की महानता को समझकर उनके अध्ययन और अनुसन्धान के लिए बनारस में 'गवर्नमेंट संस्कृत कालेज' की स्थापना की। प्रारम्भ में एक वेद-अध्यापक रखा गया, बाद में सन् १८०० में चारों वेदों के अध्यापक के लिए चार अध्यापक रखे गये। परन्तु छात्रों के लिए वेदों का अर्थ समझना कठिन कार्य हो गया, अत: कालेज अधिकारियों ने वेदों का अध्ययन कठिन और अव्यवहार्य समझकर बन्द कर दिया, और केवल संस्कृत की शिक्षा दी जाने लगी। इसके १२२ वर्ष बाद, सन् १९२२ में पुन: केवल शुक्ल यजुर्वेद के पढ़ाने की व्यवस्था की गई। परन्तु पाँच प्रतिशत विद्यार्थी भी वेद पाठ्यक्रम में सम्मिलित नहीं हुए। वेदों का पाठ्यक्रम १२ वर्ष का रखा गया था, परन्तु वैदिक संहिता के केवल १४ अध्याय ही विद्यार्थी उतने समय में समझ पाते थे।

सन् १८६९ में स्वामी दयानन्द काशी गये। उस समय वहाँ के क्वीन्स कालेज के प्रिन्सिपल रुडल्फ हर्नले थे। हर्नले ने स्वामी दयानन्द से अनेक बार वैदिक सम्बन्धों पर विवाद किया था। अन्त में उसने स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में एक लेख लिखा। उसमें उसने लिखा था—दयानन्द हिन्दुओं को विश्वास दिला सकता है कि उनका वर्तमान धर्म अवैदिक है।—यदि उन्हें अपनी इस मौलिक भूल का पता चल जाय तो वे निस्संदेह हिन्दू धर्म को छोड़ देंगे। परन्तु अब वे मृत वैदिक धर्म की ओर न जायेंगे, वे इसाई ही जायेंगे। वूलर, मोनियर, विलियम्स आदि

से भी स्वामी दयानन्द की वेदविषयक वार्ता अनेक बार हुई थी, और स्वामीजी ने पाश्चात्यों की हीन भावना को ताड लिया था। भारत के अन्य विद्वान भी यह बात समझ गये थे।

मद्रास विश्वविद्यालय के इतिहास के आचार्य नीलकण्ठ शास्त्री ने लिखा था कि भारतीय समाज और भारतीय इतिहास के विषय मे पाश्चात्यो ने जो आलोचना पद्धति आरम्भ की है वह उन्नीसवी शताब्दी के योरोप की ईसाईयत के विचारो से प्रभावित है।

रायबहादुर सी० आर० कृष्णमाचार्लू ने भी लिखा था कि ये पाश्चात्य लेखक जो नई जातियो के प्रतिनिधि हैं, सस्कृति के उद्देश्य के स्थान मे भिन्न उद्देश्य से, जो प्राय अज्ञान और पक्षपातपूर्ण होता है, भारतीय इतिहास को लिख रहे हैं।

योरोप के पण्डितो की सारी प्राच्य धारणाएँ भाषा विज्ञान पर आधारित है, यह भाषा विज्ञान जर्मनी मे प्रौढ हुआ। मैक्समूलर कहता है—भाषा विज्ञान अखण्ड है और प्रागैतिहासिक युगो का एकमात्र साक्षी है। परन्तु मैक्समूलर के इस भाषा साक्ष्य पर कैनाडा के साक्षर रिचर्ड अलबर्ड विलसन ने लिखा है कि भाषा के समस्त क्षेत्र पर मैक्समूलर का व्यापक विश्लेषणात्मक अधिकार न था। इस प्रकार पाश्चात्य पण्डितो ने कुछ तो अज्ञान से और कुछ पक्षपात के कारण भारतीय सस्कृति के इतिहास को बहुत विकृत कर दिया, जिसका अनुसरण हमने भारत मे अंग्रेजी राज्य रहने तक किया। अब समय आ गया है कि हम स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा अपनी सस्कृति की छानबीन करें और अपने अतीत गौरव के सही रेखाचित्र उपस्थित करें।

त्रेता के आरम्भ मे वेदो की शाखाओ के प्रवचन आरम्भ हो गये थे। उन दिनो यज्ञ विधियाँ बहुत हो गई थी। यज्ञ क्रियाओ के भेद के कारण वेद की शाखाओ का विस्तार होने लगा। तभी से शाखागत पाठान्तरों का आरम्भ हुआ। वैदिक शाखाएँ, ब्राह्मण ग्रन्थ, जिनमे देवासुर सग्रामो की मूल कथाएँ हैं, पाश्चात्य जन उन्हें मिथ्या कल्पित (Mythology) कहते हैं। ब्राह्मण के बाद आरण्यक उपनिषद् हैं, जिनमे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सन्दर्भ हैं। कल्पसूत्र भी इतिहास के बडे साक्षी हैं। इस साहित्य मे महाभारत से पूर्वकाल के महत्वपूर्ण इतिहास सकेत प्राप्त हैं। ब्राह्मण ग्रन्थो मे पाणिनि प्रभाव से पूर्वकाल पर भारी प्रकाश पडता है। पाणिनि स्वय एक बडा साक्षी है। छान्दोग्य मे अथर्वाङ्गिरस ऋषियो के इतिहास के सकेत हैं। ब्राह्मण ग्रन्थो मे अनेक पूर्ववर्ती इतिहास पुराणो का उल्लेख है। अनेक ऋषि मुनि और विचारको के सकेत और विचार हैं।

इसके बाद वाल्मीकीय रामायण और महाभारत भारतीय सस्कृति के इतिहास के मूलस्रोत हैं। इन दोनो ग्रन्थो ने आनन्दवर्धन, भास, भवभूति, सुबन्धु, कालिदास, अश्वघोष आदि न जाने कितने महाकवियो ने प्रेरणा प्राप्त की है।

महाभारत में आदि पर्व में ही २४ पुरातन राजाओं का उल्लेख है, इसके अतिरिक्त पचास के लगभग प्रतापी राजाओं की चर्चा है। ये सब राजा कविजन कीर्तित सुप्रसिद्ध थे।

कौटिल्य अर्थशास्त्र और स्मृतियाँ प्राचीन भारतीय संस्कृति पर एक असाधारण प्रकाश डालते हैं। स्मृतियाँ, धर्मसूत्र सब मिलकर प्राचीन भारत पर एक सच्ची सांस्कृतिक दृष्टि डालते हैं।

पुराण वह अगाध निधि है, जिनमें प्राग्वैदिक काल से मध्यकाल तक के सच्चे और गूढ़ ऐतिहासिक तथ्य छिपे पड़े हैं। ब्राह्मण काल में भी पुराण पुरातन रूप में विद्यमान थे,। अथर्वांगिरस, उक्षनाकाव्व सारस्वत, शरद्वान्, वाजश्रृवा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, द्वैपायन, और ऋक्ष, वृहस्पति, इन्द्र, सविता, विवस्वान्, यम, इन्द्र-त्रिधामा, त्रिविष्ठ, भारद्वाज, गौतम, सोमशुष्म, द्वैपायन, जातुकर्ण ये पुराण वाचक पुरुष हैं। गौतम-धर्मसूत्र और आपस्तम्व-धर्मसूत्र अथवा अथर्ववेद के इतिहास से पुराण का गहरा सम्बन्ध है। उत्तरकालीन सहस्रावधि विद्वानों को इन्हीं पुराणों से प्रेरणा मिली है।

वेद मानवीय सभ्यता के आदि ग्रन्थ हैं। वेदों में आर्यजाति के अतीत जीवन के आरम्भिक सांस्कृतिक इतिहास के सूत्र हैं। वे भारतीय संस्कृति के सर्व प्राचीन स्रोत तथा दार्शनिक भाव, धर्म और विश्वास के पवित्र ग्रन्थ हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है, सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वरीय प्रेरणा द्वारा ऋषियों को समाधि अवस्था में वह मिला। ऋषियों को ज्ञान की अनुभूति ईश्वरीय प्रेरणा से प्राप्त हुई। भाषा मनुष्य निर्मित होने से वेद लिपिबद्ध हुए। वेद धर्म के मूल हैं।

वेद साहित्य में ऋक्, यजुः, साम और अथर्व ये चार संहिताएँ, तथा ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद् आते हैं। इनमें मन्त्र हैं। मन्त्र का अर्थ है गुह्य अथवा रहस्यमय। मन्त्रों के संग्रह को संहिता कहते हैं। वेदों की गूढ़ और विशाल सामग्री के अर्थ ज्ञान और व्याख्या के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना की गई। आधिदैविक तत्त्व, आध्यात्मिक विवेचन, पुनर्जन्म, आत्मा का अस्तित्व, चिकित्सा, और गार्हस्थ्यधर्म आदि विषय ब्राह्मण ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक समझाये गये हैं। ब्राह्मणों का ही एक भाग आरण्यक और एक भाग उपनिषद् कहलाता है। आरण्यकों में वानप्रस्थ जीवन तथा उपनिषदों में अध्यात्म ज्ञान और ब्रह्मविद्या का वर्णन है।

ऋग्वेद विश्व के प्राचीनतम साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन, महान और सर्वमान्य ग्रन्थ है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का सम्पूर्ण ज्ञान इसमें निहित है। धर्म, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान-कला इसके विषय हैं।

ऋग्वेद में देवताओं की स्तुतियाँ हैं। यास्क तथा अन्य विद्वान भी देवता का अर्थ 'लोकों में भ्रमण करने वाला, प्रकाशित होने वाला, सब पदार्थों को देने वाला, करते हैं। यास्क ने तीन प्रकार के देवता माने हैं—पृथ्वी स्थानीय, (अग्नि)

अन्तरिक्ष स्थानीय (वायु या इन्द्र) और द्युस्थानीय (सूर्य)। ऋग्वेद १ १३६ ११ के अनुसार पृथ्वी स्थानीय ११, अन्तरिक्ष स्थानीय ११ और द्युस्थानीय ११ सब मिलाकर ३३ देवता हैं। अग्नि और इन्द्र को प्रधानता दी है। ऋग्वेद का आरम्भ ही इस मन्त्र से है—

अग्निमीले पुरोहित यज्ञस्य देव मृत्विजम्
होतार रत्न धातमम्। १-१-१

"मैं अग्नि की उपासना करता हूँ। यह प्रकाशमान देवता, पुरोहित होता और ऋत्विर् है। यही समस्त सम्पत्ति का स्वामी है।"

यजुर्वेद मनुष्य जीवन के विकास के तीन मूलतत्व ज्ञान, कर्म और उपासना की शिक्षा देते हैं। प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र "भूर्भुव स्व तत्सवितुर्वरेणयम् भर्गो देवस्य धी मही धियो यो न प्रचोदयात्" इसी वेद का है। अदीनास्याम शरद शत भूयश्च शरद शतात् (हम सौ वर्ष जियें, दैन्य भाव से दूर रहें), तेजोऽसि तेजोमयि धेहि (हम तेजस्वी बनें), अश्मा भवतु नस्तनू (हम स्वस्थ सुदृढ हों) आदि प्रेरणाप्रद मन्त्र इसी में हैं।

सामवेद का अर्थ है ऋचा और स्वर। इसम मन्त्र गीतितत्वों से पूर्ण और उपासना प्रधान है। अग्निरूप, सूर्यरूप और सोमरूप ईश्वर का स्तवन है। विश्व-कल्याण कामना और समस्त चराचर की हितकामना भी इसमे है।

सामवेद का पाठ सस्वर पाँच अशो मे होता है—हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधान। उदात्त (आरोह), अनुदात्त (स्थायी), स्वरित (अवरोह) के स्थान पर क्रुष्ट, प्रथमा, द्वितीया, चतुर्थी, मन्द्र, और अति स्वार्थ गान-लय है।

शाकल ऋषि ने वेदा के मन्त्रों के पदपाठ की रीति चलाई। उन्होंने मन्त्रो के पदो म सन्धि विच्छेद करके उन्हे स्मरण रखना सिखाया।

अथर्ववेद मे आयुर्वेद, शरीर रचना, शरीर रोग, औषधि विज्ञान, राजधर्म, समाज व्यवस्था, अध्यात्मवाद, ईश्वर जीव और प्रकृति के स्वरूप और परस्पर सम्बन्धो की व्याख्या वर्णित है।

उपनिषदो म वैदिक कर्मकाण्डा के तत्वज्ञान की विकसित व्याख्या है। उपनिषद का भाव यह है कि जो आदमी विद्या और अविद्या दोनो को पहचानता है, वह अविद्या के द्वारा मरण को पार करके विद्या के द्वारा ब्रह्मज्ञान से अमरत्व प्राप्त करता है। शरीर को काम करने दो और समझो कि तुम्हारा शरीर काम कर रहा है तुम नही। इसी म तुम कर्मबन्ध से मुक्ति पाओगे।

मनुस्मृति कहती है—

वेद धर्म का मूल है। वेद सर्वज्ञान स समन्वित है। वेद सनातन है। वेद सबका पथप्रदर्शक है। वेद का अभ्यास सबसे बड़ा तप है।

हिन्दी भाषा वर्तमान भारत के राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन की रीढ़ की हड्डी है। ज्यों-ज्यों हम इस भाषा को देश-व्यापी, मस्तिष्कव्यापी और व्यवहारोपयोगी बनावेंगे, त्यों-त्यों देश के करोड़ों मनुष्यों के जीवन-विकास का कठिन प्रश्न हल होगा। एक समय था, जब संस्कृत-साहित्य का अध्ययन करने को पृथ्वी-भर के छात्र भारत की भयानक यात्राएँ करते थे। कितने ही चीन, यूनान, रोम और सीरिया के प्राचीन विद्वान् दुस्साहसपूर्वक संस्कृत-साहित्य का अध्ययन करने को दुरूह मार्गों से आये और समस्त जीवन अध्ययन ही में समाप्त कर गये! आज संस्कृत का युग नहीं, हिन्दी का है। संस्कृत का अधिकार जो तब था, वह आज हिन्दी भाषा का है। हिन्दी के साहित्य का अध्ययन करने के लिए विदेशों से विद्यार्थी भारतवर्ष की यात्राएँ करते हैं।

आज का हिन्दी-साहित्य अधिकतर निकृष्ट श्रेणी की अन्य भाषाओं की पुस्तकों के भ्रष्ट अनुवादों और अति साधारण अन्य पुस्तकों से भरा हुआ है। जब हम देखते हैं कि हिन्दी भाषा-भाषी सज्जन यदि किसी प्रामाणिक और प्रौढ़ विषय पर कुछ पढ़ना चाहते हैं, तो अन्य भाषाओं में ही पढ़ते हैं, तब हिन्दी के उस विराट् रूप की आशा करना हास्यास्पद-सा ही ज्ञात होता है। परन्तु जो भाषा ७० करोड़ मनुष्यों की भाषा होने का दावा रखती है, उसे आज या कल सभी भाषाओं के रत्नों से अलंकृत होना ही चाहिए, और हमें, जो हिन्दी भाषा-भाषी होने का सात्विक गर्व रखते हैं, हिन्दी को उस गरिमा तक पहुंचाना चाहिए। प्राचीन संस्कृत-साहित्य हमारे देश की एकमात्र अवशिष्ट विभूति है, जिसे गत दो सौ वर्षों से योरोप अध्ययन कर रहा है, और जिसके सम्मुख उसका अभिमान मस्तक नवा रहा है।

यह बात तो अस्वीकार की ही नहीं जा सकती कि आज हिन्दू-संतानों को इस साहित्य के ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। हिन्दू-घरों में जन्म लेकर जो बच्चे अँग्रेजी कालेजों के साँचों में ढलकर निकलते हैं, वे भारतवर्ष के इतिहास को क्या समझते हैं। आप जानते हैं? उनका इतिहास मुसलमानों के आक्रमण से प्रारम्भ होता है। हिन्दुओं की प्राचीनतम् सभ्यता, जीवन और राज्य-परिपाटियों से वे पूरे अनभिज्ञ हैं। स्कूल का वह विद्यार्थी, जो महमूद के बारहों आक्रमणों की ठीक तिथि बता सकता है, उन आर्यों के आक्रमणों और विजयों की भी कुछ खबर रखता है, जिन्होंने लाखों वर्ष प्रथम पंजाब का

आविष्कार किया था, जो दुरूह उत्तर के उत्तुंग हिमालय के आँचलों को विदीर्ण कर इस हरे-भरे भारत में आये थे, यहाँ की जगत्प्रसिद्ध सभ्यता निर्माण की थी, प्रबल राज्य स्थापित किये थे, जल-थल और आकाश में अपनी सत्ता स्थापित की थी, और प्रशान्त वातावरण में अगम्य आध्यात्म-तत्व, जो अत्यन्त प्राचीन होने पर भी आज भी वैसे ही ताजे और बहुमूल्य हैं, और योरोप जिनके सामने सिर झुकाता है—खोज निकाले थे। वह विद्यार्थी शहाबुद्दीन गोरी का दिल्ली और कन्नौज जीतने का वृत्तान्त तो जानता है, पर उन्हीं देशों में कुरुओं और प्रतापी पांचालों की प्राचीन राजधानियाँ कहाँ कहाँ थीं, यह नहीं जानता। वह जानता है कि शिवाजी के काल में दिल्ली का प्रबल बादशाह कौन था, किन्तु जब महान् बुद्ध अपने धर्म-विस्तार में लगा हुआ था, उस समय मगध की गद्दी से कौन हिन्दू-सम्राट् समुद्रों की लहरों पर हुकूमत करता था, इसका उसे शायद ही पता हो। वह अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा के इतिहास से अनभिज्ञ होगा, पर आंध्र, गुप्त, नाग आदि राज्यों के विषय में नहीं जानता। वह नादिरशाह के द्वारा दिल्ली का तख्तताऊस लुट जाने की बात तो जानता है, पर यह नहीं जानता कि इस घटना के पूर्व शकों ने किस प्रकार विक्रमादित्य पर आक्रमण किया था, और वे किस प्रकार राजपूताने की दुरूह पर्वत-श्रेणियों में छिपे रहकर हिन्दू राजपूत के रूप में बाँकी अदा से प्रकट हुए। वह कदाचित् यह बता सके कि दिल्ली के राजमहलों को किसने बनवाया था, पर यह बताना उसके लिए असंभव है कि साँची के स्तूप, एजेंटा की गुफाएं एलोरा, भुवनेश्वर और जगन्नाथ के मन्दिर कब और क्यों बने थे, किसने बनाये थे?

क्या यह पश्चात्ताप का विषय नहीं है कि ऐसे प्राचीन देश और प्राचीन जाति की सभ्यता का प्राचीन इतिहास इस तरह नष्ट हो जाय कि उस जाति के मधावी बच्चों को भी उसका कुछ ज्ञान न रहे? तब हजारों वर्ष तक इस महान् साहित्य को कंठ रखना और पीढ़ी के बाद पीढ़ी क्रम से, उसे जीवित रखना व्यर्थ हुआ? उन महान् वीतराग तपस्वियों का जीवन भर वृक्षों के पत्ते खाकर कठोर तपश्चर्या करके प्राप्त सम्पादित ज्ञान को हम देना व्यर्थ हुआ? हम लज्जापूर्वक उन पाश्चात्य विद्वानों के आभारी हैं, जिन्होंने सात तालों के भीतर से काल-ग्रसित यह साहित्य उद्धार करके हमारे सम्मुख रखा है।

—चतुरसेन

विषय-सूची

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

सातवाँ अध्याय

आठवाँ अध्याय

नवाँ अध्याय

दसवाँ अध्याय

ग्यारहवाँ अध्याय

पहला अध्याय

१. वेदों का गौरव

सारी पृथ्वी पर यदि कोई महत्वपूर्ण वस्तु है जो मानवीय कल्पना और कोमल भावना को अमर बना देती है, तो वह संस्कृत साहित्य है। ईश्वर की कृपा से संस्कृत-साहित्य, काल के थपेड़ों से बचा रहा है। इसका एक कारण यह भी है कि इस साहित्य का प्रारम्भ ही मसीह से ५०० वर्ष पूर्व से है। अब से कुछ वर्ष पूर्व तक कालिदास, जो कि मसीह की प्रथम शताब्दी का कवि है, संस्कृत साहित्य का सर्वमान्य कवि था, परन्तु बाद में भास के २२ नाटकों का पता लगने से उस मान्यता में परिवर्तन हो गया है।

संस्कृत के पूर्व प्राकृत और प्राकृत से पूर्व वैदिक भाषा का ज्ञान आर्यो के पूर्वजों को हुआ। वेद वैदिक भाषा में लिखे गये। वेद पृथ्वी भर के अत्यन्त प्राचीन और सम्माननीय पवित्र ग्रन्थ हैं, वे आर्य सभ्यता के द्योतक और हिन्दू धर्म के प्रामाणिक पथदर्शक हैं। इतने महत्वपूर्ण वेद अब तक भी सर्व साधारण के लिए परम गोपनीय, गहन और अज्ञेय बने हुए हैं।

वेद आर्यो का सबसे प्राचीन साहित्य है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी ऋग्वेद को मानवीय सभ्यता का आदि ग्रन्थ स्वीकार किया है। महर्षि दयानन्द वेदों का काल १ अरब, ९६ करोड़, ८ लाख, ५२ हजार, ९ सौ ८४ वर्ष मानते हैं। सायण भाष्यकार का भी यही मत है। इन विद्वानों के मत में वेद ईश्वर कृत साहित्य है और सृष्टि के आदि काल में उसका उदय हुआ है। तिलक ने गणित और ज्योतिष के आधार पर वेदों को मसीह से ६००० वर्ष पूर्व सिद्ध किया है और इसी मत पर प्रायः यूरोप के विद्वान स्थिर हैं।

अब से ढाई सौ वर्ष प्रथम तक भारतवर्ष वेदों के असली वैज्ञानिक रूप को भूल गया था। वेदपाठी कर्मकांडी लोग जहाँ-तहाँ, विशेषकर दक्षिण में वेद-मन्त्र पढ़ा करते थे। परन्तु उनके अर्थ आदि का उन्हें प्रायः कुछ ज्ञान न था। योरोप को तो संस्कृत साहित्य के महत्व के विषय में कुछ भी ज्ञान न था। जो जो योरोपियन

उन दिनों भारतवर्ष में आये, उन्हें भी संस्कृत साहित्य और विशेषकर वेदों के विषय में कुछ भी ज्ञान न होने पाया, क्योंकि भारतीय पंडित, जो बहुत कम वेदों के यथार्थ ज्ञाता थे, वेदों को प्रायः छिपाते और म्लेच्छों से बचाते रहते थे।

किन्तु गत डेढ़ सौ वर्षों में योरोप ने प्राचीन संस्कृत साहित्य को जीवित और महान् बना दिया, यह कहना अत्युक्ति न होना चाहिए। लगभग १५० वर्ष पूर्व सर विलियम जोन्स ने शाकुन्तलम् नाटक का अनुवाद करके योरोप का ध्यान संस्कृत साहित्य की ओर आकर्षित किया और अपनी विस्तृत और पाण्डित्यपूर्ण भूमिका में उसके विषय में लिखा—

"एशिया के साहित्य में यह एक बड़ी अद्भुत वस्तुओं में से है, जो अब तक प्रकट की गयी हैं। वह मनुष्य की कल्पनाशक्ति की उन रचनाओं में सबसे कोमल और सुन्दर है जो कि किसी काल में किसी देश में कभी भी की गयी हो।"

इसके बाद प्रसिद्ध कवि गेटे ने इस नाटक की बड़ी प्रशंसा की।

सर विलियम जोन्स ने इसके बाद 'एशियाटिक सोसायटी' स्थापित की और मनुस्मृति का अनुवाद किया। परन्तु वे प्राचीन संस्कृत साहित्य के भंडार को न पा सके। वे केवल बुद्ध के बाद के ही साहित्य की खोज में लगे रहे। सर कोलब्रुक ने भी इसी ढंग पर काम किया। वे गणित के बड़े विद्वान् थे और योरोप भर में सबसे अधिक संस्कृतज्ञाता थे। उन्होंने वेदान्त, बीजगणित और गणित पर ग्रन्थ लिखे और अन्त में सन् १८०५ में सबसे प्रथम उन्होंने योरोप को वेदों से परिचित कराया। परन्तु कोलब्रुक साहब तब तक वेदों का मूल्य न जान सके थे। उन्होंने लिखा था—'अनुवादकर्ता के श्रम का फल तो दूर रहा, पाठकों को भी उनके श्रम का फल कठिनता से मिलेगा।"

फिर डॉक्टर एच० एच० विलसन ने कोलब्रुक का अनुसरण किया। उन्होंने ऋग्वेद संहिता का अंग्रेजी अनुवाद किया। साथ ही उन्होंने संस्कृत के कई नाटकों और मेघदूत तथा विष्णुपुराण का भी अनुवाद किया।

इसी समय फ्रांस में एक बड़े विद्वान् हुए। ये बर्नफ साहब थे। जिन्होंने जिन्दावस्ता और वेदों का तारतम्य मिलाया और एक तारतम्यात्मक व्याकरण भी बनाया। उन्होंने ऋग्वेद की व्याख्या की और आर्य जाति के इतिहास पर उससे प्रकाश डाला। उन्होंने सीरिया के शंकुरूपी लेख भी पढ़े। फिर बौद्ध साहित्य का भी उन्होंने उद्धार किया। पच्चीस वर्ष तक योरोप को प्राचीन संस्कृत साहित्य की शिक्षा देकर यह विद्वान् स्वर्ग गये। इनके शिष्यों में रॉथ साहब और मैक्समूलर ने वेद साहित्य को बहुत कुछ स्पष्ट किया।

इसी बीच में जर्मन विद्वानों ने इस विषय में बहुत उद्योग किया और वे सबसे आगे बढ़ गये। रोजन साहब ने, जो राजा राममोहन राय के समकालीन थे, ऋग्वेद के प्रथम अष्टक का लैटिन भाषा में अनुवाद किया, परन्तु वे अकाल मृत्यु

होने से इस कार्य को पूर्ण न कर सके। उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् बॉप, ग्रिम और हमवोल्ट आदि के परिश्रम और प्रयत्नों से युगान्तरकारी भाषा सम्वन्धी तत्व प्रकट हुए। इन विद्वानों ने योरोप को मनवा दिया कि संस्कृत, जिन्द, ग्रीक, लैटिन, स्लेव, प्यूट्न और कोल्टिक भाषा में परस्पर सम्बन्ध है और उनका मूल एक है। इस आविष्कार से संस्कृत सव भाषाओं की माता प्रमाणित हुई और उस शताब्दी के प्रवल विद्वान् रॉथ ने यास्क के निरुक्त को अपनी वहुमूल्य टिप्पणी के साथ सम्पादित किया। इसके वाद उन्होंने हिट्वी के साथ अथर्ववेद का सम्पादन किया और वाल्हिक के साथ संस्कृत भाषा का पूर्ण कोश तैयार कर डाला। इसके वाद ही लेसन का विद्धतापूर्ण वृहत् ग्रन्थ 'Indische Alterthums Kunde' प्रकाशित हुआ। बेवर ने शुक्ल युजुर्वेद और उसके ब्राह्मणों और सूत्रों को प्रकाशित किया और अपने 'Indische Sludian' में वहुत से सन्दिग्ध विषयों की व्याख्या की तथा संस्कृत साहित्य का प्रामाणिक वृत्तान्त प्रकाशित किया। फिर वेनथी ने सामवेद का एक वहुमूल्य संस्करण प्रकाशित किया।

अन्त में मैक्समूलर ने समस्त प्राचीन संस्कृत साहित्य को समय के क्रम से सन् १८५९ में क्रमवद्ध किया। साथ ही सायण भाष्य के साथ ऋग्वेद भी प्रकाशित किया। इस प्रकार यह दुर्लभ और परमगोप्य वेद सव देशों के विद्वानों के लिए सुगम हुआ।

भारत में डॉ० हांग साहेव ने ऐतरेय ब्राह्मण का अनुवाद प्रकाशित किया। इसके वाद ऋषि दयानन्द सरस्वती ने सम्पूर्ण यजुर्वेद संहिता का हिन्दी में अनुवाद किया। साथ ही ऋग्वेद संहिता के प्रारम्भिक कतिपय मंडलों का भी हिन्दी अनुवाद किया। वंगाल के पंडित सत्यव्रत सामश्रमी ने सायण के भाष्य सहित सामवेद का एक अच्छा संस्करण प्रकाशित कराया। उन्होंने महीधर के भाष्य सहित शुक्ल यजुर्वेद को भी सम्पादित किया और एक निरुक्त का उत्तम संस्करण निकाला।

इस प्रकार दुर्धर्प वेद गत १०० वर्षों में सार्वजनिक होने की श्रेणी तक आये और अव तक उनके योरोप और स्वदेश में जो कुछ संस्करण प्रकट हुए हैं, उन सवको मिलाकर सम्पूर्ण सूची संगृहीत की गयी।

२. बौद्ध साहित्य

ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में समाज की दशा ऐसी हो गयी थी कि धर्म के स्थान पर विधान हो गये थे। ब्राह्मणों के अधिकार अपरिमित थे और शूद्रों के लिए कठोर विधान वन गये थे। उस समय वुद्ध ने अपना नवीन धर्म स्थापित किया। उसका धर्म, दया और उदारता की भित्ती पर था। उसकी दृष्टि में कष्टकर धर्म-विधान निरर्थक थे। वह दुखी जनों से सहानुभूति रखता था और उनके

लिए आत्मोन्नति और पवित्र जीवन का उपदेश देता था। उसकी दृष्टि मे ब्राह्मण शूद्र एक थे। उसका यह धर्म कुछ ही शताब्दियों मे समस्त एशिया का मुख्य धर्म हो गया।

यद्यपि वह वास्तव मे नवीन धर्म का निर्माण करने का इच्छुक न था, वह उसी प्राचीन पवित्र धर्म मे सशोधन कर रहा था और ५० वर्ष तक वह धर्म-सेवा करता रहा।

अब से ५० वर्ष पूर्व तक बौद्ध ग्रन्थो के सम्बन्ध मे लोगो को स्पष्ट ज्ञान न था। सन् १८२४ मे प्रसिद्ध पादरी डॉक्टर मार्शमेन साहेब ने बुद्ध के विषय मे इतना ही लिखा था कि उसकी पूजा सम्भवत इजिप्ट के एपिस से सम्बन्ध रखती है। इसके बाद सन् १८३३ से १८४३ तक हडसन साहब नेपाल के रेजीडेंट रहे, उन्होने बहुत से हस्तलिखित ग्रन्थ बौद्धधर्म के सगृहीत किये। उन्होंने 'बगाल एशियाटिक सोसाइटी' को ८५ बस्ते, लडन की 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' को ८५ बस्ते, 'इडिया ऑफिस लायब्रेरी' को ३० बस्ते, ऑक्सफोर्ड की 'बोडलियन लायब्रेरी' को ७ बस्ते और पेरिस की 'एशियाटिक सोसाइटी' के बर्नफ साहब को १४७ बस्ते भेजे।

इन मृतप्राय ग्रन्थो में यूजीन बर्नफ साहेब ने पुन जीवन डाला और अनवरत परिश्रम से उन ग्रन्थों को यूरोप के विद्वानो के सम्मुख रखा। उन्होंने एक ग्रन्थ लिखा, जिसका नाम 'इट्रोडक्शन टू दी हिस्ट्री ऑफ इडियन बुद्धिज्म' था और जो सन् १८४४ में छपी थी और इस विषय पर पहली वैज्ञानिक पुस्तक थी। इसके बाद तिब्बत मे हगेरिया के विद्वान् पडित एलेक्जेंडर सोमाकारोसी ने बहुत से बस्तो का पता लगाया। यह विद्वान् सन् १८२० ई० मे बुखारे से बिना धन और मित्र के निकला। स्थल पर पैदल और जल मे नौका पर वह बगदाद मे आया। वहाँ से तेहरान और तेहरान से एक काफिले के साथ खुरासान होते हुए बुखारा पहुँचा। सन् १८२२ मे वह काबुल आया, वहाँ से लाहौर और काश्मीर के रास्ते लद्दाख पहुँचा, वहाँ बहुत दिन रहा। सन् १८३१ मे वह शिमले में था, जहाँ वह एक मोटे नीले कपडे का ढीला-ढाला अगा, जो कि ऐडियो तक लटकता था और एक टोपी इसी कपडे की पहनता था। कुछ सफेद उसकी दाढ़ी थी। वह योरोपियनो से दूर रहता और सब समय अध्ययन मे लगाता था। सन् १८३२ मे वह कलकत्ते आया और डॉ० विल्सन और जेम्स प्रिसप से मिला। वहाँ बहुत दिन रहकर १८४२ म वह तिब्बत को चला—परन्तु मार्ग मे ही दार्जिलिग मे ज्वर से उसका देहान्त हो गया। बगाल की 'एशियाटिक सोसाइटी' ने दार्जिलिग मे उसकी कब्र पर एक स्मारक बनवाया है। इस महापुरुष ने बौद्ध साहित्य सम्बन्धी जो कार्य किया है वह सब वृत्तान्त 'एशियाटिक रिसर्चेस' के बीसवें भाग मे दिया गया है। इसके बाद तो तिब्बत से बहुत कुछ मसाला मिला।

चीन से वौद्ध ग्रन्थों का संग्रह करने का श्रेय सेम्युएल बील साहेव को है। यह संग्रह जापान के राजदूत ने इंग्लेंड भेज दिया था, जो 'दी सेक्रेट टीचिंग ऑफ दी थ्री टेजर्स' के नाम से प्रसिद्ध है। इस संग्रह में २००० के लगभग ग्रन्थ हैं। उसमें वे सव ग्रन्थ हैं, जो भिन्न-भिन्न शताब्दियों में भारत से चीन गये थे। इस पर चीन के पुजारियों की टिप्पणियाँ हैं।

इन पुस्तकों का प्रचार लंका में ईसा से २४२ वर्ष पूर्व किया गया था और वे उसी रूप में पाली भाषा में अव तक उपस्थित हैं। इनका मनन टर्नर फासवाल, ओडेनवर्ग, चिल्डर्स, स्पेंस हार्डी, राइज डेविड्स, मैक्समूलर, वेवर आदि विद्वानों ने किया है।

वर्मा से भी बौद्ध साहित्य का वड़ा मसाला मिला है। विगेंडेंट साहेव ने सन् १८६८ में यह मसाला प्रकट किया था। परन्तु यह कितने आश्चर्य का विषय है कि भारत के आसपास जहाँ इतना भारी साहित्य हमें इस धर्म पर मिला, जहाँ यह महान् धर्म जन्मा और १५ सौ वर्ष तक जिया, उसी भारत में कुछ भी मसाला नहीं मिला। भारत में इस प्रकार वौद्ध संस्कृति का नाश हो गया।

भारत के वाहर के देशों से हमें जो वौद्ध साहित्य मिला है, उसके दो विभाग किये जा सकते हैं। पहला दक्षिणी बौद्ध साहित्य और दूसरा उत्तरी वौद्ध साहित्य। यह साहित्य जिस रूप में, नेपाल, तिव्वत, चीन और जापान में मिला है वह उत्तरी और जो लंका और वर्मा में मिला है, वह दक्षिणी है। उत्तरी साहित्य वहुत विकृत और नवीन है क्योंकि उत्तर की जातियों ने ईसा की कुछ शताब्दियों के उपरान्त वौद्ध मत को ग्रहण किया था। चीन में वौद्ध धर्म का प्रचार ईसा की पिछली शताव्दी में हुआ और चौथी शताव्दी में वह राजधर्म वना। जापान में पाँचवीं शताव्दी में और तिव्वत में सातवीं शताव्दी में वौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। इसलिए तिव्वत आदि वौद्ध धर्म से वहुत दूर हैं और उसमें कुछ ऐसे विधान हैं जो वुद्ध को ज्ञात भी न थे।

इसके विपरीत दक्षिणी वौद्ध मत से हमारे लिए वहुत अमूल्य साहित्य प्राप्त होता है। दक्षिणीय वौद्धों की पवित्र पुस्तकें जो 'त्रिपिटक' कहाती हैं और जो लंका में प्राप्त हुई हैं, ये वही नियम हैं जो ईसा से २४२ वर्ष पूर्व निश्चय हो चुके हैं।

अव से कुछ वर्ष पूर्व यह माना जाता था कि बुद्ध की मृत्यु ईसा से ५४३ वर्ष पूर्व हुई थी, परन्तु अव यह निर्णय हो गया कि यह महान् पुरुष ईसा से ५५७ वर्ष पूर्व जन्मा और ४७७ वर्ष पूर्व मरा। उसकी मृत्यु के पीछे मगध की राजधानी राजगृह में ५०० भिक्षुओं की एक सभा हुई, उन्होंने स्मरण रखने के लिए पवित्र नियमों को गाया। इसके १०० वर्ष वाद दूसरी सभा ईसा से ३७७ वर्ष पूर्व वैशाली में हुई, जिसका मुख्य उद्देश्य उन दसों प्रश्नों पर निर्णय करना था,

जिनके विषयमें मत भेद हो गया था। इसके १३ वर्ष बाद मगध के सम्राट् अशोक ने धर्म पुस्तकों अर्थात् पिटकों को अन्तिम बार निश्चित करने के लिए ईसा से २३२ वर्ष पूर्व एक सभा पटना में की। इसी अशोक ने असीरिया, मेसिडन और इजिप्ट में धर्म प्रचारक भेजे थे। उसने ईसा से २४२ वर्ष प्रथम अपने पुत्र महेन्द्र को वही 'पिटक' लेकर लंका भेजा था। लंका के राजा तिष्य ने वह धर्म ग्रहण किया था। इस प्रकार ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी में लंका ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया और इसके १५० वर्ष बाद 'पिटक' मगध के सबसे प्रारम्भिक बौद्ध धर्म ग्रन्थ हैं और ईसा से लगभग ८८ वर्ष पूर्व लिपिबद्ध किये गये हैं।

अब यह बात तो सिद्ध हुई कि लंका के त्रिपिटक, ईसा से २४२ वर्ष पूर्व के हैं। पटना की सभा ने सभी अप्रामाणिक ग्रन्थों को सम्मिलित नहीं किया था। विनय पिटक में इस बात के प्रमाण भी हैं कि इस पिटक के मुख्य-मुख्य भाग वैशाली की सभा के पहले, अर्थात् ईसा से ३७७ वर्ष से अधिक पुराने हैं क्योंकि उन भागों में दसों प्रश्नों के विवाद का कोई उल्लेख नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि विनय पिटक के मुख्य भाग—दूसरी सभा के पहले के, अर्थात् ईसा से ३७७ वर्ष पूर्व के हैं।

निश्चय ही ये तीनों पिटक, बुद्ध की मृत्यु के १००-२०० वर्ष के बाद बनाये गये हैं। क्योंकि इनमें गंगा की घाटी के हिन्दुओं के जीवन और हिन्दू राज्यों के इतिहास का वर्णन है। साथ ही बुद्ध के जीवन कार्य और उसकी शिक्षाओं का अधिक प्रामाणिक और कम बनावटी वृतान्त मिलता है। बौद्ध के जीवन की वास्तविक घटनाएँ, तत्कालीन हिन्दू समाज और राजसत्ता की दशा हम जानना चाहें तो हम इन्हीं 'त्रिपिटक' के द्वारा जान सकते हैं। ये तीनों पिटक 'सुत्त पिटक', 'विनय पिटक' और 'अभिधर्म पिटक' के नामों से प्रसिद्ध हैं। लंका में ये ग्रन्थ पिटारों में रक्खे गये, इसलिए इनका नाम 'पिटक' रक्खा गया।

'सुत्त पिटक' में वे बातें हैं जो स्वयं बुद्ध ने कही हैं।

'विनय पिटक' में भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए आचरण सम्बन्धी नियम हैं। ये भी बुद्ध की आज्ञा से बनाये गये हैं।

'अभिधर्म पिटक' में भिन्न-भिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ है, अर्थात् भिन्न-भिन्न लोकों में जीवन की अवस्थाओं पर, शारीरिक गुणों पर, तत्वों पर, और अस्तित्व के कारणों पर विचार है।

यह स्पष्ट है कि महा बुद्ध ने इस साहित्य का प्रचार सर्वसाधारण की भाषा में किया था। चुल्लवग्ग (५।३३।१) में लिखा है कि दो भिक्षु ब्राह्मण थे, वे भाई थे। इनका नाम यमेलू और टेकुल था। उन्होंने बुद्ध से कहा—

'प्रभु, इस समय भिन्न जाति और गोत्र के लोग भिक्षु हो गये हैं। वे अपनी-अपनी भाषा में बुद्ध के वाक्यों को नष्ट करते हैं। इस कारण हमें आज्ञा दीजिये

कि हम बुद्ध वाक्यों की संस्कृत छन्दों में रचना करें।'

बुद्ध ने कहा—'हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम बुद्धों के वाक्यों को अपनी ही भाषा में सीखो।'

३. त्रिपिटक (संस्कृत) महायान (उत्तर बौद्ध साहित्य)

महायान का साहित्य उत्तरीय साहित्य है और इसका सम्पादन ईसा की पहली शताब्दि में शक राजा कनिष्क के काल में किया गया था। इस राजा ने जालन्धर में ५०० भिक्षुओं की चौथी सभा बुलायी थी, जो आर्यथिपूर्णक और वसुमित्र की अध्यक्षता में हुई थी। इन्हीं पाली त्रिपिटक के आधार पर उसकी स्वतन्त्र टीका रूप में तीन श्रेणी के साहित्य का निर्माण किया, जिनके नाम—सूत्र उपदेश, विनय विभाषा, और अभिधर्म विभाषा है। इनमें अभिधर्म विभाषा ग्रन्थ कात्यायनि के अभिधर्म ज्ञान प्रस्थान शास्त्र की टीका है, जो कि पाली अभिधर्म पिटक की टीका है। यह ग्रन्थ कनिष्क से १०० वर्ष पूर्व बुद्ध निर्वाण के ३०० वर्ष वाद वन चुका था। इस प्रकार बौद्ध धर्म को संस्कृत रूप देने का श्रेय कनिष्क को ही है।

इसी साहित्य में प्रख्यात वौद्ध दर्शन है। इसके चार भेद हैं। (१) सौमान्तिक, (२) वैभापिक, (३) योगाचार, (४) माध्यमिक।

(१) सौमान्तिक दर्शन—आन्तरिक जगत को स्वीकार करता है। वाह्य जगत् को अनुमान से मानता है। राजगृह में पहली परिपद् जो हुई थी उसके निर्णय को 'थेरवाद' नाम दिया गया है। उसी के सिद्धान्तों के आधार पर इस दर्शन की रचना हुई। वैशाली की दूसरी सभा के निर्णीत सिद्धान्तों को 'महासाधिकवाद' कहा गया है। उसे गौण रूप से यह दर्शन स्वीकार करता है। वौद्ध समुदाय में इसे 'वाह्यार्थास्थिरवादी' कहा गया है। इस दर्शन का प्रारम्भिक रूप देने वाला कनिष्ककालीन धर्मोत्तर या उत्तरधर्म नाम का आचार्य था, किन्तु चीनी यात्री ह्यूनसांग के मत में इसका आचार्य तक्षशिला का प्रसिद्ध आचार्य और प्रवर्तक कुमारलव्ध था, जो कि नागार्जुन और अश्वघोप का समकालीन था। श्रीलव्ध आचार्य ने सौमान्तिक ग्रन्थ 'विभापा शास्त्र' लिखा है।

(२) वैपाभिक दर्शन—वाह्य और आन्तरिक जगत् को मानता है। और प्राय: टीकाओं पर निर्भर करने से वैभापिक नाम पड़ा।

(३) योगाचार—निगमद्वैतवादी—केवल ज्ञान ही को मान्य करता है। ईस्वी ३०० में इसकी रचना हुई है।

(४) माध्यमिक—शून्याद्वैतवादी। नागार्जुन सिद्ध इसके प्रवर्तक हैं। इसके सिद्धान्तों का वर्णन प्रज्ञापारमिता में भी मिलता है।

४. षड्दर्शन

भारतीय षड्दर्शन का बीज ऋग्वेद के अन्तिम मण्डल और अथर्ववेद मे देख पडता है। यहाँ पर सृष्टि के विकास, आरम्भ और उस नित्य नियम का वर्णन किया गया है, जिससे उसकी उत्पत्ति और प्रलय होती है। यजुर्वेद मे भी रूपक द्वारा सृष्टि उत्पादन का रहस्य वर्णन किया गया है। जिस प्रकार ब्राह्मणो ने वेदो मे यज्ञाडम्बर और उपनिषदो ने आत्मतत्व निरूपण किया है, उसी प्रकार षड्दर्शनो ने वेदो से प्रगटजगत् और सूक्ष्म चैतन्य शक्तियो का सम्बन्ध तथा प्रगट-जगत् का आभ्यन्तर एव मूल कारण वैज्ञानिक दृष्टि से खोज निकालने की चेष्टा की है। यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त तीनो सम्प्रदायो ने वेद को तीन भिन्न भिन्न दृष्टिकोणो से देखा समझा और समझाने की चेष्टा की है। परन्तु इसम सन्देह नहीं कि ऐसा एकाएक नही हो गया है। अवश्य ही युग धर्म या सामाजिक जीवन के विकास का इन तीनो महासाहित्य के निर्माण मे पूर्ण हाथ है। जब वन्य जीवन नष्ट होने लगे, नागरिकता बढने लगी, राजा का निर्माण हुआ, प्रजा म प्रौढता आयी, तब एक विशेष उद्देश्य के कारण प्राचीन होम पद्धति ने आडम्बरमय यज्ञो का रूप धारण किया और वे सभी वेद प्रतिपादित हैं, यह ब्राह्मणो द्वारा समर्थन किया गया। इसके बाद यज्ञो की अन्धपरम्परा उनके द्वारा एक मूढ दल को अत्यन्त सम्पन्न और अनधिकार प्रबल होते देख तथा जनता मे ज्ञान तत्व की वृद्धि की आवश्यकता देख मननशील व्यक्तियो ने सूक्ष्म जीवन तत्वो को विचारा, आत्मा का निदर्शन किया और वह वेद प्रतिपादित है, यह उपनिषद् स प्रमाणित किया। इसके बाद यह स्वाभाविक था कि जहाँ महान् यज्ञो के काल म करोडो की सम्पदा खर्च करने वाले साम्राज्य बन गये थे और नागरिक जीवन पूर्ण सम्पन्न हो गया था—साथ ही उपनिषद् का अध्यात्मवाद बहुत सुन्दर एव सम्पन्न हो गया था, तब बाह्य जगत, जगत का सूक्ष्म और अविनाशी मूल कारण, तथा उससे उपनिषद् के अविनाशी चैतन्य तत्व का सम्बन्ध वर्णन किया जाये। इसीलिए दर्शनो का प्रादुर्भाव हुआ और उन्हे भी परम्परा के ढग पर वद मूलक घोषित किया गया। इन तीनो महान् आर्य साहित्यो मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात तो यह है कि जहाँ पर उनके विषय परस्पर भिन्न हैं वहाँ भाषा तथा कथन के ढग भी इतने भिन्न हैं कि पृथ्वी भर के किसी साहित्य मे इतनी भिन्नता नहीं।

यह बात निर्विवाद है कि दर्शनो मे कपिल के सांख्य की बडी कीर्ति है और वही सबसे प्राचीन एव आदि दर्शनशास्त्र हैं। इस अति संक्षिप्त ग्रन्थ मे इस महान् पुरुष न एक बहुत बडे रहस्य को कदाचित् अपने ढग पर पृथ्वी भर मे सर्वप्रथम प्रगट किया है। उन सब बातों का केवल बुद्धि से उत्तर देने का सबसे

पहला उद्योग है, जो जगत् की उत्पत्ति मानव स्वभाव और सम्बन्ध तथा भविष्य-वाद के सम्बन्ध में विचारशील मनुष्य के हृदयों में उत्पन्न होती हैं। दर्शनों पर मूलसूत्र दर्शनों के सिवा अन्य ग्रन्थ भी हैं, जिनकी प्रतिष्ठा मूल के समान है।

यद्यपि यह सत्य है कि गौतम का 'न्याय दर्शन' बहुत बड़ी वस्तु है। परन्तु दर्शनों की कीर्ति का श्रेय तो कपिल को ही है। इस महात्मा ने दुःखवाद का अति सूक्ष्म विवेचन किया है। बुद्ध ने निश्चय इसी सांख्यवाद के आधार पर अपना महान् धर्म चलाया था। यह दार्शनिक अज्ञेयवादी है। कपिल का सांख्य न तो सर्वसाधारण को कोई उपदेश देता है, और न उससे कुछ सहानुभूति ही रखता है। इस दर्शन में सृष्टि उत्पत्ति, मनुष्य स्वभाव, उसका भविष्य, भाग्य इन विषयों का केवल बुद्धि से उत्तर समाधान किया गया है। सांख्य में प्रकृति, पुरुष, महतत्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूत, ग्यारह इंद्रियाँ इन २५ तत्वों की व्याख्या है। सर्वप्रथम सांख्य का एक अच्छा संस्करण अनुवाद और टिप्पणियाँ सहित डॉ० वेलेण्टाइन ने प्रकाशित कराया था। सांख्य पर अनेक महत्वपूर्ण अन्य ग्रन्थ भी हैं, जिसमें ईश्वर कृष्ण की सांख्यकारिका एक छोटी-सी ७२ श्लोकों की पुस्तक अति महत्वपूर्ण है, जिसका भाष्य गौड़पाद और वाचस्पति ने किया है और लैटिन अनुवाद कोलब्रुक तथा विलसन साहब ने किया है। दूसरा अभी डेवीज साहब ने किया है। डेवीज साहब की टिप्पणियाँ बहुत ही अमूल्य हैं। जर्मनी का सबसे नवीन दर्शन शास्त्र जो शोपेनहार और वानहार्टमैन के १८६९ के सिद्धान्त हैं, सर्वथा कपिल के अनुरूप है।

पंतजलि के योगदर्शन में अज्ञेयवादी सांख्य दर्शन के परमात्म तत्व को अधिक विकसित किया गया है। ये वही पंतजलि हैं, जिन्होंने पाणिनि का कत्यायन द्वारा विरोध होने पर उनके समर्थन में महाभाष्य की अमर रचना की थी। योग का अँग्रेजी अनुवाद डॉ० राजेन्द्रलाल मित्र ने किया है। इसमें १९४ सूत्र हैं और वह चार अध्यायों में विभक्त है। योग की साधना का भारत में बहुत महत्व है और उसकी बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्रसिद्ध हैं। इसीलिये यह दर्शन बहुत प्रसिद्ध हो गया है।

गौतम को भारत का अरस्तु कहा जाता है। 'गौतम न्याय' हिन्दुओं का प्रसिद्ध तर्कशास्त्र है। यह ५ अध्यायों में विभक्त है। इसमें दो बातें हैं—(१) प्रमाण, (२) प्रमेय। इन दोनों मुख्य विषयों के अन्तर्गत १४ विषय और हैं—(१) संशय, (२) प्रयोजन, (३) दृष्टान्त, (४) सिद्धान्त, (५) अवयव, (६) तर्क, (७) निर्णय, (८) वाद, (९) जल्प, (१०) वितण्डा, (११) हेत्वाभास, (१२) छल, (१३) जाति (१४) निग्रहस्थान।

इस दर्शन में तर्क की इतनी पूर्णांग रीति है कि जिसके सन्मुख प्राचीन यूनान तथा मध्यकालीन अरब और योरोप के विद्वानों के विवेचन फीके हैं।

जिस भांति साख्य की पूर्ति योग है, उसी प्रकार न्याय की पूर्ति कणाद का वैशेषिक है। उनका मुख्य सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक पदार्थ परमाणुओं से बने हैं। कणाद पदार्थों के ७ विभाग करते हैं— (१) द्रव्य, (२) गुण, (३) कर्म, (४) सामान्य, (५) विशेष, (६) समवाय और (७) अभाव। पहले विभाग के ६ भेद। दूसरे के १७ भेद। तीसरे के ५ भेद किये गये हैं। चौथे में गुण जाति के विचार का आदि कारण है। पांचवें मे व्यक्तित्व सामान्य वस्तुओ को समाज से रहित बनाता है, छठे मे समवाय वस्तु और सातवें मे अभाव का वर्णन है।

अब रहे जैमिनी का पूर्व मीमासा और व्यास का वेदान्त, जो कि दर्शन-शास्त्र के क्रान्तिकारी अग कहे जा सकते हैं। आक्षेपवाद के विरुद्ध लोकमत होने का इनमे खासा परिचय मिलता है, जिसे कुमारिलभट्ट ने सातवी शताब्दि मे अपना प्रसिद्ध वार्तिक लिखकर सम्पादन किया था। उसी प्रकार उत्तरमीमासा पर प्रसिद्ध शकराचार्य ने शारीर-भाष्य करके उसकी रक्षा की थी। इस प्रकार पौराणिक युग के इन दोनो विद्वानो ने इन दोनो दर्शनों को प्राचीनवाद से युक्त कराया। पूर्व मीमासा में १२ पाठ और ६० अध्याय हैं। इन पर सबर स्वामी भट्टकी एक प्राचीन वार्तिक भी है। बारहो पाठो मे—पहले मे व्यक्त धर्म, दूसरे, तीसरे और चौथे म धर्म भेद, उपधर्म और धर्मपालन के उद्देश्य हैं। पांचवें मे धर्म क्रम और छठे मे उनका आवश्यक गुण है। सातवें और आठवें पाठो मे अव्यक्त आज्ञाओ का वर्णन है, नवें पाठ मे अनुमान साध्य परिवर्तनो पर वाद-विवाद किया गया है। दसवें अध्याय मे अपामन, ग्यारहवें मे गुण, बारहवें मे समपदस्थ फल का विचार किया गया है। बस, ग्रन्थ समाप्त होता है।

जिस प्रकार मीमासा ब्राह्मणो का सार है, उसी प्रकार वेदान्त उपनिषदो का सार है। इसमे कपिल के सिद्धान्तो, और पातजल योग का उल्लेख है। कणाद का परमाणुवाद भी इसम है, गौतम के न्याय का विवाद भी उसमे है। जैन, बौद्ध और पाशुपत धर्मों का भी उल्लेख है। यह अवश्य ही मसीह के जन्म के लगभग का ग्रन्थ है।

इसमे ४ पाठ हैं और प्रत्येक पाठ मे ४ अध्याय हैं।

५. उपनिषद्

उपनिषदो म धर्म की प्रबलता, एकाग्रता और दार्शनिकता ऐसी है कि हजारो वर्ष बाद भी आज उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। इनके मुख्य विषय ये हैं—

(१) सर्वगत आत्मा का सिद्धान्त।

(२) सृष्टि की उत्पत्ति का सिद्धान्त।

(३) आत्मा के पुनर्जन्म का सिद्धान्त।

(४) आत्ममुक्ति पाने का सिद्धान्त।

वैसे तो उपनिषद् ग्रन्थ बहुत उपलब्ध हैं, परन्तु उनमें से निम्न ग्यारह प्रसिद्ध हैं—

(१) ईश
(२) केन
(३) कठ
(४) प्रश्न
(५) मुण्डक
(६) माण्डूक्य
(७) ऐतरेय
(८) तैत्तरेय
(९) छान्दोग्य
(१०) बृहदारण्यक
(११) श्वेताश्वेतर

प्रसिद्ध जर्मन लेखक दार्शनिक शोपनहार ने इन्हें पढ़कर लिखा था—'प्रत्येक पद से गहरे, नवीन और उच्च विचार उत्पन्न होते हैं। और सबमें उत्कृष्ट पवित्र और सच्चे भाव वर्तमान हैं। भारतीय वायु मण्डल हमें घेरे हुए है। समस्त संसार में मूल पदार्थों को छोड़कर किसी अन्य विद्या का अध्ययन ऐसा लाभकारी और हृदय को उच्च बनाने वाला नहीं है जैसा कि उपनिषदों का। इसने मेरे जीवन को शान्ति दी है और मृत्यु के समय मुझे शान्ति देगा।'

यह बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि बुद्ध जन्म से प्रथम उपरोक्त ग्यारहों उपनिषद् भारत में प्रचलित थे और उनकी विचार शैली का बुद्ध के जीवन और विचार शैली पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। यह निश्चय है कि 'ब्राह्मणों' का रचना काल महाभारत काल के लगभग है। और चूंकि उपनिषद् की रचना 'ब्राह्मणों' के विरोध में वेदों को विशुद्ध ज्ञान कांड के रूप में देखने और समझने के अभिप्राय से हुई थी, अतः यह एक इतनी जबरदस्त क्रान्ति थी कि जो एक हजार वर्ष से कम में इतनी प्रबलता प्राप्त नहीं कर सकती थी। इसलिए हमको यह मानना पड़ेगा कि महाभारत के बाद उपनिषदों का निर्माण होने तक १००० वर्ष अवश्य लग गये थे। परन्तु उपनिषदों में सूत्र ग्रन्थों के उल्लेख जहाँ-तहाँ हैं, खासकर प्रातिशाख्य सूत्रों का जिक्र इस बात का प्रमाण माना जा सकता है कि सूत्र ग्रन्थों की रचना का विरोध भी उपनिषद् निर्माण का एक मुख्य कारण था। हम पीछे बता चुके हैं कि सूत्र ग्रन्थों का निर्माण ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्तिम काल तक हुआ है—तब यह मानना पड़ेगा कि उपनिषद् ग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थों और सूत्रों के वर्णित विधानों के

विपरीत प्रचार करने के लिए निर्माण किये गये थे। और इसलिए उनका निर्माण काल महाभारत से १००० वर्ष बाद का है और बुद्ध के काल म वे पूर्ण होकर प्रचलित थे। इतना प्रचार भी ५०० वर्ष से कम मे यह साहित्य नही पा सकता था। अत अब से लगभग ४००० वर्ष पूर्व उपनिषद् काल का अनुमान लगाया जा सकता है। तिलक ने उपनिषद् काल मसीह से १००० से १६०० वर्ष पूर्व माना है, अर्थात् ४००० म कुछ कम।

६. स्मृतियाँ

मनु के मिवा हम याज्ञवल्क्य १६ और स्मृतियों की सूची बताता है। यद्यपि इस समय तो ५० से ऊपर स्मृतियाँ मिलनी हैं, परन्तु हम इन्ही १६ का अति सक्षिप्त परिचय देंगे। मनु महित उनकी सख्या २० हो जाती है जो इस प्रकार है—

(१) मनु
(२) अत्रि
(३) विष्णु
(४) हारीत
(५) याज्ञवल्क्य
(६) उश्नस
(७) अगिरस
(८) यम
(९) आपस्तम्ब
(१०) सम्वर्त
(११) कात्यायन
(१२) बृहस्पति
(१३) पाराशर
(१४) व्यास
(१५) शख
(१६) लिखित
(१७) दक्ष
(१८) गौतम
(१९) सातातप
(२०) वशिष्ठ

पराशर भी इन्हीं २० ग्रन्थों के नाम देता है, केवल उसने विष्णु के स्थान पर कश्यप, व्यास के स्थान पर गर्ग और यम के स्थान पर प्रचेतस लिखा है। उन २० ग्रन्थों में गौतम, आपस्तम्ब और वशिष्ठ दार्शनिक काल से और मनु बुद्ध काल से सम्बन्ध रखता है। परन्तु शेष १६ ग्रन्थ भी सम्भवतः प्राचीन सूत्र ग्रन्थों के आधार पर बनाये गये हैं। परन्तु वे अपने आधुनिक रूप में पौराणिक काल से अथवा मुसलमानों के भारत विजय की पीछे की शताब्दियों से सम्बन्ध रखते हैं।

(१) अत्रि—इसकी जो प्रति हमने देखी है। वह एक छोटा सा ग्रन्थ है, जिसमें ४०० श्लोकों से कम हैं। वह लगातार श्लोक छन्द में लिखा गया है, उसमें आधुनिक शास्त्रों तथा प्राचीन वेदों के अवलोकन करने की आवश्यकता दिखलाई गयी है। फल्गू नदी में स्नान करने और गदाधर देव के दर्शन करने का उपदेश दिया गया है। शिव और विष्णु के चरणामृत पीने का उपदेश किया गया है, सब म्लेच्छों से घृणा प्रगट की गयी है। विधवाओं को जलाने की रीति का उल्लेख है। और उसमें उसके मुसलमानों के विजय के उपरान्त के बनाये जाने अथवा किये जाने के सब चिह्न हैं।

(२) विष्णु—१६ धर्मशास्त्रों में केवल विष्णु ही गद्य में है। और इस कारण वह सबसे अधिक प्राचीनता का स्वत्व रख सकता है। डॉक्टर जौली साहेब ने काथक कल्पसूत्र के गृह्यसूत्र से उसकी घनिष्ठ समानता दिखलायी है। यह सूत्र निःसन्देह दार्शनिक काल का है। डॉक्टर बुहलर के साथ वे भी इस बात का समर्थन करते हैं कि विष्णु धर्म शास्त्र का अधिकांश वास्तव में उसी कल्प सूत्र का प्राचीन धर्मसूत्र है। फिर भी यह प्राचीन ग्रन्थ कई बार संकलित और परिवर्तित किया गया जान पड़ता है। डॉक्टर बुलहर का यह मत है कि समस्त ग्रन्थ को विष्णु के किसी अनुयायी ने संकलित किया था और अन्तिम तथा भूमिका के अध्यायों को (पद्य में) किसी दूसरे तथा उसके पीछे के समय के ग्रन्थकार ने बनाया था। इस प्रकार इस ग्रन्थ के कई बार बनाये जाने का समय चौथी शताब्दि से ११वीं शताब्दि तक है।

अध्याय ६५ में प्राचीन और सच्चे काव्यक मंत्र दिये हैं, जो वैष्णव कार्य के लिए परिवर्तित और संकलित किये गये हैं। अध्याय ६७ में सांख्य और योग दर्शनों का वैष्णव धर्म के साथ सम्बन्ध करने का यत्न किया गया है। अध्याय ७८ में आधुनिक सप्ताह के दिनों (इतवार से लेकर शनीवार तक) का उल्लेख है, जो प्राचीन ग्रन्थों में कहीं नहीं मिलता है। अध्याय ८०, श्लोक ३ और २५, में विधवाओं के सती करने का उल्लेख है। अध्याय ८४ म्लेच्छों के राज्य में श्राद्ध करने का निषेध करता है, और अध्याय ८५ में लगभग ५० तीर्थ स्थानों का वर्णन है। भूमिका का अध्याय, जो कि लगातार श्लोकों में है और जिसमें पृथ्वी एक

सुन्दर स्त्री के रूप मे क्षीर सागर मे अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ लेटे हुए विष्णु से परिचित करायी गयी है, सम्भवतः इस आधुनिक ग्रन्थ के सौ अध्यायो मे सबसे पीछे के समय का है।

इस प्रकार हमारे प्राचीन ग्रन्थो में परिवर्तन और सम्बन्ध स्थापित किया गया है जो कि प्रत्येक नये धर्म तथा प्रत्येक आधुनिक रीति के सहायक के लिए हर्ष का, परन्तु इतिहास जानने वाले के लिए शोक का विषय है।

(३) हारीत—यह दूसरा प्राचीन ग्रन्थ है जो कि बाद के समय मे पूर्णतया फिर से लिखा गया है। हारीत का उल्लेख बौधायन, वशिष्ट और आपस्तम्ब मे किया है जो सब दार्शनिक काल के ग्रन्थ हैं। मिताक्षर और दाय भाग मे हारीत के जो उद्धृत वाक्य पाये जाते हैं, वे सब गद्य सूत्रो मे हैं। परन्तु फिर भी हारीत के जिस ग्रन्थ को हमने देखा है, वह लगातार श्लोको मे है और उसका विषय भी आधुनिक है। पहले अध्याय म यह पौराणिक कथा है कि विष्णु अपनी पत्नी श्री के साथ एक कल्पित नाग पर जल मे पडे हैं और उनकी नाभि मे एक कमल उत्पन्न हुआ जिसमे म ब्रह्मा उत्पन्न हुए जिन्होने ससार की सृष्टि की। दूसरे अध्याय म नरसिह देव की पूजा का वर्णन है। और चौथे अध्याय मे विष्णु की पूजा, और सातवें अर्थात् अन्तिम अध्याय मे योग शास्त्र का विषय है।

(४) याज्ञवल्क्य—सॅजलर और लेसन साहब याज्ञवल्क्य का समय विक्रमादित्य के पहले परन्तु बौद्धधर्म के प्रचार के उपरान्त निश्चित करते हैं। आधुनिक खोज से विद्वान् लोग मनु का समय ईसा के १ या २ शताब्दी पहले या उपरान्त निश्चित कर सके हैं और चूँकि याज्ञवल्क्य निस्सन्देह मनु के उपरान्त हुआ, अतएव उसका सम्भव समय ईसा के उपरान्त पाँचवी शताब्दी अर्थात् पौराणिक काल के प्रारम्भ के लगभग है। इस ग्रन्थ के विषय को देखने स यह सम्मति कुछ दृढ होती हैं। अध्याय २, श्लोक २९६ मे बौद्ध भिक्षुणियो का उल्लेख है और बौद्धो की रीति और सिद्धान्तो के बहुत से उल्लेख हैं। मनु उच्च जाति के मनुष्यो को शूद्र जाति की स्त्रियो से विवाह करने का अधिकार देता है। याज्ञवल्क्य इस प्राचीन रीति का विरोध करता है (१,५६) परन्तु बहुत-सी बातो मे याज्ञवल्क्य उत्तर काल के धर्मशास्त्रो की अपेक्षा मनु से अधिक मिलता है। और सब बातो पर विचार कर उपरोक्त १६ शास्त्रो मे से केवल याज्ञवल्क्य का ही ग्रन्थ ऐसा है जिस पर पौराणिक काल की बातो के लिए पूर्णतया विश्वास किया जा सकता है। यह ग्रन्थ तीन अध्यायो मे है और उसमे एक हजार से अधिक श्लोक हैं।

(५) उशनस—अपने आधुनिक रूप मे यह ग्रन्थ बहुत पीछे के समय का बनाया हुआ है। उसमे हिन्दु त्रिमूर्ति का (२,५०) और विधवाओ के आत्म-बलिदान का (३,११७) उल्लेख है, समुद्र यात्रा करने वालो को अपराधी

ठहराया है (४,३३), और पाप करने वालों के लिए अग्नि या जल में आत्म-बलिदान करने के लिए लिखा है (८,३४)। बहुत से नियमों, निषेधों और प्रायश्चितों की इस ग्रन्थ में विशेषता पाई जाती हैं। यह ग्रन्थ नौ अध्यायों में है और इसमें लगभग ६०० श्लोक हैं।

(६) अंगिरस—इस नाम का जो ग्रन्थ हमें प्राप्त है, वह सत्ताईस श्लोक का एक छोटा-सा अध्याय है। यह आधुनिक समय का ग्रन्थ है और नील की खेती को उत्तम जातियों के लिए अयोग्य, अपवित्र व्यापार लिखता है।

(७) यम—दार्शनिक काल में वशिष्ठ ने यम का उल्लेख लिखा है। परन्तु जो यम स्मृतियाँ आजकल वर्तमान हैं, वे आधुनिक समय की बनी हुई हैं। वशिष्ठ का तात्पर्य उनसे नहीं हो सकता। हमें ७८ श्लोकों का एक छोटा-सा ग्रन्थ अब प्राप्त है। अंगिरस के समान उसमें भी धोबी, चर्मकार, नाचने वालों, बहद, कैवर्त्त, मेद और भील लोगों को अपवित्र जाति लिखा है।

(८) संवर्त—यह आधुनिक समय का एक पद्य ग्रन्थ है, जिसमें २०० से अधिक श्लोक हैं। यह कोई उपयोगी ग्रन्थ नहीं है। यम की भाँति उसमें भी धोबियों, नाचने वालों और चर्मकारों को अपवित्र जाति माना है।

(९) कात्यायन—(जिसे पाठकों को पाणिनी के प्राचीन समालोचक से भिन्न समझना चाहिए) उन नियमों और रीतियों को दीपक की भाँति प्रकाशित करता है, जिन्हें गोभिल ने अन्धकार में छोड़ दिया है। परन्तु कात्यायन का धर्म शास्त्र पीछे के समय का है। वह २९ अध्यायों में है, जिनमें लगभग ५०० श्लोक हैं। अध्याय १ श्लोक ११-१४ में गणेश तथा उनकी माताओं गौरी, पद्मा, शची, सावित्री, जया, विजया इत्यादि की पूजा के विषय में लिखा है और यह भी लिखा है कि उनकी मूर्तियों की अथवा उजले वस्त्र पर लिखे हुए चित्रों की पूजा करनी चाहिए। अध्याय १२, श्लोक २ में (जो कि गद्य में है) हिन्दू त्रैकत्व का उल्लेख है। अध्याय १९, श्लोक ७ में उमा का उल्लेख है, और अध्याय २०, श्लोक १० में जिस समय सीता निकाल दी गयी थी, उस समय राम का सीता की स्वर्ण-प्रतिमा के साथ यज्ञ करने का उल्लेख है।

(१०) बृहस्पति—इस ग्रन्थ के ८० श्लोक का एक छोटा-सा खण्ड हमारे देखने में आया है, जो प्रत्यक्ष आधुनिक समय का बना हुआ है। उसमें ब्राह्मणों को भूमि दान देने के पुण्य का विषय है और पाठकों के हृदय पर ब्राह्मण के कोप के भयानक फल को जमाने का यत्न किया गया है। परन्तु "सेक्रेट बुक्स आफ दी ईस्ट' नाम की ग्रन्थावली में बृहस्पति के अधीन प्राचीन और विश्वास योग्य ग्रन्थ का अनुवाद प्रकाशित हुआ है।

(११) पराशर—निस्सन्देह सबसे पीछे के समय के धर्मशास्त्रों में से एक है। स्वयं संग्रहकर्ता हमें कहता है (१-२३) कि मनु सतयुग के लिए था, गौतम त्रेता

युग के लिए, शंख और लिखित द्वापर के लिए थे और पराशर कलियुग के लिए हैं। हमें हिन्दू भैरव का उल्लेख (१, १६), और विधवाओं के आत्म-बलिदान का उल्लेख (४, २८ और २६), मिलता है। फिर भी विधवा विवाह इस पीछे के समय में भी प्रचलित था और यदि किसी स्त्री के पति का पता न लगे अथवा वह मर जाय अथवा योगी वा जाति बाहर वा नपुंसक हो जाय तो पराशर उस स्त्री को दूसरा विवाह करने की आज्ञा देता है (४, २६)। यह ग्रन्थ १२ अध्यायों में है, और उसमें लगभग ६०० श्लोक हैं।

(१२) व्यास[1]—और भी पीछे के समय का है। वह निःसन्देह हिन्दू भैरव का उल्लेख करता है (३, २४) और विधवाओं के आत्म बलिदान की प्रशंसा करता है (२ ५३) जाति के अधिकांश से बने हुए भिन्न भिन्न व्यवसायों का नीच बनाया जाना बहुत से अन्य धर्मशास्त्रों की अपेक्षा व्यास में अधिक पूर्ण है। मुसलमानी राज्य में हिन्दुओं के व्यवहारों के वृतान्त के लिए हमें व्यास में बहुत उत्तम सामग्रियाँ मिलेंगी। इस छोटे से ग्रन्थ में चार अध्याय हैं, जिसमें दो-सौ से ऊपर श्लोक हैं।

(१३) शंख—शंख भी विष्णु की भाँति एक प्राचीन ग्रन्थ है। परन्तु वह पीछे के समय में पुनः पद्य में बनाया गया, यद्यपि उसके दो अंश अब तक भी गद्य में हैं। डॉक्टर बुहलर का विचार है कि गद्य के अंश शंख के मूल ग्रन्थ से लिए हुए सच्चे सूत्र हैं और यह मूल दार्शनिक काल में बना था और पूर्णतया सूत्रों में था। परन्तु इसमें बहुत कम सन्देह हो सकता है कि यह ग्रन्थ बहुत ही आधुनिक समय का है। अध्याय ३ श्लोक ७ में मन्दिरों और शिव की मूर्ति का उल्लेख है। अध्याय ४ श्लोक ६ में उच्च जाति के मनुष्यों को शूद्र जाति की स्त्री से विवाह करने का निषेध है और मनु ने इसका निषेध नहीं किया है। अध्याय ७, श्लोक २० में ग्रन्थकार ने विष्णु का नाम वासुदेव लिखा है। अध्याय १४, श्लोक १-३ में ग्रन्थकार ने १६ तीर्थ स्थानों का नाम लिखा है। अध्याय १४, श्लोक ३ में म्लेच्छ देशों में श्राद्ध करने अथवा जाने का भी निषेध किया है। परन्तु इस आधुनिक ग्रन्थ में भी विधवा विवाह की आज्ञा दी गयी है (१५, ५३)। इस ग्रन्थ में १८ अध्याय हैं, जिनमें तीन सौ श्लोकों से अधिक हैं।

(१४) लिखित—जैसा कि हम अब प्राप्त है, ६२ श्लोकों का एक छोटा-सा आधुनिक ग्रन्थ है और उसमें देव मन्दिरों का (४) काशीवास करने का (११) और गया में पिण्ड देने का उल्लेख है।

---

१ इन धर्मशास्त्रों के बनाने वाले पराशर और व्यास को इन्हीं नामों के प्राचीन ज्योतिषी और वेद के प्राचीन संग्रहकर्ता से भिन्न समझना चाहिए। इन आधुनिक संग्रहकर्ताओं ने कदाचित अपने ग्रन्थों के प्राचीन समझे जाने के लिए इन प्राचीन नामों को ग्रहण कर लिया था।

(१५) दक्ष—दक्ष भी सात अध्यायों का एक आधुनिक ग्रन्थ है और उसमें गृहस्थी के जीवन तथा मनुष्य तथा स्त्रियों के कर्तव्य का एक मनोहर वर्णन दिया है। परन्तु इस वर्णन को विधवाओं के आत्म-वलिदान की निष्ठुर रीति ने कलंकित कर दिया है (४, २०)।

(१६) सांतातप—सांतातप अपने आधुनिक रूप में व्यास की भाँति १६ धर्मशास्त्रों में सबसे नवीन है और उसमें तीन आँख वाले रुद्र का (१-१६) विष्णु की पूजा का (१-२२), चार मुख वाले ब्रह्मा की मूर्ति का भी (२-१८), उल्लेख है। उसमें विष्णु की पूजा, श्री वत्सलांछन, वासुदेव जगन्नाथ के नाम से की गयी है। उसकी स्वर्ण की मूर्ति वस्त्र से सज्जित करके पूजा के उपरान्त ब्राह्मणों को देनी चाहिए (२, २२, २५)। सरस्वती की भी, जो कि अब ब्रह्मा की स्त्री है, पूजा कही गयी है (२-२८) और यह भी कहा गया है कि पाप से मुक्ति पाने के लिए हरिवंश और महाभारत को श्रवण करना चाहिए। इसके आगे गणेश (११-१४), दोनों अश्विनों (४, १४), कुबेर (५, ३), प्रचेतस (५-१०) और इन्द्र (५-१७) की मूर्तियों का उल्लेख है। इन सब स्वर्ण की मूर्तियों को केवल ब्राह्मणों को बहुतायत से दान दिलाने का उद्देश्य जान पड़ता है। संसार में कोई पाप या कोई असाध्य रोग अथवा कोई गृहस्थी की आपत्ति-सम्पत्ति अथवा कोई हानि ऐसी नहीं है, जो ऐसे दान से पूरी न की जा सके। मुसलमानों के विजय के उपरान्त हिन्दू धर्म ने जो धर्म का रूप धारण किया था उसके जानने के लिए यह ग्रन्थ बहुमूल्य है।

७. पुराण

ईस्वी सदी के पश्चात् के भारतीय इतिहास को प्रामाणिक और श्रृंखलाबद्ध करने योग्य अब तक बहुत सामग्रियों और साधनों की उपलब्धि हो चुकी है। सैकड़ों शिलालेख, ताम्रपत्र, स्तम्भ-प्रशस्तियाँ आदि मिल गयी हैं और भी मिल रही हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्लीट, कील, हार्न, ब्रुलट, हल्श, ओझा, वैंक्टेया आदि विद्वानों ने इस विषय की निरन्तर खोज करके उसे एक विषय ही बना डाला है। सम्राट अशोक के काल तक की सभी लिपि पढ़ लीं और समझ ली गयी हैं।

परन्तु प्राचीन आर्यों की जाति का इतिहास केवल ढाई हजार वर्ष का ही इतिहास नहीं हो सकता। तब इस इतिहास को अतीत के विलीन पथ से खोज निकालने का एक मात्र साधन हमारे पास पुराण ही हैं। यद्यपि पुराणों में ऐसा ज्ञात-अज्ञात साहित्य भी है, जिसके कारण संस्कृत हिन्दू जनता विश्वास-अविश्वास में झूलती रहती है। पर फिर भी उनमें कुछ सार अवश्य हैं और वे बहुत हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने जब से संस्कृत साहित्य के अध्ययन की ओर रुचि की, तब से उनका ध्यान पुराणों पर गया, क्योंकि उस काल में जो हिन्दू पंडित मिले वे पुराणों के प्रशंसक थे। परन्तु पुराणों की अस्त-व्यस्त बातों से यूरोपीय विद्वानों को पुराणों में निराशा ही हुई। इसके बाद ही पुरातत्व सम्बन्धी नयी खोज की तरफ वे लग गये। इस खोज में मिले सिक्कों और लेखों ने पुराणों की बहुत-सी बातों को अमान्य कर दिया।

सबसे प्रथम वीसेन्टस्मिथ ने पुरातत्व द्वारा प्राप्त अभिलेखों, सिक्कों तथा विविध ऐतिहासिक सामग्री को अपनी पुस्तक (Early History of India) में एकत्रित किया। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से उनका मत बहुत भ्रान्त रहा। परन्तु भारत के प्राचीन इतिहास में वैदिक युग, ब्राह्मण युग, उपनिषद् युग, दर्शन युग और पारसी तथा यूनानियों के आक्रमण का युग तो इन ढाई हजार वर्षों के प्रथम की ही वस्तु है।

बौद्धों की धर्म-क्रान्ति के बाद हिन्दू-समाज का जीवन-धर्म एकदम बदल गया। सिद्धान्त और आचार दोनों दृष्टियों से उनमें परिवर्तन हो गया था। सिद्धान्त की दृष्टि से वैदिक देवताओं में त्रिदेव का बहुत मान बढ़ गया था और आचार की दृष्टि से उनकी पूजा मूर्ति बनाकर होने लगी थी। वैदिक धर्म अग्नि पूजा का धर्म था और दार्शनिक काल तक रहा। मूर्ति पूजा हिन्दुओं ने बौद्धों से सीखी थी। स्मृतिकार के समय में भी बौद्ध मूर्ति पूजते थे, हिन्दू नहीं। ईस्वी सन् में लगभग वर्तमान मनुस्मृति के रचयिता को भी यह ज्ञात था। पर छठी शताब्दी में कालिदास का धर्म नवीन था। धीरे-धीरे प्रायः सभी वैदिक शक्तियों पर बड़ी-बड़ी महा कथायें बनने लगीं। छान्दोग्य उपनिषद् के अंगीरस के शिष्य कृष्ण वृन्दावन के बड़े रसिक महापुरुष हुए। शतपथ के दक्ष-पार्वती के यज्ञ को और केन उपनिषद् की उमा हैमवती को पौराणिक रूप देकर हिमालय की पुत्री बना दिया। ऋग्वेद का इन्द्र स्वर्गीय हाथी, घोड़ों, रथों और अप्सराओं से सजकर विलास का भड़कीला राजा हो गया। वेद की ऋचाएँ अप्सराएँ बन गयीं। अन्त में वैदिक ३३ कोटि (प्रकार के) देवता, पुराण के ३३ करोड़ देवताओं में जीवित मूर्ति बन गये। जिनके असंख्य उपाख्यान पुराणों में दीख पड़ते हैं। इस प्रकार बौद्ध धर्म का भ्रष्ट रूप वर्तमान हिन्दू जाति का मुख्य धर्म बना, जिसके डॉक्टर विल्सन ने वैष्णवों १९ समुदाय, शैवों में ११ और शाक्तों के चार सम्प्रदाय गिने थे। इस सम्प्रदाय ने मूर्तिपूजा के प्रवाह में प्राचीन यज्ञों को खो दिया। छठी से आठवीं शताब्दी तक यज्ञों का नाम भी नहीं मिलता। सब दान दक्षिणायें अब मन्दिरों में लगायी जाने लगीं। इस समाज क्रान्ति का, जो मुसलमानी राज्य के अन्त तक होती रही, हम पुराणों से पता लगेगा। परन्तु हमें सन्देह है कि जो पुराण अब उपलब्ध हो रहे हैं, ये प्राचीन पुराण ही हैं, क्योंकि प्रसिद्ध कोशकार

अमरसिंह पुराणों में पाँच लक्षण मानता है—(१) सृष्टि उत्पत्ति, (२) नाश और पुनरुत्पत्ति, (३) देवताओं और मुख्य वंशों की नामावली, (४) मन्वन्तर, (५) सूर्य और चन्द्र वंशियों के इतिहास।

ये पाँचों लक्षण वर्तमान पुराणों में यथावत् नहीं मिलते हैं। पुराणों की तीन श्रेणियाँ हैं जो विष्णु, शिव और ब्रह्मा से क्रमशः सम्बन्ध रखती हैं। उनके नाम और श्लोक संख्या इस प्रकार हैं—

(१) ब्रह्मपुराण—इसमें प्रारम्भ में सृष्टि उत्पत्ति और सूर्य तथा चन्द्रवंश का श्रीकृष्ण के काल तक वर्णन। फिर उड़ीसा, तथा वहाँ के मन्दिरों का वर्णन, फिर विष्णु पुराण के ठीक अनुरूप कृष्ण वर्णन। अन्त में योग का वर्णन।

(२) पद्म पुराण—यह स्कन्द को छोड़कर सबसे बड़ा है। यह पाँच भागों में है (१) सृष्टि, (२) भूमि, (३) स्वर्ग, (४) पाताल, (५) उत्तर खंड।

सृष्टि खंड में सृष्टि उत्पत्ति तथा राजाओं और आचार्यों की वंशावली तथा पुष्कर झील का वर्णन है। भूमिखंड में १२७ अध्याय हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न तीर्थों और वहाँ के जीवन का वर्णन है। पृथ्वी का भी वर्णन है।

स्वर्ग खंड में वैकुंठ का वर्णन है। इसमें भिन्न जातियों के आचार और नियम हैं।

पाताल खंड में नाग लोक और नागवंश का वर्णन है। इसके साथ ही कृष्ण के बाल-चरित्र का वर्णन है। उत्तरकाण्ड में आधुनिक वैष्णव चिह्नों के सम्बन्ध में और विष्णु अवतार के सम्बन्ध में बहुत-सी बातचीत होती हैं। डॉक्टर विलसन के मत में इस पुराण के अन्तिम भागों का समय १५वीं-१६वीं शताब्दी है। इसमें म्लेच्छों का बहुत जिक्र है।

(३) विष्णु पुराण—इसमें छः भाग हैं। पहले में विष्णु-लक्ष्मी की उत्पत्ति, तथा ध्रुवप्रह्लाद की कथायें हैं। दूसरे में पृथ्वी, सात द्वीप और समुद्रों का इतिहास है तथा भारतवर्ष और नीचे के देशों, ग्रहमण्डल, सूर्य, चन्द्रमा इत्यादि का वर्णन है। तीसरे भाग में वेदों के व्यास द्वारा चार भाग किये जाने का वर्णन है। उसमें १८ पुराणों के नाम, चारों जाति, और चारों के धर्म, गृहस्थी-सम्बन्धी सामाजिक रीतियों और श्राद्धों का भी वर्णन है। अन्तिम अध्याय में बौद्धों और जैनियों की निन्दा है। चौथे भाग में सूर्य और चन्द्र वंशों का इतिहास है। अन्त में मगध के राजवंश की सूची है। पाँचवें भाग में कृष्ण का बाल जीवन वर्णन है, छठे भाग में विष्णु की भक्ति का माहात्म्य है।

(४) वायु पुराण—यही शिव या शैव पुराण भी है। चार भागों में विभक्त है। पहले में सृष्टि उत्पत्ति और प्राणियों का प्रथम विकास, दूसरे में सृष्टि उत्पत्ति और भिन्न-भिन्न कल्पों का वर्णन, वंशावलियाँ, सृष्टि तथा मन्वन्तरों के हालात, साथ-साथ शिव की प्रशंसा की कथाएँ हैं। तीसरे भाग में भिन्न-भिन्न प्राणियों का

वर्णन है, तथा सूर्य चन्द्र वंशों और अन्य राजाओं का वृतान्त है। चौथे और अन्तिम भाग में याग का फल और शिव का माहात्म्य तथा योगियों के तप का विषय है।

(५) भागवत पुराण—जिसे श्रीमद्भागवत भी कहते हैं, और वैष्णवों में जो परम पवित्र ग्रन्थ माना जाता है। यह भी सृष्टि उत्पत्ति से आरम्भ होता है। तीसरे भाग में ब्रह्मा की उत्पत्ति, विष्णु और वाराहावतार का जिक्र है। सांख्याचार्य कपिल के जन्म की कथा भी है। चौथे, पाँचवें भाग में ध्रुव और वेणु प्रथु और भारत की कथाएँ दी गयी हैं। छठे भाग में विष्णु के पूजन की शिक्षा है। सातवें भाग में प्रह्लाद की कथा है। आठवें में बहुत-सी कथाएँ हैं। नवें में सूर्य और चन्द्र वंश का इतिहास है। दसवें में कृष्ण चरित्र है, जिसे सबसे अधिक महत्व दिया गया है। ग्यारहवें भाग में यादवों के नाश और कृष्ण की मृत्यु का वर्णन है। बारहवें में पीछे के राजाओं की सूची है।

(६) नारद पुराण—इसमें विष्णु स्तुति है। यह ग्रन्थ बहुत नवीन है।

(७) मार्कण्डेय पुराण—इसमें केवल कथाएँ हैं। वृत्त की मृत्यु, बलदेव तपस्या, हरिश्चन्द्र कथा, वशिष्ठ और विश्वामित्र विवाद, जन्म-मृत्यु और नर्क के विषय पर विचार, सृष्टि उत्पत्ति, और मनवन्तरों का वर्णन, दुर्गा का वर्णन, जो चण्डि या दुर्गा पाठ के नाम से प्रसिद्ध है।

(८) अग्नि पुराण—प्रारम्भ में विष्णु अवतारों का वर्णन, फिर कुछ धार्मिक और तान्त्रिक क्रियाओं का वर्णन है। पृथ्वी और विश्व के सम्बन्ध में कुछ अध्याय हैं, राज-धर्म, युद्ध-विद्या, और कानून सम्बन्धी भी कुछ अध्याय हैं। फिर वेदों और पुराणों का भी वर्णन है, कुछ वंशावलियाँ भी हैं। फिर वैद्यक, अलंकार छन्द, शास्त्र और व्याकरण के वर्णन हैं।

(९) भविष्य पुराण—सृष्टि उत्पत्ति, जातियों के संस्कार और आश्रमों के कर्त्तव्य वर्णन। फिर कृष्ण, साम्ब, वशिष्ठ, नारद, व्यास आदि में सूर्य सम्बन्धी विवाद है। अन्तिम अध्यायों में शाकद्वीपवासी मग लोगों के अद्भुत उल्लेख हैं।

(१०) ब्रह्मवैवर्त—चार भागों में है। जिसमें ब्रह्मा, देवी, गणेश और कृष्ण के चरित्रों का वर्णन है। पर इस ग्रन्थ के मूल रूप में परिवर्तन हो गया है। वर्तमान ग्रन्थ बहुत आधुनिक प्रतीत होता है। इसमें गोपियों के प्रेम की कहानी वाली कहानियाँ और वृन्दावन वर्णन है।

(११) लिंग पुराण—इसका सम्बन्ध शिव के प्राधान्य से है, परन्तु एक अद्भुत लिंग का बड़ा अद्भुत वर्णन दिया गया है। इसमें शिव की कथाएं विधान और स्तुतियाँ भी हैं। कृष्ण के काल तक की राज्यवंशों की वंशावलियाँ भी हैं।

(१२) वाराह पुराण—प्राय समस्त ग्रन्थ विष्णु पूजा और भक्ति के नियमों से भरा हुआ है। इसमें बहुत से तीर्थों का भी वर्णन है।

(१३) स्कन्द पुराण—सब पुराणों से बड़ा है, किन्तु संगठित नहीं है। खंड खंड है। काशी खंड में बनारस के शिव मन्दिरों की सूची है। तत्सम्बन्धी पूजा विधि और कथाएँ भी हैं। उत्कल खंड में उड़ीसा और जगन्नाथ का वर्णन है। इसी प्रकार बहुत-से खंड प्रकरण भी हैं।

(१४) वामन पुराण—इसमें वामन अवतार और लिंग पूजा का जिक्र है। परन्तु इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय तीर्थ-स्थानों का विवरण प्रकाशित करना है। दक्षयज्ञ, काम भस्म, शिव-उमा विवाह, कार्तिकेयपूजन, बलिप्रताप, कृष्ण, वामन अवतार आदि का वर्णन है।

(१५) कूर्म पुराण—इसकी गणना शैव पुराणों में है। यद्यपि यह विष्णु अवतार का पुराण है। इसमें सृष्टि उत्पत्ति, विष्णु अवतार, कृष्ण के काल तक सूर्य और चन्द्रवंश की वंशावली। विश्व और मन्वन्तरों का जिक्र तथा शैव कथाएँ मिलती हैं।

(१६) मत्स्य पुराण—इसमें मत्स्यावतार सम्बन्धी कथा है। जो वास्तव में शतपथ के आधार पर है। इसमें और भी बहुत-सी कथाएँ हैं। नर्मदा का भी वर्णन है, कुछ राजाओं की दान-सम्बन्धी बातें हैं।

(१७) गरुड़ पुराण—इसमें सृष्टि की उत्पत्ति, आचार, व्यवहार, तन्त्रशास्त्र, ज्योतिष, हस्तसामुद्र, और वैद्यक है। अन्त में ज्योतिषी क्रिया का वर्णन है।

(१८) ब्रह्माण्ड पुराण—यह भी संगठित नहीं है। आध्यात्म रामायण इसी का अंश है।

उपरोक्त १८ पुराण अलबरूनी के काल में उपलब्ध तो थे—परन्तु अब और भी बढ़ गये हैं।

इसके सिवा पुराण साहित्य में निम्न ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं—

(१) विष्णु धर्मोत्तर
(२) बृहद धर्म पुराण
(३) शिव पुराण
(४) आदि पुराण
(५) कल्कि पुराण
(६) कालिका पुराण
(७) देवी भागवत
(८) वायु पुराण
(९) साम्य पुराण
(१०) आत्म पुराण

अध्यात्म रामायण, नासिकेतोपाख्यान, नीलमत पुराण (इसे कल्हण ने इतिहास माना है), पशुपति पुराण, जेमिनि भारत, आदि भी हैं।

दूसरा अध्याय

वैदिक सभ्यता

मानव शास्त्रवेत्ताओं ने मनुष्यों को पांच जातियों में विभक्त किया है—काकेशियन, मंगोलियन या तातार, हब्शी, मलय और अमेरिकन। रंगों के हिसाब से ये लोग क्रमश पीले, काले, बादामी और लाल हैं। इन सबमें गोरी जाति प्रधान है। गोरी जाति की तीन प्रधान शाखाएँ हैं—आर्य, सैमेटिक और हैमेटिक। आर्य जाति सर्व प्रधान हैं इसमें हिन्दुओं, जर्मनों, रूसियों, अँग्रेजों और फ्रासीसियों आदि की गणना है। विद्वानों का मत है कि किसी प्राचीनकाल में हिन्दुओं, जर्मनों, रूसियों, यहूदियों, अँग्रेजों और फ्रासीसियों आदि के पूर्व पुरुष एक ही स्थान पर रहते थे और एक ही भाषा बोलते थे। उसी भाषा से संस्कृत, यूनानी और जर्मन आदि भाषाएँ विकसित हुई हैं।

ज्यों-ज्यों आर्यों की संख्या और साहस की वृद्धि होती गयी वे दूसरे प्रदेशों में फैलते गये और भारत, पश्चिमी एशिया और यूरोप में बस गये।

समूची आर्य जाति की आदिम एकता की साक्षी आर्य-भाषा परिवार है। संस्कृत, जीन्द, अँग्रेजी, यूनानी, लैटिन, फारसी, अरबी आदि भाषाओं की मूल भाषा आर्य-भाषा ही थी। इन सब भाषाओं में व्यवहार की साधारण बातों, औजारों, वामा, रिश्ता आदि के लिए प्राय एक ही से शब्द हैं। इन भाषाओं को बोलने वाली जातियाँ हजारों वर्षों से पृथक हैं, इसलिए एक-दूसरी से न शब्द नकल कर सकती थीं, और न शब्दों को ले सकती थीं। इस भाषा-सम्बन्धी जाँच से पाश्चात्यों ने केवल आदिम एकता ही प्रमाणित नहीं की, अपितु आर्य-जाति की उस काल तक की उन्नतियों का भी परिचय प्राप्त किया, जब तक कि उन्होंने आदिम स्थान नहीं छोड़ा था। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि उस समय भी आर्य लोग मकानों में रहते थे, पृथ्वी जोतते और चक्कियों से अनाज पीसते थे। वे भेड़, गाय, बैल, कुत्ता, बकरा आदि को पालते और शहद आदि से बनाया हुआ मद्य पीते थे। वे तांबा, चाँदी, सोना आदि का व्यवहार भी करते थे और धनुष-बाण

तथा तलवार से लड़ाई करते थे। इनमें राज्य शासन प्रणाली आरम्भ हो चुकी थी। वे आकाश और आकाशवासी देवताओं का पूजन करते थे। कहा जा सकता कि है सब आर्य भाषाओं का सबसे पहला रूप वैदिक-संस्कृत है।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में योरोप के कुछ विद्वानों ने भारत के सम्पर्क में आकर संस्कृत का अध्ययन किया। तब उन्होंने जाना कि संस्कृत-लैटिन और ग्रीक भाषाओं में केवल शब्दों की ही समता नहीं है, व्याकरण में भी समानता है। ज्यों-ज्यों पाश्चात्य पंडित भाषा की इस एकता की गहराई पर विचार करते गये, वे भाषा परिवारों का नियोजन करते चले गये और उन्होंने योरोप और एशिया की जातियों की सांस्कृतिक एकता को समझ लिया। एकता का मूलाधार वैदिक आर्य सभ्यता को स्वीकार किया और अब वे इस खोज में लगे कि योरोप और एशिया में फैली हुई इन जातियों का मूल अभिजन कहाँ है। उन्होंने वेद और जेन्दावस्ता का तुलनात्मक अध्ययन किया और अधिक विद्वान इस निर्णय पर पहुँचे कि आर्यों के दो ग्रुप बने। एक ग्रुप उत्तर-पश्चिम में योरोप की ओर गया और पाँच भिन्न-भिन्न जातियों के रूप में योरोप के भिन्न-भिन्न भागों में बस गया। दूसरा ग्रुप दक्षिण पूर्व में एशिया की ओर आया और सिन्धु नदी की घाटी में बस गया। इस समय उनके दो विभाग हो गये, एक देवी को पूजने वाले आर्य जो पंजाब से आगे बढ़े, दूसरे असुरों के उपासक जो फारस में गये। इन दोनों ही धाराओं का मूल अभिजन काश्यप सागर का पूर्वी तट था। भारत में प्रविष्ट होने पर आर्यों को पग-पग पर यहाँ के मूल निवासियों से युद्ध करने पड़े। वे उन्हें जय करते और पूर्ववर्ती सभ्यताओं को विनष्ट करते गये। इस संघर्ष के संकेत उन्हें वेदों में मिले, जो आर्यों के सर्व प्राचीन ग्रन्थ हैं। वेदों ही से उन्होंने यह भी प्रमाणित किया कि रावी नदी के तट पर एक घनघोर युद्ध हुआ जिसमें दस बड़े राजा और उनके सहायकों ने एक निर्णायक युद्ध किया था।

हमारे देश के भूखंड का प्राचीन नाम भारतवर्ष है। यह नाम स्वायम्भुव मनु के वंशज ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर पड़ा था। 'विष्णु पुराण', और 'वायु पुराण' के कथनानुसार समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण का देश भारतवर्ष कहलाता है, क्योंकि वहाँ भारतीय प्रजा रहती है, जो भरत के ही वंश में थी।

भारतवर्ष को सबसे पहले ईरानियों ने हिन्दुस्तान कहा। उन्होंने सिन्धु नदी के नाम पर यह नामकरण किया। पीछे ईरानी भाषा से प्रभावित मध्य एशिया के लोग सारे देश को हिन्दुस्तान कहने लगे।

ईरानी आक्रान्ता पश्चिम से भारत में सिन्धु नदी के ही मार्ग से आये थे और इसी प्रकार यूनानी आक्रान्ता भी उसी मार्ग से आये। वे सिन्धु को इंडस कहते थे, इसलिए वे इस देश को इंडिया के नाम से पुकारने लगे और इस प्रकार यूनानी

भाषा से प्रभावित योरोपीय देशों में भारत का नाम इंडिया कहकर पुकारा गया।

भारत की नाम परम्परा में एक कथन यह भी है कि आर्यों के प्रारम्भिक दिनों में चन्द्रवंशी राजाओं के उत्कर्ष के कारण इसे 'इन्द्रदेव' के नाम से पुकारने लगे। चीनी यात्री यूयानचाग ने अपनी पुस्तक में इस देश का नाम 'इन-टू' लिखा है, जिसका अर्थ चीनी भाषा में 'चन्द्रमा' होता है।

आर्यावर्त और आर्यों के भारत में *आगमन के बाद* उत्तर भारत का नाम आर्यावर्त पड़ा। आर्यों का ज्यों-ज्यों पूर्व और दक्षिण में विस्तार होता गया, आर्यावर्त का क्षेत्र भी अधिक व्यापक होता गया। परन्तु सम्पूर्ण भारत को कभी भी आर्यावर्त नहीं कहा गया। आर्यावर्त की परिधि से बाहर का भारत क्षेत्र भरत खंड कहलाया।

मनु के कथनानुसार सरस्वती और गंगा के मध्यवर्ती देश को ब्रह्मावर्त कहा गया है। कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पांचाल और शूरसेन के प्रान्तों को मिलाकर ब्रह्मर्षि देश कहा गया है।

भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति के बाद समूचे अखंड देश का नाम भारत प्रसिद्ध हुआ और अब विश्व में यही नाम हमारे देश का विख्यात हो रहा है।

जब बुद्ध और महावीर भारत को नयी ज्योति दे रहे थे तथा व्यास, वाल्मीकि याज्ञवल्क्य और पाणिनि अपनी ज्ञानगरिमा से भारतीय वाङ्मय को तथा भारतीय जीवन को सभ्यता और संस्कृति के नये मोड़ दे रहे थे तथा जब भारत में अशोक अपना धर्मचक्र प्रवर्तन कर रहा था, उस समय योरोप का बड़ा भाग जंगलों से आच्छादित था। केवल दो देश ऐसे होते थे जहाँ सभ्यता का विकास हो रहा था —ग्रीस और इटली। इन दोनों देशों की सभ्यता पर पुरातन ईजियन सभ्यता का प्रभाव था, जो संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं सुमेरियन, असीरियन, इजिप्शियन, सिन्धु सभ्यता और चीनी सभ्यता की समकालीन थी। इस सभ्यता के क्षेत्र भूमध्य सागर के तटवर्ती प्रदेश और इंडियन सागर के विविध द्वीप थे, जिनका प्रधान केन्द्र क्रीट नाम का द्वीप था। ग्रीकों ने ईजियन सभ्यता का अन्त किया। ये ग्रीक आर्यों की उस शाखा से सम्बन्धित थे, जिन्होंने इलावर्त से भारत में प्रविष्ट होकर आर्य सभ्यता की भारत में स्थापना की थी और सिन्धु-सभ्यता का अन्त कर दिया था। ई० पू० पाँचवीं शताब्दी ग्रीस का समृद्ध काल था। उस समय ग्रीस का एथेन्स नगर ज्ञान, कला, कविता, साहित्य और राजनीति की दृष्टि से अनुपम था। राजनीति का महान पंडित पैरिक्लीज, संसार का प्रथम महान इतिहासज्ञ हीरोडाट्स, ज्योतिषाचार्य अनेक्सेगोरस, महान कवि होमर, सुकरात, अफलातून, अरस्तु जैसे विद्वान दार्शनिक और युग पुरुष इसी युग की शृंखला की कड़ी थे—जिन्होंने विश्व विजेता सिकन्दर को जन्म दिया। सिकन्दर ने अपने लघु-

जीवन में दिग्विजय कर नये सत्तर नगरों का निर्माण किया, जहाँ ग्रीक सैनिकों को आवाद किया गया। ये नगर आगे ग्रीस संस्कृति के विश्व भर में केन्द्र बन गये। इन नगरों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नगर सिकन्दरिया था, जो मिश्र की नील नदी के तट पर था। सिकन्दर के उत्तराधिकारी टालमी ने इसे अपनी राजधानी बनाया था और वहाँ एक म्युजियम की स्थापना की थी जो वास्तव में एक विश्व-विज्ञान ज्ञानपीठ थी। वहाँ वहुत से विद्वान देश-देशान्तर से आ-आकर ज्ञानार्जन करते थे। ज्यामिति का प्रसिद्ध विद्वान् युक्लिड यहीं का पंडित था। प्रसिद्ध गणितज्ञ और भूगोलवेत्ता ऐरेटोस्थनीज—जिसने पृथ्वी का सही आकार, परिधि और व्यास का पता लगाया था—यहीं का निवासी था। प्रसिद्ध ज्योतिषी हिप्पाकेस, वैज्ञानिक आर्चिमीडस और इसके अतिरिक्त अनेक वैज्ञानिक विचारक सिकन्दरिया के निवासी थे। सिकन्दरिया का पुस्तकालय विश्व में अप्रितम था, जहाँ हजारों पंडित ग्रन्थों की नकल करने में लगे रहते थे। ग्रीकों के सम्पर्क ही से मिश्र में सभ्यता का प्रसार हुआ। उन दिनों सम्पूर्ण अफगानिस्तान में वौद्ध धर्म का बोलवाला था। ग्रीक कला के सम्पर्क से गांधार, अफगानिस्तान ने बुद्ध की मूर्तियाँ अति सुन्दर वनायीं, उस समय तक भी गांधार भारत ही का अंग था। भारतीय मूर्तिकला में, जो गांधार शैली के नाम से प्रसिद्ध है, अनेक विशेषताएँ हैं।

सिकन्दर के भारत आने के वाद यूनान का भारत से घनिष्ट सम्वन्ध हो गया। पीछे जव मौर्य साम्राज्य भंग हुआ, तो वैक्ट्रियन यूनानियों का राज्य पंजाब तक हो गया और स्यालकोट के यूनानी सम्राट मिनेन्डर ने वौद्ध धर्म स्वीकार कर मिलिन्द नाम पाया। उसके वाद यूची कुशान साम्राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ। कनिष्क ने वौद्ध धर्म स्वीकार कर वौद्ध धर्म को नया मोड़ दिया। कनिष्ठक के मूर्तिकार यूनान, भारत, ईरान और चीन देशों से आये, जिससे गांधार कला का वहुत परिष्कार हुआ।

भारत में जब कुशान राजाओं की तूती वोल रही थी। रोम का साम्राज्य फरात नदी के तट तक फैल चुका था और भारतीय राजाओं का रोम से निकट सम्पर्क था। माकाजर से रोम तक का समुद्री मार्ग इस काम में आता था। उस समय भारत से इटली तक सोलह सप्ताहों में पहुँचते थे। उन दिनों भारत में रोम से साढ़े पाँच करोड़ का स्वर्ण प्रति वर्ष खिच आता था। रोमन सुन्दरियाँ भारत की 'हवा की जाली' (मलमल) पहनकर गर्व से इतराती थीं।

ईस्वी सन् के लगभग तक्षशिला विश्वविद्यालय समूचे क्षेत्र का विद्यापीठ वना हुआ था। अफलातून के दर्शन की नयी व्यवस्था करने वाला प्लाटिनस भारतीय दर्शन का विद्यार्थी था। विलमेंट—जो दूसरी शताब्दी में अलेक्जेन्ड्रिया में रहता था—कहता है कि अलेक्जेन्ड्रिया में वौद्ध वहुत हैं और यूनान वालों ने दर्शन-शास्त्र उन्हीं से सीखा है।

उन दिनों बगदाद, केरो, (मिस्र) कारडोवन (स्पेन) अरबी सभ्यता के केन्द्र थे। बगदाद भारत और योरोप के बीच व्यापार का भारी केन्द्र था तथा इसी नगर के द्वारा भारतीय ज्ञान भी योरोप पहुँचा। अरबो को भारतीय संस्कृति अपनाकर ही सन्तोष हुआ था। उन्ही के द्वारा भारतीय सभ्यता के बीज योरोप पहुँचे थे। अरबों ने अनेक संस्कृत ग्रन्थो का अनुवाद किया था। भारतीय ज्योतिष, गणित, सांस्कृतिक कलाकौशल, एवं शिल्प और चिकित्सा शास्त्र का उन देशों मे बहुत आदर था।

पन्द्रहवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे योरोप के प्रथम चरण भारत की भूमि पर पड़े। उस समय भारतवर्ष म मुगल प्रताप तप रहा था और योरोप मे भारत का नाम अतुल धन सम्पत्ति के लिए विख्यात था। मुगल दरबार की भड़कीली शान की बढ़ी-चढ़ी कहानियाँ मध्य एशिया होकर तब योरोप मे पहुँचती रहती थी और योरोप के साहसिक डाकू सोने के अण्डे देने वाली चिड़िया तक पहुँचने के लिए बेचैन रहते थे। पहला सुअवसर मिला पुर्तगाल को, और वह पूरे सौ वर्ष तक निर्द्वन्द्व भारत को लूटता रहा। उस समय तक भूमण्डल का बड़ा भाग पानी की ओट म छुपा था। उसके बाद हालैंड और फ्रास के लोग आये। सबके बाद अंग्रेज साहसिक आये, जिनके धर्मशास्त्र मे डकैती और क्रूरता का बहुत ऊँचा स्थान था और उस काल इग्लैंड मे य समुद्री डाकू 'देवता' की भाँति पूजे जाते थे। रण का साहस ही उनका सबसे बड़ा गुण था।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ म ही ससार म जीवन का नया दौर चला। भारत और योरोप मे सर्वत्र ही उन दिनो खून खराबी का बाजार गर्म था। नयी दुनिया प्रकट हो रही थी और ब्रिटेन विश्व का राजनैतिक नेता बन रहा था। उसने अथाह स्वर्ण भण्डार एकत्र कर लिया था और अब भू सम्पत्ति के मुकाबिले इग्लैंड औद्योगिक केन्द्र बन रहा था। अठारहवी शताब्दी बीतते-बीतते इग्लैंड के निवासी ब्रिटिश साम्राज्य रचना मे जुट गये थे। उनकी केवल एक व्यापारिक सस्था ने बीस करोड़ नर-नारियों से भरापूरा भारत देश अधिकृत कर लिया था। ससार यह देखकर आश्चर्यचकित हो रहा था। सृष्टि के आरम्भ से कभी किसी राष्ट्र न अब तक इतना भारी दायित्व अपने ऊपर नही लिया था, न कभी किसी एक देश की जनता के निर्णय के ऊपर भू मण्डल के अनेक भागो का महत्व-पूर्ण दायित्व भार पड़ा था, जितना उस काल मे ब्रिटेन के क्षुद्र टापू के मुट्ठी-भर निवासियो पर था।

परन्तु जिस प्रबल अर्थ क्रान्ति और उद्योग क्रान्ति से परिचालित होकर अंग्रेज एशिया म अपना साम्राज्य सगठित करते जा रहे थे, उसके सम्बन्ध मे न भारत म और न एशिया मे ही कोई कुछ जानता था। इग्लैंड के पीछे किसी जातीय सभ्यता का इतिहास न था, न किसी प्राचीन संस्कृति की छाप थी।

जैसे भारत में प्राचीन वैदिक, बौद्ध, जैन और हिन्दू धर्म के वेद-श्रुति-स्मृति-दर्शन और आचार शास्त्र के आधार पर भारतीय जनता में सहस्रों वर्षों से पाप-पुण्य, धर्माधर्म, नीति-अनीति के सांस्कृतिक आदर्श उनकी पैत्रिक सांस्कृतिक सम्पत्ति के रूप में चले आते थे, वैसा इंग्लैंड में एक भी साँस्कृतिक सूत्र न था। १८वीं शताब्दी के आरम्भ तक इंग्लैंड घोर दरिद्रता, निरक्षरता और अन्ध विश्वासों का दास बना हुआ था। नैतिक आदर्शों पर सुसभ्य जीवन का इंग्लैंड में जन्म भी न हुआ था, न इन बातों पर उनकी नजर थी। भारत जैसे समृद्ध देश की धन-सम्पदा-वैभव और जालो-जालाली ने उनकी आवारा और साहसिक प्रकृति में लोलुप दृष्टि उत्पन्न कर दी थी। न्याय, अन्याय, धर्माधर्म का उन्हें संस्कार ही न था।

देखते-ही-देखते ब्रिटेन का भारतीय साम्राज्य नैपोलियन के अत्युच्च शिखर पर पहुँचे हुए साम्राज्य से भी बहुत बढ़ गया, और उसके भार से डाउनिंग स्ट्रीट की अट्टालिकाएँ थर्राने लगीं।

भारत में इस्लाम का चरण एक भारी विपत्ति को अपने साथ लाया था, जिसने देश के सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा राजनैतिक जीवन को छिन-भिन्न कर दिया, और देश को दो विरोधी शक्तियों में बाँट दिया। जिस समय इस्लाम का चरण भारत में पड़ा, तब भारत के राजनैतिक और धर्मक्षेत्र दोनों ही अस्त-व्यस्त थे। उस समय देश में कोई बड़ी शक्ति न थी। राजपूतों की नयी जाति का उदय हुआ था और उन्होंने पश्चिम से चलकर उत्तर-पूर्वीय तथा मध्य भारत में अनेक छोटी-छोटी रियासतें स्थापित कर ली थीं। मुसलमानों के आने से ठीक पहले पंजाब से दक्षिण तक और बंगाल से अरब सागर तक लगभग समस्त देश राजपूतों के शासन में आ गया था। राजपूत निरन्तर आपस में लड़ते रहते थे। ऐसी ही अव्यवस्था धर्मक्षेत्र में भी थी। वैष्णव, शाक्त, तांत्रिक-कापालिक, वाम-मार्गी, शैव और पाशुपत आदि सम्प्रदाय थे, जो बड़ी कट्टरता से परस्पर संघर्ष करते रहते थे। कुछ बड़े-बड़े दार्शनिक भी थे, पर सर्वसाधारण घोर अन्धकार में थे। जाति-भेद पूरे जोरों पर था। देवी-देवता, जन्तर-मंतर, भूत-प्रेत, जप-तप, यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ, दान-व्रत, तीर्थयात्रा, जादू-टोनों के अन्धविश्वास में जनता फँसी थी। इधर सम्राट हर्षवर्द्धन के बाद, अर्थात् ईसा की सातवीं शताब्दी के मध्य से सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक ९०० वर्षों के दीर्घकाल में सर्वथा राज-नैतिक निर्बलता, अनैक्य और अव्यवस्था देशभर में फैली थी। परन्तु एक बात अवश्य थी, उस समय भी भारत में एक ही सभ्यता और संस्कृति अखण्ड रूप में स्थिर थी। बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव भिन्न मतावम्लबी होने पर भी उनका सांस्कृतिक जीवन एक था। सबकी एक भाषा, एक चलन और एक समाज था। परन्तु मुसलमानों के समाज में यह बात न थी। सिद्धान्त की दृष्टि से हिन्दू-मुसलमानों में

अन्तर न था, पर व्यवहार उनका हिन्दुओं से विपरीत था। सारी बात यह थी कि वे केवल हिन्दुओं की राजसत्ता लेकर ही सन्तुष्ट न हुए, हिन्दुओं की धर्म भावना और सामाजिक जीवन पर भी उन्होंने बलात् अपना प्रभाव डाला। जिसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों से सब प्रकार का असहयोग हिन्दुओं का एक धार्मिक रूप धारण कर गया, और देश विरोधी शक्तियों में बँट गया। गजनवी, गोरी, तुगलक और तैमूर ने एक के बाद एक आक्रमण करके उत्तर भारत की सांस्कृतिक प्रगति को छिन्न-भिन्न कर दिया, जिसमें हिन्दू विद्या, साहित्य, धर्म और संस्कृति को भागकर सुदूर पूर्व में—बंगाल में शरण लेनी पड़ी। इससे मुस्लिम काल में बंगाल उत्तर की हिन्दू संस्कृति का सर्वोच्च केन्द्र बन गया, जो लगभग अकबर के राज्यारोहण तक वैसा ही रहा। इन ६०० वर्षों तक निरन्तर आक्रान्ताओं के अधिकार में पड़कर हिन्दू धर्म, संस्कृति तथा साहित्य की प्रवृत्ति में बड़ी बाधा उपस्थित हुई, और सामाजिक संस्थाओं, क्रियाओं, व्यवहारों तथा कला व्यापार, स्थापत्य, विज्ञान तथा राष्ट्रीय जीवन सभी में असाधारण परिवर्तन हो गया। उस समय राजपूतों के राज्य अवश्य हिन्दूपन की रक्षा करते रहे, पर वे सब स्वेच्छाचारी थे, एवं राजनीति से अनभिज्ञ थे।

अंग्रेजों ने पहले बंगाल ही में अपना आसन जमाया और कलकत्ता को भारत की राजधानी बनाया। उस समय तक भी उन्हें भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान न था। वे भारत को असभ्य काले लोगों का देश समझते थे। भारतीय साहित्य के सम्बन्ध में भी उन्हें कुछ ज्ञान न था। सन् १८३५ में लार्ड विलियम बेंटिक के काल में मैकाले ने कहा था—कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य ब्रिटिश म्यूजियम के दो ग्रन्थों के समान भी श्रेष्ठ नहीं है। इसी से उसने ऐसी योजना बनायी थी कि भारत में एक ऐसी श्रेणी उत्पन्न की जाय जो रूप और रंग में भारतीय हो, पर रुचि, सम्पत्ति, आचार और विचारों में तथा बुद्धि में अंग्रेज हो।

तत्कालीन गवर्नर जनरल ने लार्ड मैकाले के प्रस्ताव का अनुमोदन किया, और मैकाले की नीति के अनुसार भारत में शिक्षा का प्रचार किया गया। अंग्रेज और जर्मन अध्यापक भारत में बुलाये गये। विद्यार्थी उनकी विद्या और दृष्टिकोणों को मान्य करने में बाध्य हुए। तब भारतीय पक्ष में यदि कोई बात कही जाती तो वह इतिहास विरुद्ध, तर्क विरुद्ध, बुद्धि विपरीत, तर्क शून्य, थोथी, मिथ्या, वृथा कही जाती थी। बहुधा ये विदेशी अध्यापक यही भाव भारतीय विद्यार्थियों के मस्तिष्क में पैदा करते रहते थे। इस प्रकार उस काल में भारतीयों को अभारतीय संस्कृति का अन्धभक्त बनाने का प्रयत्न किया गया, और भारतीय संस्कृति को नष्ट किया गया—जिसमें एक हद तक सफलता भी मिली। ऐसे हजारों पुरुष देश में उत्पन्न हो गये जो विचार और रुचि में आमूल अंग्रेज थे।

सरकार ने भारतीय छात्रों को विदेश जाकर विशेष अध्ययन के लिए छात्र-वृत्तियाँ भी देनी आरम्भ कीं। इन वृत्तियों को पाकर मेधावी छात्र योरोप से संस्कृत, इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शन आदि पढ़कर लौटे तो पूरे विदेशी बनकर। इन विद्वानों का सरकार आदर भी करती थी। बड़ी-बड़ी तनख्वाहें देती थी। उन दिनों इन बड़े-बड़े वेतनों के लालच में बहुत पढ़े-लिखे भारतीय अपना आत्मगौरव बेच रहे थे। खासकर संस्कृत और इतिहास के अध्यापकगण पूरी तौर पर अँग्रेज प्रिन्सिपलों के नीचे रहकर विदेशी प्रभाव से दब गये। नौकरी के लालच में बहुत से भारतीय विद्वान् इन अँग्रेजों के सुर-में-सुर मिलाकर बात करने लगे।

सन् १७५७ में प्लासी का निर्णायक युद्ध हुआ, जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत की अधिराज हो गयी। खासकर सम्पूर्ण बंगाल अँग्रेजों की अधीनता में चला गया। सन् १७८३ में कलकत्ते में फोर्ट विलियम उपनिवेश में एक प्रधान न्यायाधीश आये, इनका नाम सर विलियम जॉन्स था। उन्हें संस्कृत पढ़ने का चस्का था। उन्होंने अभिज्ञान शाकुन्तल और मनुस्मृति का अँग्रेजी में अनुवाद किया। यह घटना १७९४ के लगभग की है। इसी समय सर जॉन्स का स्वर्गवास हो गया। उनके सहकारी हेनरी टॉमस काल्वक ने उनके वाद उनके कार्य को बढ़ाया, और उन्होंने सन् १८०६ में 'आन-द-वेदाज' नामक एक निबन्ध वेद-विषयक लिखा। इसके कुछ वर्ष वाद ही जर्मनी के 'वान' विश्वविद्यालय में आगस्ट विल्हैल्म फान श्लैगल संस्कृत का प्रधान अध्यापक नियुक्त हुआ। उनका भाई फ्राइडिश श्लेगल भी संस्कृत का प्रेमी था। इनका एक संस्कृत भक्त साथी हर्न विल्हैल्म फान हम्बोल्ट था, जो गीता का बड़ा प्रशंसक था। उसने गीता के विपय में अपने एक मित्र को लिखा कि यह कदाचित गम्भीरतम उच्च वस्तु है जो संसार को दिखानी है। इसके कुछ वर्ष बाद ही जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक आर्थर शोपनहार ने फ्रेन्च लेखक अंक वेटिल डूपेरिन का उपनिषद् का लैटिन अनुवाद पढ़ा और कहा—कि यह मानव मस्तिष्क की सर्वोच्च उपज है। उनके विचार अति मानुप हैं, और यह हमारी शताब्दी की सबसे बड़ी देन है। उसकी मेज पर लैटिन का यह ग्रन्थ उपनिषद् खुला पड़ा रहता है, और वह उसकी आराधना किया करता था।

इन लेखों और विचारों से जर्मन विद्वानों का प्रेम संस्कृत वांगमय के प्रति वढ़ा तथा भारतीय संस्कृति के महत्व की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। जर्मन पंडित विण्ट निट्रेज ने भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर लिखा—"When Indian Literature became first Known in the west, People were inclined to ascribe a hoaryage to every literary work hailing from India. They used to look upon India something like thc cradle of

mankind, or atleest of human civlization"

"जब भारतीय साहित्य पश्चिम म सर्वप्रथम विदित हुआ तो लोगो की रुचि भारत से आने वाले प्रत्येक साहित्यिक ग्रन्थ को अति प्राचीन युग का मानने की थी। वे भारत पर इस प्रकार दृष्टि डालते थे जैसे वह मनुष्यमात्र की अथवा कम-से-कम मानव सभ्यता की दौलत के समान है।"

उसके बाद तो बहुत विद्वान् भारतीय साहित्य, विज्ञान और स्थापत्य की खोज मे लग गये, और भारत की प्राचीन सास्कृतिक सभ्यता को देखकर योरोप आश्चर्यचकित रह गया।

योरोप उस समय यद्यपि ईसाई धर्म से प्रभावित था, उसमे बहुत उदार भावना भी आ गयी थी, परन्तु अभी भी योरोप प्राचीन यहूदी धर्म के प्रभाव से प्रभावित था। यहूदी विश्वास के आधार पर उनका आदि पुरुष आदम है, जिसका समय वे ईसा पूर्व ४००४ मानते हैं। लगभग यही समय विवस्वान सूर्य का है, जो मनु के पिता हैं। सूर्य का ही नाम आदित्य, आदि-आदम है। परन्तु योरोप को उनके धर्म विश्वास का ही ज्ञान था, प्राचीन हिन्दू इतिहास का ज्ञान न था। इससे योरोप मे यहूदी ही प्राचीनतम सभ्यता के प्रतीक समझे जाते थे और ईसाई धर्म उसका परिष्कृत रूप समझा जाता था। उस समय तक समूचे योरोप की यही सास्कृनिक दृष्टि थी कि जो देश ईसाई नही है वे असभ्य हैं। उन्हे ईसाई बनाकर सभ्य बनाया जाय।

जब सस्कृत का गौरव योरोप पर प्रकट हुआ, तो इग्लैंड के कुछ लोगो ने विचार किया कि ईसाई धर्म ग्रन्थो को सस्कृत मे अनुवाद कराया जाय। सन् १८११ म कर्नल बोडम ने एक विपुल दान देकर ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मे एक आसन्दी इस अभिप्राय से स्थापित की कि ईसाई धर्म ग्रन्थो का सस्कृत मे अनुवाद किया जाय, जिसमे उच्चवर्णी भारतीयो को ईसाई बनाने मे सफलता प्राप्त हो। इस आसन्दी का प्रथम महोपाध्याय होरेस हेमैन विलसन था। उसने एक पुस्तक लिखी— दि रिलीजस एन्ड फिलोसोफीकल सिस्टम ऑफ दि हिन्दूज।' यह पुस्तक वास्तव मे दो व्याख्यान थे, जो जानमूर के दो सौ पाउन्ड के पारितोषिक के लिए लिखे गये थे और जिनका उद्देश्य छात्रो को सहायता देना बताया गया था। जानमूर सस्कृत का ज्ञाता एक पुरुष था। उसके पारितोषिक का अभिप्राय था—हिन्दू धर्म विश्वास का उत्कृष्ट खण्डन।

यूजेन बर्नफ सन् १८०१ से १८४० तक फ्रान्स मे सस्कृताध्यापक रहा। उसके दो प्रधान जर्मन शिष्य थे जो एक रूडल्फ राथ और दूसरे मैक्समूलर थे। आगे चलकर य दोनो शिष्य बहुत प्रसिद्ध हो गये। डॉ० राथ ने सन् १८४६ मे एक ग्रन्थ लिखा। 'सुर लिट्रेचर इण्ट गैशिख्ट डस वेद' (वेद और वैदिक इतिहास)। इसके बाद उसने निरुक्त को छापा। परन्तु उसने निरुक्त की अपेक्षा वेद के मन्त्रो

के अर्थ जर्मन पद्धति में अधिक ठीक किये जा सकते हैं यह व्यक्त किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वेद की अपौरुषेयता की भावना को धक्का लगा। डॉ० राथ का समर्थन ह्विटने ने किया और इस प्रकार योरोप में निरुक्त का उल्लंघन करके वेदार्थ की एक स्वतन्त्र परिपाटी का प्रचलन हुआ।

मैक्समूलर ने वैदिक साहित्य पर बहुत परिश्रम किया। वह योरोप भर में वेद का सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता प्रसिद्ध हो गया। उसने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। स्वामी दयायन्द ने उसके वैदिक व्याख्यानों को कठोरता से खंडित किया। मैक्समूलर ने वेदों पर परिश्रम तो बहुत किया—परन्तु वेद के सम्बन्ध में उसकी धारणा बहुत हीन रही। सन् १८६६ में उसने अपनी पत्नी को एक पत्र लिखा था। उसमें उसने लिखा था—"मेरा यह वेदों का संस्करण तथा मेरा वेद भाष्य, उत्तरकाल में भारत के भाग्य पर भी भारी प्रभाव डालेगा। यह उनके धर्म का मूल ग्रन्थ है, और मैं निश्चयपूर्वक यह कह सकता हूँ कि उन्हें उसका दिग्दर्शन कराना गत तीन हजार वर्षों की दीर्घकालीन आस्तिक भावना को निर्मूल कर देगा।' एक वार उसने ड्यूक ऑव अर्गाइल को जो तत्कालीन भारत मन्त्री थे, लिखा था कि—भारत का धर्म नष्ट प्राय: है। अब यदि ईसाई धर्म उसका स्थान नहीं लेता तो दोष किसका।

वेवर का मत था कि गीता और महाभारत पर ईसाई प्रभाव है। वेवर के समर्थन में लौरिसर और वाशवर्न-हापकिन्स ने भी वहुत कुछ लिखा। इसका परिणाम यह हुआ कि योरोप में यह मत उत्पन्न हो गया कि महाभारत ईस्वी सन् के बाद का ग्रन्थ है। वेवर और ह्विटलिंग ने एक संस्कृत कोश बनाया, जिसमें फूहन उनका सहायक था। उसमें इन विद्वानों ने अधिक परिश्रम किया और भाषा-विज्ञान पर उसे आधारित किया। अध्यापक गोल्टुस्टर ने इसकी अलोचना की थी और यह रहस्य उद्घाटन किया कि राथ, वेवर, ह्विटलिंग, फूहन, आदि विद्वान लेखक किसी रहस्यपूर्ण कारण से इस बात के लिए दृढ़ संकल्प हैं कि जैसे भी सम्भव हो, भारत का गौरव नष्ट किया जाय।

सन् १८६९ में स्वामी दयानन्द काशी गये। उस समय वहाँ क्वीन्स कॉलेज के प्रिन्सिपल रुडल्फ हर्नले थे। हर्नले ने स्वामी दयानन्द से अनेक बार वैदिक सम्बन्धों पर विवाद किया था। अन्त में उसने स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में एक लेख लिखा। उसमें उसने लिखा था—दयानन्द हिन्दुओं को विश्वास दिला सकता है कि उनका वर्तमान धर्म अवैदिक है।...यदि उन्हें अपनी इस मौलिक भूल का पता चल जाय तो वे निस्संदेह हिन्दू धर्म को छोड़ देंगे। परन्तु अब वे मृत वैदिक धर्म की ओर न जायेंगे, वे ईसाई हो जायेंगे। बूलर, मोनियर, विलियम्स आदि से भी स्वामी दयानन्द की वेदविषयक वार्ता अनेक वार हुई थी, और स्वामी जीने पाश्चात्यों की हीन भावना को ताड़ लिया था। भारत के अन्य विद्वान भी यह

बात समझ गये थे।

मद्रास विश्वविद्यालय के इतिहास के आचार्य नीलकंठ शास्त्री ने लिखा था कि भारतीय समाज और भारतीय इतिहास के विषय में पाश्चात्यों ने जो आलोचना पद्धति आरम्भ की है वह उन्नीसवीं शताब्दी के योरोप की ईसाईयत के विचारों से प्रभावित है।

रायबहादुर सी० आर० कृष्णामाचार्लू ने भी लिखा था कि ये पाश्चात्य लेखक, जो नयी जातियों के प्रतिनिधि हैं, संस्कृति के उद्देश्य के स्थान में भिन्न उद्देश्य से जो प्राय अज्ञान और पक्षपातपूर्ण होता है, भारतीय इतिहास को लिख रहे हैं।

योरोप के पंडितों की सारी प्राच्य धारणाएँ भाषा-विज्ञान पर आधारित हैं, यह भाषा-विज्ञान जर्मनी में प्रौढ हुआ। मैक्समूलर कहता है भाषा विज्ञान अखण्ड है, और प्रागैतिहासिक युगों का एकमात्र साक्षी है। परन्तु मैक्समूलर के इस भाषा साक्ष्य पर कैनाडा के साक्षर रिचर्ड अलबर्ट विलसन ने लिखा है कि भाषा के समस्त क्षेत्र पर मैक्समूलर का व्यापक विश्लेषणात्मक अधिकार न था। इस प्रकार पाश्चात्य पंडितों ने कुछ तो अज्ञान से और कुछ पक्षपात के कारण भारतीय संस्कृति के इतिहास को बहुत विकृत कर दिया, जिसका अनुसरण हमने भारत में अंग्रेजी राज्य रहने तक किया। अब समय आ गया है कि हम स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा अपनी संस्कृति की छानबीन करें और अपने अतीत गौरव के सही रेखाचित्र उपस्थित करें।

भारतीय संस्कृति के सर्व प्राचीन स्रोत वेद हैं। वेदों का सांगोपांग अध्ययन हमें अतीत जीवन के विस्तृत रेखाचित्र प्रस्तुत करता है। त्रेता के आरम्भ में वेदों की शाखाओं के प्रवचन आरम्भ हो गये थे। इन दिनों यज्ञ विधियाँ बहुत हो गयी थीं। यज्ञ-क्रियाओं के भेद के कारण वेद की शाखाओं का विस्तार होने लगा। तभी से शाखागत पाठान्तरों का आरम्भ हुआ। वैदिक शाखायें, ब्राह्मण ग्रन्थ, जिनमें देवासुर संग्रामों की मूल कथायें हैं, पाश्चात्य जन उन्हें मिथ्या कल्पित Mythology कहते हैं। ब्राह्मणों के बाद आरण्यक-उपनिषद् हैं, जिनमें महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सन्दर्भ हैं। कल्पसूत्र भी इतिहास के बड़े साक्षी हैं। इस साहित्य में महाभारत से पूर्वकाल के महत्वपूर्ण इतिहास संकेत प्राप्त हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों से पाणिनि प्रभाव के पूर्वकाल पर भारी प्रकाश पड़ता है। पाणिनि स्वयं एक बड़ा साक्षी है। छान्दोग्य में अथर्वांगिरस ऋषियों के इतिहास के संकेत हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक पूर्ववर्ती इतिहास पुराणों का उल्लेख है। अनेक ऋषि-मुनि और विचारकों के मत और विचार हैं।

वाल्मीकीय रामायण और महाभारत इसके बाद भारतीय संस्कृति के इतिहास के मूलस्थान हैं। इन दोनों ग्रन्थों से आनन्दवर्धन, भास, भवभूति, सुबन्धु,

कालिदास, अश्वघोष आदि न जाने कितने महाकवियों ने प्रेरणा प्राप्त की है। महाभारत में आदि पर्व में ही २४ पुरातन राजाओं का उल्लेख है, इसके अतिरिक्त पचास के लगभग प्रतापी राजाओं की चर्चा है। ये सब राजा कविजन कीर्तित सुप्रसिद्ध थे।

कौटिल्य अर्थशास्त्र और स्मृतियाँ प्राचीन भारतीय संस्कृति पर एक असाधारण प्रकाश डालते हैं। स्मृतियाँ, धर्मसूत्र सब मिलकर प्राचीन भारत पर एक सच्ची सांस्कृतिक दृष्टि डालते हैं।

पुराण वह लगाध निधि है, जिनमें प्राग्वैदिक काल से मध्यकाल तक के सच्चे और गूढ़ ऐतिहासिक तथ्य छिपे पड़े हैं। ब्राह्मण काल में भी पुराण पुरातन रूप में विद्यमान थे। अथर्वांगिरस, उक्षनाकाव्य, सारस्वत, शरद्वानू, वाजश्रृवा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, द्वैपायन, ऋक्ष, वृहस्पति, इन्द्र, सविता, विवस्वान् यम, इन्द्र-त्रिधामा, त्रिविष्ठ, भारद्वाज, गौतम, सोमशुष्म, द्वैपायन, और जातुकर्ण ये पुराण वाचक पुरुष हैं। गौतम धर्मसूत्र और आपस्तम्ब धर्मसूत्र अथवा अथर्ववेद का इतिहास पुराण से गहरा सम्बन्ध है। उत्तरकालीन सहस्रावधि विद्वानों को इन्हीं पुराणों से प्रेरणा मिली है।

संस्कृत काव्य, नाटक, रूपकों में न केवल ऐतिहासिक सन्दर्भ संकेत हैं, उनमें तत्कालीन संस्कृति के भी गहरे रेखाचित्र हैं। वाण और कालिदास का वांगमय इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, कथा-साहित्य से भी बहुत बातों पर प्रकाश पड़ता है। कथा-साहित्य बहुत-सा नष्ट हो गया। बन्धुमती कथा, भागीरथी कथा, सुमनोत्तरा कथा, पैशाची भाषा की वृहतकथा, प्राकृत की तरंगवती कथा, रुद्र की त्रैलोक्य सुन्दरी, वररुचि की चारुमती, धवल की मनोवती, विलासवती नर्वदा सुन्दरी, बिन्दुमती आदि कथा ग्रन्थों का अब केवल नाम शेष ही रह गया है, पर प्राचीन साहित्य इनके माहात्म्य का संकेत देता है।

इस समय हमारे समक्ष कौटलीय अर्थशास्त्र है जो प्राचीन संस्कृति और समाज व्यवस्था पर पूरा प्रकाश डालता है। परन्तु महाभारत के शान्ति पर्व में प्राचीन अर्थशास्त्रों का एक इतिहास वर्णित है, जिसके आधार पर हमें ज्ञात होता है कि इन्द्र वाहुदन्ती पुत्र, बृहस्पति, उशनस, अंगिरस सुधन्वा और विरोचन, ब्रह्मा, विशालाक्ष, नारद, वुध, भीष्म-द्रोण, उद्धव-शाम्वय आदि दिग्गज अर्थशास्त्री थे। काशी विश्वविद्यालय के अध्यापक सदाशिव अल्तेकर का कथन है कि अर्थशास्त्री सम्वन्धी वहुत प्राचीन ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं परन्तु मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति, पराशर स्मृति, शुक्रनीति आदि में प्रकट है कि प्राचीन ग्रन्थकार अज्ञात रहकर ग्रन्थ रचना करते थे, और अपनी कृतियों को दैवी या अर्धदैवी पुरुषों के नामों पर प्रसिद्ध करते थे।···ब्रह्मा-मनु-शिव अथवा इन्द्र के नामों से लिखे गये राजशास्त्र मानव विद्वानों ने ही लिखे थे। स्वायंभुवमनु की रचना का उल्लेख

महाभारत और निरुक्त मे है। महाभारत के ५६ वें अध्याय मे प्राचेतस मनु के राजधर्म का उल्लेख है। सोमदेव सूरि ने भी वैवस्वत मनु का एक वचन उधृत किया है। प्राचीन साहित्य मे केवल यही नही, कपिल-आसुरि तथा पचशिखाचार्य के साख्याशास्त्र, हिरण्य गर्भ का एक लाख श्लोक का योगशास्त्र, इन्द्र-भरद्वाज का व्याकरण, अपान्तरतमा और सनत्कुमार के धर्मशास्त्र भारत की प्राचीनतम सस्कृति की लुप्त निधि हैं। इसी पर लक्ष्य करके प्राचीन आचार्य देवल कहता है—"एतो साख्ययोगौच धिकृत्य यैर्युक्तित समयतश्च पूर्व प्रणीतानि विशालानि गम्भीराणि तन्त्रामणीह मक्षिप्योद्दिशतो वक्ष्यन्ते"। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे कुछ विषहर प्रयोग हैं। ऐसे प्रयोग बृहस्पति और उशना के टीकाकार कल्हण और हेमाद्री ने किये हैं। अर्थशास्त्र का टीकाकार महास्वामी भी अपनी टीका मे बार्हस्पत्य श्लोक उद्धृत करता है।

बौद्ध जैन ग्रन्थो मे तत्कालीन इतिहास और लोकजीवन के महत्वपूर्ण सकेत हैं। बौद्ध साहित्य पहले और जैन साहित्य पीछे विक्रम की चौथी पाँचवी शताब्दी मे लिपिबद्ध हुए। इन ग्रन्थो मे कुछ भूलें अवश्य हैं, पर उनका महत्व कम नही तथा इन ग्रन्थो का सिलसिला ईसा की सातवी शताब्दी तक चलता है। मजुश्री मूलकल्प नामक बौद्ध ग्रन्थ मे, जो लुप्त था और सन् १९१५ मे प्राप्त हुआ है, बहुत इतिहास सामग्री उपलब्ध है। इस ग्रन्थ का चीनी भाषा मे अनुवाद ईसवी सन् १००० के लगभग हुआ था।

काश्मीरी पडित कल्हण का राजतरगिणी ग्रन्थ अमूल्य इतिहास सामग्री हमे देता है। इसी प्रकार नीलमत पुराण मे भूगोल सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण तथ्य हैं।

ज्ञात विदेशी यात्रियो मे प्राचीनतम मेगस्थनीज है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के काल मे भारत आया। उसका ग्रन्थ नष्ट हो चुका है, पर कुछ यूनानी ग्रन्थकारों ने उसके यात्रा विवरण अपने ग्रन्थो मे उद्धृत किये हैं, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर आठवी शताब्दी तक लगभग १०० चीनी यात्री भारत आये, जिनमे तीन प्रसिद्ध हैं—फाह्यान, ह्वेनच्वांग और इत्सिग है, जिनके महत्वपूर्ण यात्रा ग्रन्थ हमे उपलब्ध हैं। इन विवरणो मे कुछ ऐतिहासिक भ्रान्तियाँ अवश्य हैं, पर इससे उनका महत्व कम नही होता। मुस्लिम यात्रियो मे सुलेमान सौदागर और अलबरुनी प्रमुख हैं। अलबरुनी का ग्रन्थ भारतीय सस्कृति पर अद्वितीय प्रकाश डालता है, और भी अरब लेखको ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। तिब्बत के यात्री भी भारत आये। ये विद्वान बौद्ध धर्म की शिक्षा लेने पजाब और बगाल मे आते थे, उनमे लामा तारानाथ का नाम प्रसिद्ध है, जिसका ग्रन्थ भी उतना ही प्रसिद्ध है। तिब्बत के लेखको द्वारा पता चलता है कि मागध पडित इन्द्रभद्र तथा मालव पडित मठभद्र के भारतीय इतिहास के ग्रन्थ तिब्बत मे विद्यमान थे।

प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहास की सबसे सच्ची और खरी साक्ष्य शिला लेखों, ताम्रपत्रों और मुद्राओं की है। इन्होंने हमारे लुप्तप्राय इतिहास की अनेक कड़ियों को जोड़ा है। सन् १९०४ में लार्ड कर्जन ने भारत में पुरातत्व विभाग की स्थापना की थी। इस विभाग ने प्राचीन भारतीय संस्कृति के इतिहास की खोज-जाँच में बड़ी सहायता दी। बड़ी महत्वपूर्ण सामग्री इस विभाग ने प्रस्तुत की।

विन्सेन्ट स्मिथ ने भारतीय इतिहास के आधारों को चार भागों में विभक्त किया है—(१) भारतीय साहित्य, (२) विदेशी साहित्य, (३) पाषाण लिपि सिक्के आदि और (४) समसामयिक ऐतिहासिक ग्रन्थ। सिन्धु घाटी की सभ्यता के उद्‌घाटन के बाद पाश्चात्यों की अभिरुचि अधिक भारतीय प्राचीन वैदिक सभ्यता की ओर झुकी। स्मिथ ने इतिहास के सहायक भारतीय ग्रन्थों में महाभारत, पुराण रामायण, राजतरंगिणी, जैन ग्रन्थ, जातक और अन्य बौद्ध ग्रन्थ तथा लंका में प्राप्त पाली साहित्य की गणना की है। अनेक विद्वानों ने व्याकरण ग्रन्थों में भी ऐतिहासिक तत्व निकाले हैं। पुराणों में वायु, ब्रह्माण्ड, हरिवंश, पद्म और मत्स्य पुराणों को प्रमाण माना है। स्मिथ ई० पू० छटी शताब्दी से ऐतिहासिक काल मानते हैं। इसलिए वे वेदों और ब्राह्मणों को इतिहास प्रमाण में नहीं गिनते। इन ग्रन्थों में सन् सम्वत् न देखकर उन्होंने वैदिक काल को ऐतिहासिक दृष्टि से दूर फेंक दिया है। अन्य पाश्चात्य पंडित भी उनके ही मत पर काफी देर तक चलते रहे। मैकडानल ने महाभारत को बौद्ध काल से प्राचीन माना है। पुराण प्राचीन घटनाओं को लाखों वर्षों की प्राचीनता देना चाहते हैं, इधर पाश्चात्य उन्हें कल ही का प्रमाणित करते हैं। इसी से स्मिथ ने ई० पू० छटी शताब्दी ही से इतिहास काल मान लिया। परन्तु वेदों, ब्राह्मणों, स्मृतियों, पुराणों में जो प्रामाणिक घटनाएँ हैं, जो घटा-बढ़ाकर नहीं लिखी गयी हैं। उनका आधार छोड़कर तो हम आर्यों की संस्कृति पर प्रकाश डाल ही नहीं सकते। वास्तव में वेदों का सबसे बड़ा मूल्य ऐतिहासिक ही है। यद्यपि वहाँ ऐतिहासिक तथ्य अप्रासंगिक हैं, परन्तु वेदों की उपमा, रूपक, उदाहरण महिमा कथन आदि के द्वारा वेदों से महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। परन्तु वहाँ पूरे ऐतिहासिक वर्णन नहीं हैं, संकेत मात्र हैं। अनेक पूर्व पुरुषों के नाम, युद्ध, राज्यों, पर्वतों, नदियों आदि के वर्णन मिलते हैं। ब्राह्मणों में गाथाओं द्वारा कुछ अधिक स्पष्ट प्रकाश प्राचीन इतिहास और सांस्कृतिक सन्दर्भो पर पड़ता है। सूत्रों और स्मृतियों में भी बहुत ऐतिहासिक संकेत हैं, परन्तु ऐतिहासिक सहायता की दृष्टि से पुराणों का महत्व सबसे अधिक है। सबसे प्रथम जो ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गये वे पुराण ही हैं, परन्तु ब्राह्मणों के युग में ही आर्यों में जो धार्मिक महिमा बढ़ने लगी, तो यह परिपाटी सूत्रों और स्मृतियों के काल में और बढ़ी। पुराण काल में तो वह

पराकाष्ठा को पहुँच गयी। वेदों में मनुष्य की आयु सौ सवा सौ वर्ष कही गयी है, कोई मनुष्य अमर नहीं माना गया, परन्तु पुराणों में अनेक अमर पुरुष भी वर्णित किये गये, तथा उनकी हजारों वर्षों की आयु मान ली गयी। काल-साम्य ठीक न होने से एक ही पुरुष अनेक स्थानों और समय में देखा गया, इस गड़बड़ी के दूर होने में इस मान्यता की सहायता ली गयी। देखने में पुराणों के सन्दर्भ पूर्ण और दृढ़ हैं, परन्तु संहिता के समान नहीं। इसके अतिरिक्त पुराणों में गुप्त काल तक घटाव-बढ़ाव होते रहे। इसी से वैदिक साहित्य के समान वे प्रारम्भिक और निर्भ्रान्त नहीं रह गये, इसी से सत्यता की दृष्टि से वैदिक साहित्य पौराणिक से अधिक प्रामाण्य है। इसी से मध्य युग में वेद प्रामाण्य को अपौरुषेय मान लिया गया था। फिर भी पुराणों के ऐतिहासिक महत्व बहुत हैं, जिन पर पाश्चात्यों और भारतीय विद्वानों ने भी अभी बहुत कम ध्यान दिया है। विशेषकर विदेशी पूरक इतिहास और गवेषणाओं से उनका तुलनात्मक अध्ययन हुआ ही नहीं है।

पुराणों के साहित्य का मूल बहुधा चारणों, सूतों और मागधों आदि के द्वारा रक्षित हुआ। जहाँ संहिता, ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थ वैदिक तथा ब्राह्मण साहित्य के अंग हैं, वहाँ पुराण मूलतः बहुधा अब्राह्मण के हैं। पाश्चात्यों ने पुराणों की बहुधा अवहेलना की है। नव्य दृष्टि से पुराणों का अध्ययन दो पंडितों ने किया है। एक पार्जीटर ने दूसरे सीतानाथ प्रधान ने। पार्जीटर के मतानुसार सूत पौराणिक हैं, मागध वंश के ज्ञाता तथा वन्दित। जहाँ इतिवृत्त लिखा हो वहाँ वेद का संकेत है। इनके मत से वायु और ब्रह्माण्ड सर्व प्राचीन हैं। उनका यह भी कथन है कि कभी ये दोनों एक ही थे। वायु, ब्रह्माण्ड, हरिवंश, पद्म और मत्स्य पुराण औरों से अधिक मान्य हैं। उनमें मूल वृत्तान्त है।

वायु, ब्रह्माण्ड और विष्णु पुराणों के आधार पर व्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्प में सूक्तियाँ बाँटी। कल्पनाओं के आधार पर उन्होंने इतिहास पुराण बनाया, जिसे लोमहर्षण ने छह रूपों में विभक्त किया और छह शिष्यों को पढ़ाया। आत्रेय सुमति, काश्यप, अकृतव्रण, भारद्वाज, अग्नि वर्चस, वशिष्ट, मित्रयु, सावर्णि, सामदत्ति और सुदर्शनशांशपायन। इनमें काश्यप, सावर्णि और शांश-पायन ने एक-एक संहिता बनायी। पहली संहिता लोमहर्षण की थी। शांशपायन की संहिता का आकार नहीं दिया है, शेष तीनों संहिताएँ चार-चार हजार श्लोकों की थीं। आगे इन्हीं का यह वर्तमान नवीन रूप बना जो इस समय है। पुराणों में लोमहर्षण को व्यास का समकालीन शिष्य कहा गया है, परन्तु वह उनकी पुराण परम्परा में उत्तरकालीन पुरुष हैं।

डॉ० सीताराम प्रधान के मतानुसार पुराणों के रूप भिन्न-भिन्न कालों में परिवर्तित होते रहे हैं। प्रथम व्यास काल में, दूसरे मागध नरेश सेनजित के काल में, तीसरे नन्दवंश के काल में, चौथे गुप्त काल में। भागवत को वे उत्तरकालीन

कहते हैं। वायु पुराण उनके मत से भी प्राचीन है।

पुराणों के ऐतिहासिक वृत्तों में सबसे बड़ी त्रुटि उनमें सन् सम्वतों का न होना है। इसलिए सन् सम्वतों के अभाव में हमें ही खास-खास समयों को स्थिर करके आगे चलना पड़ता है। इन समयों के निर्णय में हमें पुराणोक्त राजवंश सबसे बड़े सहायक हैं। ऐतिहासिक काल निर्णय उसी से होता है। प्राचीन सूर्य और चन्द्रवंश के विवरण सभी पुराणों में हैं, परन्तु ये विवरण अस्त-व्यस्त हैं। किसी में कुछ, किसी में कुछ। पीढ़ियों में भी अन्तर है। इस दिशा में वाल्मीकि के विवरण भी भ्रान्त हैं। इसलिए इन सब प्रामाणिक वंशावलियों को दृढ़ करने के लिए सब पुराणों का सम्मिलित अध्ययन और अन्य ग्रन्थों की गवाही जोड़ने से ही ये राज-वंश पुष्ट होते हैं। ये राजवंश अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वास्तव में ये ही राजवंश वैदिक आर्यो के राजवंश हैं और इन्हीं के चरित्र और राज्यों में वैदिक संस्कृति का समावेश है।

डॉ० प्रधान ने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'क्रोनोलोजी ऑफ एन्शियन्ट इंडिया' में राम से युधिष्ठिर तक का वर्णन अन्यन्त छानबीन से किया है। यही काल द्वापर युग है। प्रधान ने तेरह प्राचीन वंशावलियाँ प्राचीन पौराणिक ग्रन्थों से निकालकर यह प्रमाणित किया है कि इतने काल में—राम से युधिष्ठिर तक १२ से १५ पीढ़ियाँ ही हुई हैं। उन्होंने पुराणों की अनेक वंशावलियों को अशुद्ध प्रमाणित किया है।

पार्जीटर ने अपने ग्रन्थ 'एन्शियन्ट इण्डियन हिस्टोरिक ट्रैडीशन' में मनु-वैवस्वत से राम तक की वंशावलियों पर अच्छा प्रकाश डाला है। यही काल पुराणोक्त त्रेता युग है। एक तीसरा ग्रन्थ राय चौधरी ने पुराणों के अध्ययन पर लिखा है, जिसमें परीक्षित से गुप्त काल तक प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार वैवस्वत मनु से राम, युधिष्ठिर-गुप्तकाल तक के इतिहास पर यथा सम्भव यथेष्ट प्रकाश पड़ा है। परन्तु एक मूल वस्तु अभी तक अन्धकार ही में है। पुराणों में स्वायंभुव मनु का भी वंश है। इसकी चर्चा न किसी आधुनिक भारतीय विद्वान ने की है, न पाश्चात्यों ने। वास्तव में स्वायंभुव मनु की ४५ पीढ़ियों का भोग-काल ही सतयुग है।

इस प्रकार सतयुग, त्रेता, द्वापर ये तीन युग ही वैदिक आर्यो की सभ्यता के युग हैं।

तीसरा अध्याय

वेदों का निर्माण

निर्माण-काल—सतयुग-त्रेता-द्वापर इन तीन युगों में निरन्तर वैदिक ऋचाएँ और मन्त्र समय-समय पर मेधावी ऋषियों द्वारा बनते रहे, जो मौखिक रूप में पढ़े-सुने जाते थे। इन ऋचाओं और मन्त्रों के निर्माता ऋषि याजक भी थे, राजा भी थे, शूद्र भी थे और स्त्रियाँ भी थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ ही से वैदिक ऋषियों की दो धाराएँ चलती थीं—एक ऋक् दूसरी मन्त्र। मन्त्र अथर्व शाखा के थे। अथर्व के ऋषि अंगिरा और अंगिरस गोत्री थे। सबसे प्राचीन सूक्तकारों में अथर्वण, अंगिरस, भृगु, जामदग्नि अत्रि, वशिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, कश्यप, अगस्त्य, काण्व और अंगिरा थे, जो सम्भवत आर्यों और देवों के प्रमुख कुटुम्बों के मुखिया थे। अंगिरा गोत्र में केवलांगिरस, हारीत, मौद्गलायन, वामदेव तथा भारद्वाज थे। नाभाग, अथर्वण, भृगु और भी प्राचीन प्रतीत होते हैं। अंगिरसों ने अग्निपूजन का आरम्भ किया था।[1] सप्तऋषियों में अथर्व में अथर्वांगिरस तथा भृगु अंगिरस का उल्लेख है। अंगिरस से ही भारद्वाज गण तथा गौतम गण हुए।

सतयुग में चाक्षुष मनु काल में प्रथम ऋचाएँ बनीं। इसके बाद देवलोक में आदित्यों और भृगुओं ने ऋचाएँ तथा मन्त्रों का निरन्तर निर्माण किया। भारत में आने पर आर्यों ने भी उसमें वृद्धि की—इस प्रकार वेदों का निर्माण चाक्षुष मनु से युधिष्ठिर काल तक—ई० पू० २४६३ से ११०० ई० पूर्व तक लगभग १४०० वर्षों तक निरन्तर होता रहा। वेदोदय चाक्षुष मन्वन्तर में प्रजापतियों द्वारा हुआ था, इसी से ब्राह्मणों में वेदों को प्राजापत्य-श्रुति कहा गया है। तथा ब्राह्मण ग्रन्थ वेद का आरम्भ प्रजापतियों ही से मानते हैं। इसी से ऋषियों को उन श्रुतियों का मन्त्रद्रष्टा माना गया है और उनका नाम

---

1 ऋ० १०।६७।२।१

श्रुतियों के साथ सुरक्षित रखा गया है। उनके नाम पुराणों और ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं। इन दोनों श्रोतों से ऋषियों की गणना में कोई भूल नहीं हुई है। वैदिक सूक्तों के साथ ही उन ऋषियों के नाम भी कंठ रखे गये, जो उन सूक्तों के उद्घोषक थे। इससे सूक्तों के साथ ही ऋषियों के नाम भी अभंग रहे। इन वैदिक ऋषियों में पृथुवैन्य, विवस्वान्-मनु-पुरुरवा, मान्धाता युधिष्ठिर के समकालीन हैं, और जो खाण्डव दाह से बचाये गये थे।

इस तरह वेद काल पृथुवैन्य से—सतयुग के मध्यकाल में चाक्षुष मन्वन्तर में प्रारम्भ होकर महाभारत संग्राम से कुछ वर्ष पूर्व तक का निर्णय होता है। पृथुवैन्य का काल २४९३ ई० पूर्व ठहरता है—तथा भारत संग्राम काल ११७७ ई० पूर्व। इसका अर्थ यह हुआ, कि वेद इस काल में निरन्तर १३१६ वर्षों तक बनते रहे।

वेदों के काल निर्णय के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। प्राचीन भारतीय वेदों को अपौरुषेय-ईश्वर की वाणी मानते हैं। उनके मत से चारों वेद सृष्टि के आदि काल से विद्यमान हैं। अवांतर प्रलयों के पश्चात् ऋषियों द्वारा उनका पुनः-पुनः आविर्भाव हो जाता है। उनका कहना है कि प्रलय के बाद ब्रह्मा आदि ऋषि चारों वेदों को मनु, अत्रि, भृगु, वशिष्ठ आदि ऋषियों को पढ़ा देते हैं। निरुक्तकार यास्क तथा स्वामी दयानन्द का भी ऐसा ही मत है।

पाश्चात्य पंडितों का मत है कि वेदों का निर्माण ऋषियों द्वारा ही हुआ है, समय के सम्बन्ध में उनके मत भिन्न-भिन्न हैं, जो इस प्रकार हैं—

मैकडानल्ड	ई० पू० १५०० से ई० पू० ५०० तक	(वर्तमान रूप ई० पू० पाँचवीं छठी शताब्दी में बना)
मैक्समूलर	,, ,, १५०० से ,, ,, १२०० तक	(इन्होंने पहिले १२०० से ८०० ई० पू० गणना की थी)
रमेश चंद्रदत्त	,, ,, २००० से ,, ,, १४०० तक	(ई० पू० तक माना था। उनका पहला कथन इस प्रकार था— छन्दस १२००-१००० ई० पू०, मंत्र १०००-८०० ई० पू०, ब्राह्मण ८००-६०० ई० पू०, सूत्र ६००-२०० ई० पू०)
हर्बर्ट एच गोवेन	ई० पू० १४००	
ह्विटनी वेनफ़े	,, ,, १८३० से ई० पू० ८६०	(२००० ई० पू० से १५०० ई० पू० तक भी मानते हैं)

इन्साइक्लो-पीडिया-ब्रिटेनिका	ई० पू० २००० से ई० पू० १५०० तक
जैकोबी	ई० पू० ४०००
रॉथ	,, ,, १०००
एफ मूलर	,, ,, २००० से ई० पू० १५००
हॉग	,, ,, २५०० से ,, ,, १४००
विल्सन	,, ,, ३५००
तिलक	,, ,, ४००० से ,, ,, २५००

कीथ का कहना है जे० हर्टले के अनुसार जूराष्ठर का समय ई० पू० ५५६ से ५२२ ई० पू० है। कुछ लोग यह समय ई० पू० ६६० से ई० पू० ५८३ भी मानते हैं। हर्टल इप्सन का यह कथन नहीं मानते कि ईरानी तथा भारतीय आर्य ई० पू० २००० तक साथ साथ रहे। पीक यह समय १७६० निर्धारित करते हैं। परन्तु ये सभी मत अनिश्चित और असिद्ध हैं। वैदिक ऋषियों में सबसे प्राचीन ध्रुव, पृथुवैन्य, चक्षुपमनु, वेन-मनु, विवस्वान्-पुरूरवा, ययाति आदि हैं, तथा सबसे अन्तिम खाण्डव दाह से बचे हुए जारितर द्रोण आदि चार ऋषि तथा युधिष्ठिर के समकालीन नारायण हैं। इस प्रकार वेद काल पृथुवैन्य-चाक्षुष मनु के काल से महाभारत संग्राम काल ई० पू० ११७७ तक ही ठीक बैठता है। ऋग्वेद के अधिक ऋषि समकालीन हैं, जो त्रेता की समाप्ति काल में थे—यह समय ई० पू० १५६६ ठहरता है।

वागजकोई का संधि पत्र ई० पू० चौदहवीं शताब्दी का है, जिसमें इन्द्र-मित्र वरुण और नासत्य को नमस्कार किया गया है। यह समय लगभग राम काल है। यह स्पष्ट है कि इस काल से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व से ही वेद निर्माण हो रहा था, अतः इस समय तक वैदिक देवताओं की प्रसिद्धि हो जाना स्वाभाविक है—और मेसापोटामिया के ये राजा जिनका यह संधिपत्र है—वैदिक देवताओं को आर्यों की भांति पूजते थे। अथच वे आदित्यों के ही किसी वंश के थे, जिसके कि आर्य वंशधर हैं। यह सन्धिपत्र हट्टी के हिताती और मितन्नी लोगों के बीच था। हिताती को मिस्री लेट मत्री कहते हैं—'मत्री', 'क्षत्रिय' का विकृत रूप है।

विद्वानों का मत है कि अथर्ववेद भी अति प्राचीन है, परन्तु उसमें बहुत बाद तक की रचनाओं का समावेश है तथा पृथक् पद्धति के कारण बहुत काल तक उसकी गणना वेदों में नहीं हुई। यजुर्वेद ऋग्वेद सम्पादन के बाद यज्ञ विधि के लिए पीछे से सम्पादित किया गया। सामवेद में तो केवल ७२ मन्त्र ही नये हैं। शेष १५०० के लगभग ऋग्वेद से आये हैं। यजुर्वेद का कुछ अंश बुद्ध से पूर्व तक बढ़ता रहा। उपनिषदों तथा गौतम बुद्ध के समय चारों वेद प्रस्तुत थे। जनमेजय को पुराण सुनाने वाले वैशम्पायन के शिष्य और भांजे याज्ञवल्क्य के समय ही में

यजुर्वेद पूर्ण होकर उसकी तैत्तिरय और शुक्ल शाखाएँ सम्पादित हुई।

देश और विदेश के वेदों में सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत रहे हैं। एक मत ब्रह्मवादी है। इस मत का अभिप्राय यह है कि वेद परमात्मा ने सृष्टि के आदि में चार समाधिस्थ ऋषियों के हृदय में प्रकट किये। यह सबसे पुराना मत है। इसकी पुष्टि ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् और धर्मसूत्रों ने की है। सायण और ऋषि दयानन्द भी इसी मत के हैं। ऋग्वेद १०।६०।६, यजु० ३१।७, और ३४।५, अथर्व १०।४।७।२०, शतपथ १४।५।४।१०, मनु १।१३, १२।६४ से १२।१०० तक निरू० अ० २, आदि स्थलों के प्रवचनों से उपर्युक्त पक्ष का समर्थन किया जाता है। दूसरा मत दार्शनिक है। इस मत में वेद अनादि और नित्य नहीं माने जाते, उनकी उत्पत्ति हुई है ऐसा माना जाता है। इसकी पुष्टि में सांख्य ५।४५ से ५१ तक, योग १।२४ (व्यास भाष्य और वाचस्पति मिश्र का तर्क) न्याय २।६७, वैशेषिक १।१।३, वेदान्त १।३, मीमांसा १,१,१८, उपस्थित किये जाते हैं। तीसरा मत निरुक्त का है। वह लगभग प्रथम मत से सहमत है। चौथा कौत्स-मत है जो कहता है—वेद निरर्थक हैं, उनके अर्थ स्वतन्त्रता से हो ही नहीं सकते। निरुक्तकार ने इस मत का विरोध किया है।

पाँचवाँ याज्ञिक मत है। इसका मन्तव्य यह है कि वेद किसी एक युग में किन्ही खास चार ऋषियों के हृदय में नहीं प्रकट हुए, किन्तु जिस मन्त्र का जो ऋषि है उसी के हृदय में प्रकट हुए हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। अभी वेद सम्पूर्ण नहीं हो गये। इस मत वाले वेद के देवताओं को चैतन्य मानते हैं। शंकर-स्वामी इसी मत के पुरुष हैं। ऋग्वेद का १०।७१।११ का मन्त्र तथा ऋ० १०।६०।१६ का मन्त्र इस मत की पुष्टि में दिया जाता है। इसी मत की पुष्टि ब्राह्मण ग्रन्थ करते हैं, परन्तु निरुक्तकार इनका विरोध करता है।

छठा मत ऐतिहासिक है। यह वेद में ईश्वरीय ज्ञान न मानकर उसमें आर्य सभ्यता का प्राचीन इतिहास मानता है। अपनी पुष्टि में यह पक्ष ऋग्वेद के १।३२।०, १।३२।१।, ३।३३।५, ३।३३।६, १०।६८।५, १०।६८।६, ७।४७, ७।४।८, १।१०५।६, १।१०४।१, १।१२६।७, ३।५३।१४।४।३०।१८ आदि मन्त्र उपस्थित करता है।

सातवाँ मत पाश्चात्य विद्वानों का है। इस मत वाले वेदों से आर्यो के आदि और उद्गम स्थानों की खोज करते हैं। इस मत वाले अपनी गवेषणा में—गाथा शास्त्र, व्युत्पत्ति शास्त्र, पुरातत्व शास्त्र, मस्तिष्क शास्त्र, मस्तिष्क विज्ञान, मान-वीय शास्त्र, भूस्तर शास्त्र तथा प्राण्यवशेप शास्त्र की सहायता लेते हैं। तिलक पक्ष भी इसी मत का है।

दर्शन शास्त्र प्रवल बुद्धिगम्य शास्त्र है, पर वेदों के विपय में उसका वर्णन अस्पष्ट ही है और विशेपता यह है कि सव दर्शनकारों का इस विपय में मत भी

एक नही । वेदान्त सूत्रकार, उसके भाष्यकार व्यास और शकर का कथन है कि शब्द जिस वस्तु जाति के वाचक हैं वह जाति नित्य है। नैयायिक वेदो को स्वत प्रमाण कहते हैं। वैशेषिक ईश्वर कृत कहते हैं, सांख्यकार आदि पुरुष से वेद की उत्पत्ति मानते हैं और मीमासाकार वेदार्थ को नित्य मानते हैं। ये सभी ब्रह्मवादी मत के लगभग अनुकूल हैं।

यदि तिलक मत पर ध्यान दिया जाय—जो कि अब तक प्रकाशित सभी मतो की अपेक्षा प्रमाणयुक्त है तो भू गर्भ शास्त्रवेत्ताओ का यह कथन, कि उत्तरीय ध्रुव म हिमागम काल को १०।१२ हजार वर्ष हो गये, तिलक मत की काल-कल्पना से मिलान खा जाता है, परन्तु वेदो के समर्थक विद्वान् प० सत्यव्रत सामश्रमी ने तिलक मत का गहरा विरोध किया है। हमारी सम्मति से इस विरोध मे बल नही है न विवेचना हैं, तर्क भी स्थूल ही है।

तिलक ने अपने ओरायन नामक ग्रन्थ मे अकगणित और ज्योतिष के सिद्धान्तो के आधार पर अनैतिहासिक वैदिक काल के समय का इस प्रकार अनुमान किया है—

वेदकाल—मृगशीर्षकाल		ईस्वी सन से	पूर्व	१०,००० से ८०००	वर्ष तक
,,	,,	,,	,,	६००० से २५००	,,
,,	कृत्तिकाकाल	,,	,,	१५०० से १४००	,,
तैत्तिरीय संहिता	(ब्राह्मण)	,,	,,	२५०० मे १४००	,,
,,	,, (अरण्यक)	,,	,,	२००० से १४००	,,
ज्ञानपर उपनिषद्	,,	,,	,,	१६०० स १६००	,,
अर्वाचीन	,	,,	,,	७०० से ६००	,,

प्रसिद्ध ऐतिहासिक सर रमेशचन्द्र दत्त वेदकाल को ईस्वी सन् से २००० वर्ष से १४०० वर्ष पूर्व मानते हैं। इनका खयाल है कि ऋग्वेद का निर्माण तब हुआ है जब आर्य लोग सिन्ध की घाटी मे रहते थे। वेद भाष्यकार सायण भी ऋग्वेद को सर्वप्राचीन मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानो का यह मत है कि ऋग्वेद का अधिकाश भाग उस समय का बना हुआ है जबकि आर्य लोग सिन्धु के तीर पर बसते थे। शेष अश की रचना पीछे क्रमश हुई है। विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्द एव दशम मडल के ऋषि वृन्द, ऋक्—प्रकाशक ऋषियो के मध्य आधुनिक मालूम पडते हैं। व्याकरणाचार्य पाणिनी, मसीह से पूर्व चतुर्थ शताब्दी मे हुए थे, यह बात अब निर्विवाद हो गयी है। यह युग सूत्रकाल का मध्यवर्ती युग था। ऋग्वेद की विशेष शाखाओ की शौनक द्वारा की गयी रचना यास्क के निरुक्त के बाद की है क्योकि शौनक के 'बृहददेवता' म यास्क के मत का उल्लेख है। इसका स्पष्ट अर्थ यह होता है कि यास्क, पाणिनी से लगभग १५० वर्ष बाद हुआ। सूत्र ग्रन्थो का आरम्भकाल बुद्ध से प्रथम का है क्योकि जैन तथा बौद्धदर्शनशास्त्र हिन्दू दर्शनशास्त्र के प्रति-

वादमूलक हैं। तथा उपनिपदों के ही आधार पर उनकी रचना हुई है। उपनिषद् तथा ब्राह्मण का परिशिष्ट आरण्यक का क्रमिक विकास है। दो-चार सौ वर्षों में विराट् साहित्य का ऐसा विकास नहीं हो सकता।

मैक्समूलर ब्राह्मणों की रचनाकाल ईसा से ८०० से ६०० वर्ष पूर्व और वेद विन्यास काल १००० से २००० वर्ष पूर्व मानते हैं परन्तु यह काल केवल निरर्थक युक्तिवाद पर निर्भर है। जर्मन विद्वान याकोर्वा और तिलक के ज्योतिष सन्वन्धी अनुसंधान के वाद मैक्समूलर का मत स्थिर नहीं रहता।

२. वेदों का निर्माण स्थल

तिलक ने ज्योतिष के आधार पर वेदों के सम्बन्ध में जो गवेषणा की है उसके दो परिणाम प्रकट हैं। एक परिणाम तो यह है कि वेदों का निर्माण ईसा से ८ से १० हजार वर्ष पूर्व तक का है और दूसरा परिणाम यह है कि वेदों का निर्माण उत्तरी ध्रुव या सुमेरु पर हुआ है। ऋग्वेद १।२४।१०। का मन्त्र तिलक का प्रवल अवलम्वन है। इस मन्त्र का अर्थ यह है—

"ये जो सप्तर्षि नक्षत्र सिर के ऊपर स्थित है, वे रात्रि में दिखते हैं और दिन में अदृश्य हो जाते हैं। चन्द्रमा भी रात ही में दिखता है, ये वरुण के अक्षय कर्म है।"[1]

इस मन्त्र में सिर के ऊपर स्थित सप्त ऋषियों का वर्णन है। यह सप्तर्षि केवल उत्तरीय ध्रुव में ही सिर के ठीक ऊपर दीख पड़ते हैं। इस प्रकार का वर्णन ऋग्वेद की १०।८।९ की १८ ऋचाओं का जो सूर्य स्तुव सूक्त है, उसकी दूसरी ऋचा के प्रथमार्द्ध में भी है।[2] दूसरी विचारणीय वात ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर दीर्घ उषा का वर्णन है।

ऋग्वेद ७।७६।३ में देखिये—"उपा को प्रकट हुए सूर्योदय के समान अनेक दिवस व्यतीत हो गये हैं। जैसे स्त्री प्रिय के चारों ओर घूमती है उसी तरह उषा घूमती है।"[3]

यह घूमने वाली उषा कैसी? इसी प्रकार के प्रमाण ऋग्वेद के ८।४१।३, १।११३।१०, ११, १२, १३ में मिलते हैं। इनमें उषा को दीर्घ काल तक स्थिर वताया है। इन मन्त्रों में उषा का वहुवचन में वर्णन हैं। अथर्ववेद ७।२२।२ और

---

१. अमीय ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुहचिद्दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचा क शच्चन्द्रमा नक्त मेति॥

२. ससूर्यः यर्युरूवरां स्येन्द्रोववृत्याद्रथ्येव चक्रा।

३. तानी दहानि वहुलान्यासन्या प्राचीन मुदिता सूर्यस्य।
यतः परिजार इवाचरन्त्युपो ददृक्षेनपुनर्यतीव॥

तैत्तरीय संहिता का० ४ प्र० ३ अ० ११ में ३० भागों में घूमती हुई उषा का वर्णन किया गया है। ये प्रतिदिन होने वाली उषाएँ नहीं, बल्कि उत्तरी ध्रुव की दो मास तक होने वाली उषा हैं, जिनको निश्चय ही इन सूक्तों के ऋषियों ने देखा था। इसके अलावा ऐतरेय ब्राह्मण २।२।५ में लिखा है कि अग्निष्टोम आदि यज्ञों में प्रात काल पक्षियों के बोलने से पहले ही प्रातरनुवाक् की सहस्र ऋचाओं का पाठ करे। भला सहस्र ऋचाएँ १ या १।। घंटे के प्रभात में कैसे पाठ की जा सकती हैं ? उनके पाठ के लिए तो बहुत लम्बा प्रभात होना चाहिए।

जिस प्रकार ऋग्वेद में प्रभात और उषा का वर्णन है, उसी प्रकार दीर्घ रात्रि का भी वर्णन पाया जाता हैं। ऋ० १।३२।१० में दीर्घतम शब्द आये हैं। ३७।६७।२ में बड़े ही हर्ष के साथ वसिष्ठ ऋषि कहते हैं—"हम को तम का अन्त दीख पड़ा और उषा की ध्वजा दीखने लगी। इसी प्रकार ऋग्वेद के २।२७।१४ में" 'दीर्घा तमिश्रा' शब्द है। ऐसी ही बातें ऋ० १०।१२४।१, ऋ० २।२।२, १०।६२७ म हैं। इन मन्त्रों में महा रात्रि का वर्णन है। मैक्समूलर ने इसका अर्थ 'निरन्तर रात्रि' किया है। इसी प्रकार का वर्णन अन्यत्र भी है।

इसी प्रकार ऋ० ५।४५।५।१०।१२८।३, २।८७।५ में दीर्घ रात्रि के समान दीर्घ दिन का भी वर्णन है।

इन सब बातों की पुष्टि तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।६।२२।२ से होती है। एक वा एतद्देवानामह यत्संवत्सर।' अर्थात् देवताओं का १ दिन १ वर्ष का होता था। यही बात मनु १।६७ में कही गयी है। महाभारत वनपर्व १६१।१२ में भी इसका वर्णन है। उपर्युक्त इन प्रमाणों और वर्णनों के आधार पर तिलक वेदों का निर्माण स्थान उत्तरीय ध्रुव में निश्चित करते हैं और उनका काल भी मसीह से ८।१० हजार वर्ष पूर्व बताते हैं।

यहाँ पर हम ध्रुव के सम्बन्ध में, जिसका घनिष्ठ सम्बन्ध सप्तर्षियों से है, कुछ ज्योतिष सम्बन्धी विज्ञान की गणना करते हैं।

पृथ्वी जितने समय में सूर्य की परिक्रमा करती है वह एक दिन कहलाता है और चन्द्रमा जितने समय में पृथ्वी की परिक्रमा करता है वह एक मास माना जाता है। लेकिन ज्योतिष की गम्भीर गणना यह कहती है कि दो अमावस्याओं के मध्यवर्ती समय से भी कम समय चन्द्रमा को पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने में लगता है। पहला समय ३० दिन से कम और पिछला २७ दिन से कम होता है। अत. प्राचीन ज्योतिर्विद्या विशारदों ने नक्षत्र चक्र को २७ अलग-अलग विभागों में विभक्त करके उनमें से एक भाग का नाम नक्षत्र रखा है। आजकल नक्षत्रों की गणना अश्विनी से आरम्भ की जाती है, एव जिस बिन्दु में नक्षत्र विषुवत् रेखा से मिलकर उत्तराभिमुख होता है, वही बिन्दु अश्विनी नक्षत्र का आदि बिन्दु माना जाता है।

नक्षत्रों के नाम हैं—अश्विनी भरिणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्व फाल्गुनी, उत्तरी फाल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्व भाद्रपद, उत्तर भाद्रपद और रेवती। इस तरह नक्षत्र चक्र के प्रत्येक भाग का नाम नक्षत्र है।

तारागण सर्वदा ज्योतिर्मय हैं, परन्तु कुछ ज्योतिष्क हैं, वे अन्धकार में ग्रस्त रहते हैं और वे ही ग्रह कहाते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, मंगल, वृहस्पति और शनि। प्राचीन काल के विद्वानों ने केवल सूर्य और चन्द्र को ही ग्रह माना है। उस काल में प्रत्येक ग्रह का नक्षत्र चक्र में एक बार भ्रमण कर जाने का समय निर्दिष्ट था। आकाश के सबसे ऊँचे प्रदेश में एक निश्चल तारा भी देख पड़ता है, जो न तो अन्य ग्रहों की भाँति नक्षत्र-चक्र में घूमता है और न नक्षत्रों की भाँति पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। यही ध्रुव है। इसी के नीचे तथा ग्रह समूहों के ऊपर सप्तर्षि मंडल नाम के सात उज्ज्वल तारे दिखायी देते हैं, ये सातों नक्षत्र चक्र से पृथक हैं। नक्षत्र चक्र में कुछ भी गति नहीं है। लेकिन जो सप्तर्षि मंडल के दो तारे ध्रुव के साथ समसूत्र में स्थित हैं, वे उसी नक्षत्र के साथ रहते हैं जिसमें कि सप्तर्षि मंडल रहता है। महाभारत के युद्ध के समय सप्तर्षि मंडल मघा नक्षत्र में विद्यमान था। आज भी वह मघा नक्षत्र ही में है।

सप्तर्षि मंडल में गति न रहते हुए भी प्राचीन लोगों ने उसकी गति की कल्पना करके उसके द्वारा समय निर्णय करने का उपाय निकाला था। उनका अनुमान था कि सप्तर्षि मंडल एक-एक नक्षत्र में सौ-सौ वर्ष रहता है।

ऋग्वेद संहिता में विपुवत् रेखा में मृगशिरा नक्षत्र की अवस्थिति का उल्लेख पाया जाता है। ब्राह्मण युग में भी इसी नक्षत्र रेखा में कृत्तिका नक्षत्र की अवस्थिति का परिचय मिलता है। तिलक का यही मत है और जर्मन विद्वान याकोबी इसके समर्थक हैं कि ईसा से २५०० वर्ष पूर्व कृत्तिका नक्षत्र में एवं ४५०० वर्ष पूर्व मृगशिरा में महाविश्व संक्रान्ति संगठित हुई थी।

महाभारत तथा पुराणों में यह स्पष्ट लिखा हुआ है कि परीक्षित के समय में सप्तर्षि मंडल मघा नक्षत्र में था। प्राचीन विद्वानों का यह मत है कि सप्तर्षि मंडल एक-एक नक्षत्र में सौ-सौ वर्ष तक रहता है। अन्तिम नन्द के राज्याभिषेक के समय की गणना करके उस समय के पंचागकारों ने इसी मत से लिखा है कि उस समय सप्तर्षि मंडल पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में था। इस हिसाब से परीक्षित के जन्म-काल से महापद्म के राज्याभिषेक को १००० वर्ष होते हैं। परीक्षित का जन्म काल ही कलिकाल का आरम्भ काल है। इस प्रकार ईसा से १५०० वर्ष पूर्व कलि-काल का प्रारम्भ हुआ समझना चाहिए।

परन्तु कई ऐसी भी बातें हैं जो दूसरा विचार उपस्थित करती हैं। ये बातें वेदों में किया हुआ भारतवर्षीय नद, नदियां और प्रदेशों का वर्णन, ऋग्वेद में ३६० दिन के वर्ष का स्पष्ट उल्लेख और भारतवर्ष के उत्तरापथ अर्थात् वर्तमान दिल्ली से पश्चिमोत्तर प्रदेश का बहुतायत से वर्णन आदि हैं। ये सब बातें वेदों का निर्माण स्थान भारतवर्ष को ही प्रमाणित करती हैं। फिर मन्त्रों में "बढ़ई जैसे रथ बनाता है ऐसे नये सूक्त बनाये हैं, यद्यपि सूक्त नव्यसा (नवीन) हैं तो भी देवता प्रत्न (प्राचीन) हैं।", 'हमारे पूर्व पितर' आदि वाक्य स्पष्ट करते हैं कि वेद में उनके निर्माण से पूर्व की स्मृति भी है। इन्द्र के लिए 'पूर्वा' 'पूर्व्याणि', अश्विनीकुमारों के लिए 'पूर्व्याणि' शब्दों का प्रयोग इन्द्र के अत्यन्त पूर्व परिचय की ओर संकेत करता है। ऋग्वेद ८।५६।६ में तो अत्यन्त प्राचीन काल के ऋषियों के ज्ञान का स्मरण किया गया है। तब एक ही धारणा पर पहुँचा जा सकता है कि यदि वेद-साहित्य ऋषियों द्वारा निर्मित हुआ है तो वह एक काल में नहीं, शीघ्र भी नहीं, बहुत देर में, और सैकड़ों वर्षों में निर्मित हुआ है। उस काल के दो विभाग किये जा सकते हैं—एक हिमपूर्व काल, दूसरा हिमोत्तर काल। दीर्घ उषा आदि का वर्णन, अति प्राचीन—जब आर्यों के आदि पुरुष उत्तरी ध्रुव में रहते थे तब का अर्थात् हिम पूर्व काल का है, और अनार्यों से युद्ध होने का तथा इन्द्र आदि देवों का वर्णन उत्तर से दक्षिण आने के समय का अर्थात् हिमोत्तर काल का है, जब आर्य सरस्वती के तीर बसने लगे थे और ईरान तक फैल गये थे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य एक बार प्रबल जलौघ में और फिर उत्तर की उत्तुंग हिम चोटियों पर पहुँचकर वहाँ बहुत काल तक रहे हैं और बाद में धीरे-धीरे उतर कर उन्होंने समस्त उत्तराखंड का और उसके बाद दक्षिणापथ का परिचय प्राप्त किया है।

गृह्य सूत्रों में विवाह के समय ध्रुव दर्शन का उल्लेख है। यह प्रक्रिया आज भी जारी है, परन्तु किसी भी वेद के मन्त्र में ध्रुव का उल्लेख नहीं है।

ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों से सप्तसिन्धु प्रदेश के जल-स्थल विभाग का कुछ बोध होता है। भूगर्भ शास्त्र के सिद्धान्तों से सिद्ध होता है कि तृतीय युग में वर्तमान राजस्थान समुद्र था। साम्हर झील उसका अवशिष्ट अंश प्रतीत होता है तथा पंजाब के पूर्व में गंगा की समुद्र के समान विशाल झील थी। यह स्थान वर्तमान हरिद्वार के निकट कहीं होगा और इसे कम-से-कम २-४ लाख वर्ष हुए होंगे। आर्यों ने उस प्राचीन काल में वहाँ अवश्य ही निवास किया है। ऋग्वेद ३-३२-१३ का सूक्त इस बात की पुष्टि करता है कि ऋग्वेद के सूक्त पूर्वकाल में रचे हुए, मध्यकाल में बने हुए, और अनन्तर बने हुए हैं।

भूगर्भशास्त्र से यह स्पष्ट है कि सिन्धु प्रदेश जो वास्तव में पंजाब था, एक समुद्र के द्वारा दक्षिण भारत से सर्वथा पृथक् था और वह समुद्र राजस्थान प्रदेश

में था जो पूर्व में आसाम तक चला गया था और पश्चिम में सिन्धु नद के उस कोण तक था जहाँ उसकी सहायक नदियाँ मिलती हैं। यही समुद्र वर्तमान टर्की के नीचे और उत्तर में उत्तरीय ससुद्र तक पश्चिम में कृष्ण सागर तक फैला था, जिसके भाग आज कृष्ण सागर, कैस्पियन सागर, अरब सागर और वालकन झील हैं। टर्की के पूर्व में एक ओर एशियाटिक भूमध्यसागर था। ऋग्वेद इन चारों समुद्रों का ही वर्णन करता है, जो अत्यन्त प्राचीन बात है। उस समय दक्षिणापथ एक महाद्वीप था जो बह्मदेश से अफ्रीका के किनारे तक तथा दक्षिण में आस्ट्रेलिया तक फैला था। ऋग्वेद के निर्माण के बाद किसी प्रबल भूकम्प से वह प्रदेश समुद्र में डूब गया और वहाँ के उच्च प्रदेश भारतीय द्वीप समूह, प्रशान्त सागर के द्वीप, आस्ट्रेलिया के द्वीप, तथा मडेगास्कर के द्वीप रह गये। उधर राजस्थान प्रदेश समुद्र से उभर आया। इसी से पंजाब निवासियों के लिए दक्षिणापथ का मार्ग खुल गया। अगस्त्य ऋषि का दक्षिण दिशा जाने, समुद्र पीने तथा विन्ध्याचल को नीचे झुकाने की पुराण गाथा इसी महत्वपूर्ण घटना से निर्माण हुई प्रतीत होती है। ऋग्वेद के समय में निश्चय ही सिवा गान्धार देश के समस्त सप्तसिन्धु प्रदेश अर्थात् पंजाब चारों ओर समुद्र से घिरा हुआ था और निश्चय ही उस काल में गान्धार देश का सम्बन्ध पश्चिमी एशिया और एशिया माइनर से रहा होगा।

जिस भयंकर जल प्रलय का वर्णन शतपथ ब्राह्मण और वाइबिल में है और जिसे 'मनु जल प्रलय' या 'नूह के जल प्रलय' के नाम से पुकारा जाता है वह निश्चय ही उसी समय हुआ होगा जबकि दक्षिणी महाद्वीप समुद्र में डूब गया और राजस्थान समुद्र में से उभर आया। निश्चय से उस समय आर्य लोग उत्तरीय हिमालय के प्रदेशों पर चढ़े होंगे और उसी महान् जल प्रलय के अतुल जल की अपरिमित वाष्प से हिमालय पर हिम वर्षा हुई होगी। वहाँ पर संचित होने वाले वर्फ के कारण लोगों का वहाँ रहना असम्भव हो गया होगा और वे धीरे-धीरे फिर हिमालय पर से उतर आए होंगे और सम्भतः इसी समय में वे आर्य लोग पांचाल, कोशल, विदेह और अन्य प्रदेशों में धीरे-धीरे आकर बस गये होंगे।[1]

प्राचीन काल के सप्तसिन्धु प्रदेश में सरस्वती बड़ी प्रबल नदी थी। उसमें वड़े जोरों की वाढ़ आया करती थी। इस प्रदेश में चार मास वर्षा ऋतु रहती

---

१. प्राकृतिक आकस्मिक परिणाम एवं भोजन, निवास तथा ऋतु सम्बन्धी परिस्थितियों से विवश हो 'आर्य' स्थान परिवर्तन करते तथा घूमते रहे। हिम युग के महान् परिवर्तनों के कारण वनस्पतियों और पशुओं को भी स्थानांतरित होना पड़ा है। भौतिक और भौगोलिक परिस्थितियों की स्थिति में निरन्तर परिवर्तन होने के कारण आर्यों के वास्तविक स्थान का निर्णय करना कठिन है। वह स्थान सप्तसिन्धु, उत्तरी ध्रुव, उत्तरीय यूरोप, मध्य एशिया, मध्य अफ्रीका और कोई विलुप्त महाद्वीप भी हो सकता है।
—(ऋग्वेदिक इंडिया, अविनाशचन्द्रदास)

थी। आज कल भी वर्षाऋतु को 'चातुर्मास या चौमासा' कहते हैं। राजस्थान प्रदेश के समुद्र तथा गंगा की झील के नष्ट हो जाने से पंजाब की जलवायु गर्म हो गयी और वहाँ पर वर्षा भी कम होने लग गयी। ऋग्वेद पाठ्य में वर्ष को पहले हिम फिर हेमन्त तथा बाद में शरद कहा है। उसका कदाचित यही अभिप्राय हो सकता है।

ऋग्वेद में कीकट प्रदेश के वर्णन में लिखा है—"इस अनार्य कीकट में गौएँ क्या खाएँगी।" यह कीकट प्रदेश कोई ऊसर प्रदेश होगा, जो उत्तर से दक्षिण की तरफ यात्रा करते हुए यात्रियों को मिला होगा।

इस प्रलयकारी महान् भौगोलिक परिवर्तन के अनन्तर आर्यों ने लम्बी-लम्बी यात्राओं का साहस किया। उनके कुछ भाग यूरोप के अत्यन्त पश्चिम में पहुँचे, कुछ फिर ईरान में जा बसे। परन्तु मालूम होता है कि वे पूर्व तथा दक्षिण की ओर देर में बढ़े। इसका एकमात्र कारण यही हो सकता है कि समुद्र के हट जाने पर भी बहुत काल तक वहाँ की भूमि गमनागमन और बस जाने योग्य नहीं रही होगी।

वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों ही रामकालीन थे। दोनों पंजाब के सूर्यवंशी राजा सुदास के भी समकालीन थे। सुदास के यहाँ इन्होंने यज्ञ कराया था। वशिष्ठ के पुत्र शक्ति, शक्ति के पाराशर, पाराशर के व्यास, व्यास के शुकदेव थे। व्यास ही के शिष्य वैशम्पायन थे। गाधिपुत्र विश्वामित्र, विश्वामित्र के पुत्र मधुछन्द थे। इस हिसाब से महाभारत के जीवित पात्र व्यास वैदिक ऋषि वशिष्ठ की चौथी पाँचवी पीढ़ी के व्यक्ति साबित होते हैं। अब यदि महाभारत के काल पर दृष्टि दी जाय तो वह निश्चय ही पाणिनी के व्याकरण से पूर्व का अवश्य है। पाणिनी ने छठे अध्याय में महाभारत के पात्रों का उल्लेख किया है। आश्वलायन गृह्य-सूत्रों में भी महाभारत का उल्लेख है। तब महाभारत सूत्रयुग के प्रथम की वस्तु तो है ही, फिर चाहे उसका कुछ ही अंश उस समय का हो। सूत्रयुग के लगभग का ही दर्शनकाल है। तब यदि महाभारत को भी दर्शनकाल का ग्रन्थ कहें तो अनुचित न होगा। इससे प्रथम का युग उपनिषद युग था और उससे पूर्व ब्राह्मण युग और उससे पूर्व का युग वैदिक युग है। उपनिषद और ब्राह्मण युग के बीच में कोई सीमा निश्चित करना कठिन है। हमारा तो विश्वास है कि ब्राह्मण युग और उपनिषद-युग समकालीन हैं। ब्राह्मण, कर्मकाण्डियों का अर्थात् ब्राह्मणों का साहित्य है तथा उपनिषद क्षत्रियों का ज्ञान काण्डियों का साहित्य है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का और अथर्ववेद के रचना काल का यही युग है। यही समय था जब क्षत्रियों और आर्यों में प्राधान्य के लिए बड़ी भारी प्रतिद्वन्द्विता चली थी। भृगु का चन्द्रवंशी राजाओं में विद्रोह तथा क्षत्रियों का ब्राह्मणों से ब्रह्मविद्या को गोपनीय रखना इसके प्रमाण हैं।

ऋग्वेद 'पणी' नामक एक जाति का उल्लेख करता है जो जल-व्यापारी थी। यह अवश्य आर्यों में से निकली हुई ऋग्वेद के उत्तर काल की नवसंगठित जाति होगी। इस जाति के लोग बड़े कारीगर किन्तु पूरे लालची होते थे। ब्याज बहुत लेते थे। ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में इनके दुर्व्यवहार से तंग आकर इनसे युद्ध करने का वर्णन आया है। इन्हें लुटेरा समझा जाता था। आजकल जो ईरानी स्त्री पुरुष लाल रूमाल सिर से लपेटकर चाकू आदि चीजें बेचते फिरा करते हैं, संभवत: उसी पणी जाति के हों। कम-से-कम इनके आचार व्यवहार को देखकर ऋग्वेद की उस पणी जाति की स्मृति हो आती है। युद्धों से तंग आकर ये लोग नाविक रूप से समुद्रों ही में रहने लगे थे। फिर राजपूताने की भूमि का उद्धार होने पर वे गुजरात के तटों पर तथा मालावार से इधर-उधर बस गये प्रतीत होते हैं, क्योंकि जहाज के योग्य लकड़ी वहाँ मिल सकती थी। इन्हीं लोगों ने मेसोपोटामियाँ में उपनिवेश स्थापित किया और बेबोलियन साम्राज्य स्थापित किया। ये भूमध्य सागर के किनारे सीरिया भी पहुँचे। इसी जाति ने वास्तव में योरोप का प्रारम्भिक इतिहास बनाया और मेसोपोटामिया, ईजिप्ट, फोनेशिया, उत्तर अफ्रीका, और स्वीडन में उपनिवेश बसाये।

उन दिनों मध्य एशिया जल में डूबा हुआ था, इसलिए एशिया माइनर में योरोप जाने का एकमात्र मार्ग पोन्टस बास्फरस की संयोग भूमि थी। इसी मार्ग से आर्यों ने वहाँ जाकर सेमिटिक जाति बनायी।

इस बात को स्वीकार करने के बहुत कारण हैं कि ईरानी लोग विशुद्ध आर्य हैं, आर्य सभ्यता के बड़े भारी चिह्न ईरान में हैं। आर्य स्वर्गों के नाम वहाँ के नगरों को अभी तक दिये हुए हैं। वे आर्यों से केवल एक विषय में विरुद्ध प्रतीत होते हैं—वह यज्ञों की प्रधानता है, जो ब्राह्मणों ने प्रचलित की थी और जिसमें बड़े-बड़े आडम्बर किये जाते थे। ये प्राचीन पद्धति पर केवल गृह-होमाग्नि को ही सुरक्षित रखना चाहते थे, जैसाकि अब तक रखते हैं। पहला दल जिस प्रकार साम्राज्य स्थापित करने, राज्य बढ़ाने, और युद्धों में बढ़ रहा था, उसी प्रकार यज्ञों में पशुवध करने और सोमपान का प्रचार भी कर रहा था। ये दोनों बातें इस दूसरे दल को अच्छी न लगीं और इन लोगों में भेद पड़ गया। फिर तो मारकाट और रक्तपात हुए। ये लोग यज्ञ-करने वालों को 'सुर' शराब पीने वाले कहने लगे और यज्ञ पक्ष वाले उन्हें व्यंग से 'असुर' कहने लगे। इस देवासुर संग्रामों का वर्णन पुराणों में बहुत है। अन्त में असुरों को अपना स्थान छोड़ना पड़ा और उन्होंने आर्यनम्वेजो में बड़े साम्राज्य की स्थापना की।

सन् १९०७ में 'बोगजे' ग्राम में जो एशिया माइनर के अन्तर्गत है, कुछ मिट्टी के लेखपट मिले थे। इनमें से दो टिटोनियाँ के राजा सुवित्स्ल्यूमर के साथ मितानी उत्तर (मेसोपोटामिया) के राजा मितिउज्य के सन्धिपत्र थे। ये दोनों ही

सन्धिपत्र मसीह से १४०० वर्ष पूर्व के हैं। इनमें दोनों देशों की तरफ से अपने-अपने देवताओं से प्रार्थना की गयी है। मितानी के राजा ने मित्र वरुण, इन्द्र, नासत्यद्वय (अश्विनी कुमार) इन वैदिक देवताओं की प्रार्थना की है। यह इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि ईसा मसीह से १४०० वर्ष पूर्व मेसोपोटामिया वालों में वैदिक देवताओं का मान और ज्ञान था।

दक्षिण मिश्र के अन्तर्गत तेलेल अर्मना में कुछ पत्र मिले हैं जो पश्चिम एशिया के राजाओं द्वारा मिश्र के फेरो को लिखे गये थे। इन राजाओं का नाम आर्य था। इससे भी ज्ञात होता है कि ईसा से पूर्व पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में उत्तर मेसापोटामिया और सीरिया में वैदिक धर्म का आम प्रचार था। बेबिलोनिया के पूर्वस्थ कसाईट जाति के देवता का नाम सूर्य है। ईरानीय शाखा से भारतीय शाखा के भिन्न होने के पूर्ववर्ती काल में मितानी एवं अन्यान्य पश्चिम एशिया निवासी आर्य लोग आदि आर्य साहित्य और संस्कृति से दूर हो गये थे। उसी समय आर्यों का 'स' ईरानियों के 'ह' में बदल गया। इस बदले हुए 'ह' को तातार के हूण और शक भारत में आक्रमणों के साथ लाये। मालवे के राजा विक्रमादित्य ने उन्हें खदेड़ा परन्तु उनका 'स' के स्थान पर 'ह' का उच्चारण रह गया, जो समस्त मालवा-राजस्थान के उन राजपूतों में अब तक भी है जो वास्तव में उन्हीं के वंशधर हैं। अब तो इस प्रदेश की प्रजा में भी यह उच्चारण एक सर्व-सामान्य बन गया है।

चालदिया के साथ भारत के आर्यों की मुलाकात और उसका प्रभाव अथर्ववेद पर स्पष्ट देख पड़ता है। प्राचीन वैदिक ऋषि विश्व कल्याणकारी देवताओं के उपासक थे, जैसाकि ऋग्वेद में दीख पड़ता है। किन्तु चालदिया के रहने वाले अनिष्टकारी देवताओं के ही उपासक थे। वे इन्द्रजालादि विद्या से बहुत काम लिया करते थे। सम्भवतः इसी इन्द्रजाल विद्या का जिक्र अथर्ववेद में मिलता है।

३. वेदों की गणना

'त्रयी' की प्रसिद्धि से प्रकट होता है कि वेद ऋक्, यजु और साम तीन ही थे, अथर्व पीछे से संग्रहीत किया गया है। परन्तु ब्राह्मणों और उपनिषदों में इसका उल्लेख है। इससे वह 'त्रयी' की अपेक्षा आधुनिक भले ही हो, परन्तु उसकी प्राचीनता बहुत है।

सायण ने चारों वेदों को माना है। वेद तीन हैं, इस विषय में यह ऋचा पेश की जाती है 'तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानिजज्ञिरे', 'छन्दांसि जज्ञिरे तस्मा-द्यजुस्तस्मादजायत' ऋ० ८, ४। इसमें तीन ही वेदों का जिक्र है। परन्तु सायण ने इस मत का खंडन किया है। उसके मत में छन्दांसि से मतलब अथर्ववेद से है।

छान्दोग्य उपनिषद् में नारद ने सनत्कुमारों से कहा था—"ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि, यजुर्वेदं, सामवेद मथर्वणं चेति। तापनीयोपनिषद् में भी अथर्व वेद का जिक्र है। ऋग्यजुस्यामथर्वाणश्चत्वारो वेदाः साङ्गास्सशाखाश्चत्वारः पादा भवन्ति"। गोपथ ब्राह्मण में भी [३ । २] 'अथर्वाङ्गिरोमि ब्रह्मत्वं'—से ब्रह्मज्ञान का कारण इसी वेद को बताया है। इस वेद की प्रसिद्ध शाखाओं का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। पैप्पलाद, गौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मपद, देवदर्शचर्ण और वैद्य इसकी शाखाएँ कही गयी हैं। सायण ने अथर्ववेद के अतिरिक्त तीनों वेदों का यह लक्षण दिया है—

जो चरण-विभागपूर्वक छन्दोबद्ध हों उन मन्त्रों का नाम है ऋग्वेद। गीति के क्रमानुसार जिसमें मन्त्र हों वह साम है। जिसमें वृत्त और गीति से भिन्न अनेक प्रकार के मन्त्र हों वह यजुः है।

सायण ब्राह्मणों का भी वेद में समावेश मानता है और वह यज्ञ का बड़ा भारी प्रशंसक और समर्थक है। इसमें वह आपस्तम्भ सूत्र का यह प्रमाण देता है—'मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'। ब्राह्मण के दो भेद हैं—विधि और अर्थवाद। जिन कर्मो में स्वभावतः आप-से-आप लोगों की प्रवृत्ति नही है उनमें प्रवृत्त कराना विधि है। विधियाँ दो प्रकार की हैं। यज्ञों का विधान पहली विधि है। दूसरी विधि अज्ञात ज्ञापन है, जैसे एक ही अद्वितीय सत्य-ज्ञान स्वरूप ब्रह्म है, यह दूसरे किसी प्रमाण से ज्ञात नहीं है। अर्थवाद विधि वाक्यों की प्रशंसा करता है। इस प्रशंसा करने का यह उद्देश्य होता है कि लोग कर्म-प्रशंसाओं को सुनकर उनके करने में प्रवृत्त हों।

'वायुर्वेक्षेपिष्टा देवता'—वायु बहुत शीघ्रगामी देवता है। वायु की इस प्रशंसा से वेद उस कर्म की तरफ लोगों का ध्यान दिलाता है जिसका देवता वायु है।

सायण, वेद को अपौरुषेय तो मानते हैं, पर उस अपौरुपेय का अर्थ केवल यही है कि वेद मनुष्य कृत नहीं, ईश्वर कृत हैं। अपने जैमिनी न्याय माला में सायण ने उत्तर दिया है कि वेद की शाखाएँ काठक, कौथुम, तैत्तरीय आदि ऋषियों के नामों से प्रसिद्ध हुई हैं। फिर वे ऋषिकृत क्यों नहीं ? वे कहते हैं ऋषियों ने उन शाखाओं का अपने शिष्यों को उपदेश मात्र देकर सम्प्रदाय चलाया है। सायण कहते हैं—

> पौरुषेयं न वा वेद वाक्यंस्यात्पौरुषेयता।
> काठकादि समाख्याताद्वाक्यत्वाच्यान्य वाक्यवत्।
> समाख्यानंतु प्रवचनाद्वाक्यत्वं तु पराहतम्।
> तत्कर्मनुपलम्भेनस्यात्ततोऽपौरुपेयता।

इसी जगह सायण कहता है—

परमात्मातु वेदकर्तोऽपि न लौकिकः पुरुषः । यथा वाल्मीकि व्यास प्रभृतयोऽस्मतदग्रन्थ निर्माणावसरे कैश्चिदुपलब्धा अन्यैरप्यविच्छिन्न सम्प्रदायेनोपलभ्यन्ते । न तथा वेदकर्ता कश्चित् पुरुष उपलब्ध. ।

सायण का यह भी मत है कि वेद की ध्वनि से ही जगत का निर्माण हुआ है । इस विषय मे सायण का अभिप्राय यह है कि मनुष्य जब कोई चीज बनाना चाहता है तब उसके वाचक शब्द को प्रथम ही स्मरण कर लेता है । कुम्हार घडा बनाने से प्रथम घडे का नाम याद कर लेता है । उसी प्रकार सृष्टिकर्ता ने यावत् ससार की रचना उन वस्तुओ के नाम-स्मरण ही से की है और ये वेद नित्य हैं ।

इस पर शका होती है कि प्रलय काल मे तो ससार का एकदम नाश हो जाता है । सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ नही रह जाते, तब शब्द कहाँ रहा ? फिर सृष्टि के निर्माण मे तो शब्द और भी नये बनते होंगे । तब शब्द और अर्थ का वेद से नित्य सम्बन्ध कैसे रह सकता है । सायण ने वेदान्त की दृष्टि से इसका उत्तर दिया है कि यद्यपि महाप्रलय के समय अन्त करण आदि की वृत्तियाँ स्फुरित अवस्था मे नही होती है तो भी उनकी सत्ता अपने कारण मे विद्यमान रहती है । अतएव सूक्ष्म शक्ति रूप से कर्मों की विक्षेपक अविद्या वासनाओ के साथ निगूढ रहती हैं । मनु का भी यही मत है—

आसीदिद तमो भूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेय प्रसुप्तमिव सर्वत ।।

जैसे कछुए के शरीर से छिपे हुए अवयव निकल आते हैं उसी प्रकार जीवो की सूक्ष्म भावनाएँ सृष्टि मे जाग्रत हो जाती हैं । कर्मवासनाओ के अनुसार ही जीवो की उत्पत्ति होती है । बीजांकुर न्याय से पूर्व वासना और आत्मा का सम्बन्ध है, शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है । इससे वेद की नित्यता बोध होती है ।

श्वेताश्वेतोपनिषद् म लिखा है कि—

यो ब्रह्माण विदधाति पूर्वं यो वै वेदाश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तहि देवमात्मबुद्धि प्रकाश मुमुक्षुर्वै शरणमह प्रपद्ये ।। श्वे० ६।१८।

ऐतरेय ब्राह्मण मे लिखा है कि अग्नि, वायु और सूर्य क्रमश ऋक् यजु और साम हुए ।[1] इसके सम्बन्ध म सायण कहता है—

नक्जीव विशेषैरग्नि वाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वम् ।
ईश्वरस्याग्न्यादि प्रेरकत्वेन निर्मातृत्वात् ।। ऋ० भा० ३ ।

सायण ने वेदार्थ शैली के विषय मे लिखा है कि हम ब्राह्मण, दो कल्प सूत्र (आपस्तम्भ और बोधायन), मीमासा तथा व्याकरण की सहायता से वेद का अर्थ करते हैं ।

---

१ एवाग्नेरजायत यजुर्वेदोवायो सामवेद आदित्यात् ।

इसी क्रम से उसने यजुर्वेद का पूरा भाष्य लिखा है। ऋक् संहिता भाष्य में अनुक्रमणि का, निरुक्त, व्याकरण और ब्राह्मण का उदाहरण देकर संशयास्पद स्थलों पर अनेक प्रमाणों से मन्त्रों का सरल तथा मिश्रित अर्थ किया है। श्रोत सूत्रों तथा ब्राह्मणों में ऋक्-यजु-और सामवेद के मन्त्रों का विशेष यज्ञों में जिस समय जिस रूप में आवश्यकता पड़ती है वह निर्दिष्ट है। सायण ने उसका किसी तरह भी उल्लंघन न करके अर्थ किया है। सायण के भाष्यों में ऋग्वेद भाष्य बहुत प्रशंसित है। ऋग्वेद की भाषा क्लिष्ट भी है। सायण के पूर्व निरुक्तकार यास्क को छोड़कर और किसी की टीका ऋग्वेद पर न थी। निरुक्त में भी कुछ मन्त्रों पर ऊहापोह है। सायण ने ही सर्वप्रथम यह दुर्धर्ष कार्य किया है।

निरुक्त की कुछ मन्त्र-व्याख्याओं से तथा कुमारिल भट्ट के तन्त्र वार्तिक के कुछ वैदिक व्याख्यानों के विवरण से यह ज्ञात होता है कि वेद मन्त्रों के अर्थ आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक होते हैं। गीता में भी इसका जिक्र है।[1] सर्ववर्ती ब्रह्म को अध्यात्म, पृथ्वी आदि को अधिभूत, और सूर्य चन्द्रादि को अधिदेव कहा गया है। सायण ने ऋक् संहिता भाष्य के प्रथम मन्त्र में बताया है कि मन्त्र से जो ज्ञात हो वही देव है। 'अतो दिव्यते इति देवः मन्त्रेण द्योत्यते इत्यर्थः'। परन्तु सायण ने स्पष्ट रूप से अधिदैव अर्थ को ही लिया है।

कलकत्ते के प्रसिद्ध वेद-विद्वान पं० सत्यव्रत सामश्रमीजी का मत यह था कि वेदों का निर्माण आर्यावर्त में ही हुआ है। अपने पक्ष की पुष्टि में उन्होंने जो प्रमाण दिये हैं उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ करते हैं। वे ऋग्वेद के ५।५३।९ मन्त्र को अति प्राचीन आर्यावर्त की सीमा वर्णन करने वाला कहते हैं। इस मन्त्र में रसा, कुंभा, क्रुम, और सिन्धु इन चार नदियों का वर्णन है। रसा, उत्तर की बड़ी नदी, कुंभा जिसे शायद काबुल नदी कहते हैं पश्चिम में, सरयू पूर्व में, सिन्धु दक्षिण में, उसकी सीमा है। ऋग्वेद १०-७५ में २१ नदियों का नाम है। इक्कीस नदी वाला देश आर्यावर्त ही है। उन्होंने अथर्व आदि के मन्त्र भी दिये हैं जिनमें वर्तमान भारतवर्ष और आसपास के देशों का उल्लेख है, परन्तु भारतवर्ष आर्यों का आदि निवास इसी एक प्रमाण पर स्थिर नहीं हो सकता। ये वर्णन तो भारत में आने पर पीछे से भी वेदों में बढ़ाये हुए हो सकते हैं। ऋषि दयानन्द आर्यों का आदि स्थान तिब्बत बताते हैं जो भूगर्भ वेत्ताओं के मत का बहुत कुछ समर्थक है।

जो हो, ऋग्वेद पुरुष सूक्त में (१०।९०) विराट् पुरुष से वेदों की उत्पत्ति मानी गयी है। यह विराट पुरुष हमारी सम्मति में असंख्य वर्षों और असंख्य मनुष्यों की जाति के समूह का नाम ही है।

---

१. अक्षरं ब्रह्म परमं स्वाभावोध्यात्ममुच्यते।
अधिभूतं क्षरोभावः पुरुषश्चाधि दैवतम्। ८।३

४. वेदों का सम्पादन

वेद का सर्वप्रथम सम्पादन रावण ने त्रेता के अन्त में किया था। वेद का मन्त्र में बड़ा शब्द 'यज्ञ' है। रावण ने यज्ञ दीक्षा में पशुवध-गोवध नरवध-लिंग पूजन आदि दैत्य दानवों की प्रथाओं का समावेश किया। यज्ञों में पशुवध रावण से बहुत प्रथम मनुपुत्र नरिष्यन्त—नाभाग इक्ष्वाकु आदि के काल ही से आरम्भ हो गया था और यज्ञ में अधिकाधिक पशु मारे जाने लगे थे। अत. एक बार यज्ञ करने के लिए मनु पुत्र प्रष्नु को बहुत कष्ट हुआ था।[1] रावण के रक्त में आर्यों व्रात्यों तथा दैत्यों का मिश्रण था। सभी संकर जातियों की भाँति रावण भी चैतन्य और उदग्रीव तरुण था। यह स्वाभाविक था कि रावण के मन में आर्य-देव-दैत्य-सभी दायाद बाधवों को एक संस्कृति में ले आने की इच्छा उत्पन्न हो। उसका नाना सुमाली दैत्य महा तेजस्वी और महा-रणनीति-विशारद वृद्ध नरपति था। देव-दैत्य-संग्राम में वह अपना सर्वस्व स्वाहा कर चुका था। उसके सान्निध्य में रावण के मन में बड़ी बड़ी महत्वाकांक्षाओं के बीज अंकुरित हो चुके थे। उसके तरुण और राज्यभ्रष्ट मामा भी सब एक से एक बढ़कर थे। देव दैत्य आर्य के संघर्षों का सबसे कटु फल उन्होंने भोगा था। फिर सबसे ऊपर उसके सौतेले भाई कुबेर का प्रताप था। इन सब कारणों से उसका मन महत्वाकांक्षा से भर गया। अपनी विद्या और बुद्धि तथा बाहुबल पर उसे गर्व था—भरोसा था। उसने असाध्य साधन की ठान ली। उसका सबसे जबर्दस्त काम था—समूची नृजाति में सांस्कृतिक एकता स्थापित करना। उसने उस समय तक उपलब्ध सब वैदिक ऋचाओं को एकत्र किया। उनमें कुछ अपनी ओर से मिलाया और उसे ऐसा रूप दिया कि वेद देव दानव दैत्य-आर्य व्रात्य सभी के लिए सांस्कृतिक मध्य-बिन्दु बन जाय। तब तक देव-दैत्यों में कदाचित् उशना काव्य का नीतिग्रन्थ तथा बृहस्पति का नीतिग्रन्थ ही प्रचलित था। वे दोनों कुलगुरु देव-दैत्य-पूजित थे। रावण ने अकेले ही दोनों की श्रेष्ठ मर्यादाएँ स्वयं ग्रहण करना चाही और उसने उसके लिए किसी नये शास्त्र का नहीं, वेद ही का आश्रय लिया।[2]

रावण से प्रथम ही कुछ लोग उस समय वेदमन्त्र को भिन्न भिन्न संस्कृतियों में ढाल रहे थे। अंगिरस सम्प्रदाय अथर्व के मन्त्र बना रहे थे। उस

---

१ चरक संहिता, चिकित्सा स्थान १९।६

२ रावण कृत वेद अब उपलब्ध नहीं है। रावण के नाम से जो एक भाष्य का कुछ अंश मिलता है वह असल में रावण कृत नहीं है। पर द्रविड़ में जो कृष्णवेद प्रचलित है, वही रावण का वेद का विकृत रूप है। कृष्ण वेद का पृथक् भाष्य नहीं है, परन्तु उसमें रावण कृत वे स्थापनाएँ हैं, जिनका हमने उल्लेख किया है। 'बलि' और 'लिंग पूजा' ये दोनों उनमें मुख्य हैं।

काल में वेद ही काव्य था। कोई भी सुभाषित चाहे भी जिस विषय पर बोलता, वही काव्य वेद-काव्य बन जाता था और उसका कवि ऋषि। वामदेव नारद ने उसमें वाम विधि स्थापित की थी, जिसका अभिप्राय था—खाओ, पियो, मौज करो। इन्द्र से उसकी गहरी दोस्ती थी। इन्द्र ने उसे प्रश्रय दिया था, और उसने इन्द्र के लिए स्तुतिमूलक ऋचाएँ बनायी थीं। वह ऋग्वेद ४।१८ सूक्त के अन्त में कहता है—'खाने को कुछ न मिलने पर मैंने कुत्ते की अन्तड़ियाँ पकायीं। देवों में मुझे रक्षण करने वाला कोई न मिला। पत्नी ने मेरी विडम्बना की। ऐसी दशा में इन्द्र ने मुझे मधु दिया।'[1]

अब आप देखिये कि इस मधु दान की कथा भी इस दरिद्र और भुक्कड़ ऋषि ने वेद की ऋचा में कह दी। अंगिरा पुत्र बृहस्पति का भी यही मत था। उसने चार्वाक् मत का दर्शन बनाया था। सब देव इसी मत के थे। उनके राजा इन्द्र देवों की सभा में अप्सराओं का नृत्य कराते, सोम और मधुपर्क पीकर मस्त रहते तथा मौज-मजा करते थे। रावण के भाई कुबेर ने भी यही मत अपनाया था—इसी से वह यक्ष कहाता था। उसकी जाति ही यक्ष बन गयी थी। परन्तु वशिष्ठ ने त्रेता के अन्त में जो नयी वेद विधि अपनायी, वह आर्यों में बद्धमूल हुई। उसने देवों से आर्यों का मूलतः सांस्कृतिक विच्छेद कर दिया। दैत्य भी इससे वंचित हो गये।

दैत्य दानव वैदिक धर्म—परन्तु दैत्य दानव भी उस काल में वैदिक धर्म मानते और वैदिक देवताओं का पूजन आर्यों की भाँति करते थे। इन्द्र, मित्र, वरुण, मरुत, सूर्य आदि वैदिक देवों की ही वे उपासना करते थे। मेसोपोटामिया में जहाँ आर्यों के मूल पुरुष चिरकाल तक रहे, वैदिक धर्म ही माना जाता और वैदिक देवता पूजे जाते रहे थे। इसी से वेद और अवेस्ता के छन्दों में साम्य है। 'जन्द' वास्तव में 'छन्द' का ही विकृत रूप है, और 'अवेस्ता', 'अथर्व' का विकृत रूप।

बोगजकोई का सन्धिपत्र—बोगजकोई का सन्धिपत्र इस प्रश्न पर निर्भ्रान्त ऐतिहासिक प्रकाश डालता है। यह सन्धि हट्टी के हिताहत और मितन्नी लोगों की परस्पर सन्धि का पत्र है। ये लोग मेसापोटामिया के राजा थे। यह सन्धि ई० पू० १४वीं शताब्दी की है। ठीक यही काल राम और रावण का भी है। इस सन्धि-पत्र में वैदिक देवता इन्द्र वरुण, मित्र, नासत्य का वर्णन है। मितन्नि के अधिपति उनकी उपासना करते थे। वे ई० पू० १५०० में उत्तर-पश्चिम मेसो-

---

१ अवर्त्या शुन आंत्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारं।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वाजभार।

ऋ० ४।१८

पोटामिया के राजा थे। इन मितन्नियो के नाम भी आर्य थे। जैसे—अर्ततम, अर्तमन्य, सौस्सतर, सुनर्ण, सुबन्धु, दुस्सरत्त, सुवर्दत् यसदत्। वे सूरियास (सूर्य) प्रत्न, भग (वग-पीगुवुगास) की उपासना करते थे। इन्होने ई० पू० १८०० में बैबिलोन को जय किया था।

उनके नाम भी आर्यों के समान थे। मेद या मद जाति, जिसका प्राचीन बैबि-लोनियन और हिनाहत लेखो मे उल्लेख है, आर्य भाषा बोलते थे। शतपथ ब्राह्मण देवो और मनुष्यो को एक समान ही पृथ्वी का निवासी बताता है।[1] देव सूर्य के मनुष्य सोम तथा असुर अग्नि की उपासना करते थे।[2] देव इसी पृथ्वी के निवासी थे।[3] मनुष्य ही प्राचीन काल मे देव कहलाते थे।[4] देवो का भोजन नीवार (चावल) था।[5] वे सोम पीते थे, मनुष्य सुरा।[6] ऋभू और मरुत् मनुष्य थे, पीछे देव हो गय।[7] मिस्र का फराऊन जो मुकुट पहनता था, उस पर सूर्य का चिह्न होता था। अरब मे सूर्य पूजा होती थी। प्रसिद्ध अदन का बन्दरगाह आदित्यनगर था, जहाँ आदित्य (सूर्य) का मन्दिर था जिसमे सोने-चाँदी की ईंटे थी तथा छत पर जवाहरात जडे थे।

इन सब बातो से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि त्रेतायुग की समाप्ति तक देव दैत्य-दानव असुर और आर्य वैदिकधर्मी ही थे। रावण के निधन से उसम अन्तर पड गया। रावण अपने भुजबल तथा प्रतिभा से वेद का नया सस्करण करके सारे नृवश का महिदेव इन्द्र और जगदीश्वर बन गया।

अपान्तरतमा—सम्भवत इसी समय मे आर्यों मे अपान्तरतमा ने वेदो की कुछ शाखाओ का सम्पादन किया। इस समय वेद आर्यो मे यज्ञ के प्रतीक बन चुके थे। अपान्तरतमा के प्रवचन के द्वारा यज्ञाग्नि अनेक अग्नियो मे विभक्त हो गयी। यज्ञ की क्रियाएँ भी बहुत प्रकार की हो गयी। इसी का सकेत उपनिषद् मे 'तानि त्रेताया बहुधा सततानि' कहकर किया गया है। यज्ञ क्रियाओ मे भेद होने के कारण ही वेद का विस्तार होने लगा। मूल मन्त्रो मे शाखागत पाठान्तरो का आरम्भ इसी युग मे हुआ।

अपान्तरतमा के काल के बाद समय-समय पर इन शाखाओ का प्रवचन होता रहा था।

---

१ शतपथ २।३।४।४
२ वही ७।४।२,४०
३ अथर्व ११ ५-१६, तथा ४-११-६
४ शतपथ ११।१।२।१२
५ तैत्तिरीय १।३।६।८
६ वही, १।२।३।२३
७ ऋग्वेद १।११०।२।३ तथा ऋग्वेद १०।७७।२

कृष्ण द्वैपायन व्यास—अन्तिम प्रवचन कृष्ण द्वैपायन व्यास ने किया। व्यास ने वेदों के चरण और उनकी अवान्तर संहिता का नये सिरे से प्रवचन और सम्पादन किया, और अपने एक-एक शिष्य को एक-एक वेद दिया—जो उनके वंश में राज्य की भाँति परम्परा के लिए धरोहर बन गयी। वेदों का विभाजन करके व्यास ने ऋग्वेद पैल को, यजुर्वेद वैशम्पायन को, सामवेद जैमिनी को और अथर्वांगिरस सुमन्त को दिया। इसके बाद वेद की ऋचाओं का निर्माण बन्द हो गया और वेद की व्याख्याएँ होने लगीं। ये व्यास शिष्य परम्परागत वेद भाष्यकार बनते रहे। संभवत: वेदों का यह विभाजन कृष्ण द्वैपायन ने महाभारत के बाद जनमेजय के संरक्षण में अपने शिष्य जैमिनी, सुमन्त, पैल और वैशम्पायन की सहायता से किया। उन्होंने अथर्व को वेद नहीं माना। उसे अथर्वांगिरस ही कहा। वेद केवल तीन ही माने गये।

अथर्वण ऋषि ने भी सम्भवत: वेद का सम्पादन किया था और ऋक् तथा अथर्व को प्रथक् किया था। अन्तिम सम्पादन व्यास ने जनमेजय के काल में किया।[1]

---

१. विष्णु पुराण में २८ व्यास लिखे हैं, जिनमें पराशर और द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के नाम भी गिनाये हैं।

चौथा अध्याय

१. वेदों का महत्व

आर्य जाति के आरम्भिक सांस्कृतिक जीवन को इतिहास का सूत्र वेदों ही से प्राप्त होता है। परन्तु वेदों की भाषा इतनी प्राचीन और गूढ़ है कि उसका असल अर्थ जानना सुगम नहीं है। भारतीय और अभारतीय विद्वानों ने जो वेदों के अर्थ किये हैं, उनमें बहुत कुछ खींचतान की गयी है। वेदों का सर्वाधिक प्रामाणिक भारतीय भाष्य सायण कृत है, यद्यपि विदेशी विद्वानों ने भी वेदों के अनेक भाष्य किये हैं।

वेदों की रक्षा—वेदों की रक्षा बड़े अद्भुत ढंग से की गयी है। आरम्भ में वेद लिखे नहीं गये। वे केवल कंठ याद रखे और पढ़े जाते थे। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि लगभग पाँच हजार वर्षों से वेद जैसे-के-तैसे चले आ रहे हैं। उनमें एक शब्द की तो कौन कहे—एक मात्रा का भी परिवर्तन नहीं हुआ है। वेदों की रक्षा का प्रधान साधन उसे अनेक विधि से पढ़ना था। वेद पाठ अनेक थे।

पद पाठ—वेद रक्षा के लिए जो विधि सबसे प्रथम काम में लायी गयी, वह पद पाठ थी। इसके द्वारा वेद की प्रत्येक ऋचा का प्रत्येक शब्द अलग-अलग लिखा जाकर रक्षित किया गया।

क्रम पाठ—दूसरी रीति क्रम पाठ की थी, इसमें शब्द के प्रथम और अन्तिम अक्षर को छोड़कर प्रत्येक अक्षर को दो बार दुहराया गया। जैसे 'अब दल' लिखना हुआ तो—अब-बद-दल, इस प्रकार लिखा गया।

जटा पाठ—इतना ही नहीं, एक रीति जटा पाठ की भी निकाली गयी। इस रीति में 'अब दल' इस प्रकार पाठ किया गया—अब, बअ, अब, बद, दब, बद, दल, लद, दल।

घन पाठ—इस पर घन पाठ भी किया गया। इसमें अब, बअ, अबद, दबअ, अबद, बद, बदल इत्यादि रूप बने।

उदात्त अनुदात्त स्वर—वेद पाठ के कुछ नियम भी बनाये गये। उनमें उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इस प्रकार तीन उच्चारण भेद किये। इस प्रकार वेद के पाठ और उच्चारण को शुद्ध रखने का बड़ा भारी प्रयत्न किया गया।

ऋषि और ब्राह्मण—जो लोग वेदों के सूक्त रचते थे, वे ऋषि कहाते थे। परन्तु अब ये व्याख्याकार ब्राह्मण कहाये। उन्होंने जो व्याख्या वेद के मन्त्रों की रची, वे ग्रन्थ भी ब्राह्मण कहाये। इन ब्राह्मणों की परम्परा में वेदों की शाखाएँ फूटती ही चली गयीं। इसी समय वैदिक साहित्य की रचना भी हुई।

वैदिक साहित्य—वैदिक साहित्य में ब्राह्मण प्रमुख हैं। ये बहुत थे, पर अब चार ही रह गये हैं। प्रसिद्ध वेद व्याख्याता सायण, जो चौदहवीं शताब्दी में हुआ, उसके काल तक एक और ब्राह्मण उपलब्ध या परिचित था, जो अब नहीं है। अप्राप्य हैं।

उपवेद, वेदांग उपांग—चार वेदों के अतिरिक्त चार उपवेद, छै वेदांग, और कई उपांग हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गंधर्व वेद, और अथर्ववेद का अर्थशास्त्र।

छै वेदांगों में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द हैं। उपांगों में पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र हैं।

अन्तिम परिगणन—सम्भवतः ई० पू० छठी शताब्दी में वेद का अन्तिम बार पाठ स्थिर किया गया और वेदों की शाखाएँ गिनी गयीं। पुराणों के अनुसार ऋग्वेद की १६, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० और अथर्व की ९ शाखाएँ वर्णित हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण—ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ऋग्वेद, अथर्ववेद और शतपथ ब्राह्मण महत्वपूर्ण हैं।

२. ऋग्वेद

ऋग्वेद का गौरव—ऋग्वेद आर्यों का सबसे पुराना ग्रन्थ है। इसमें आर्य लोगों की प्राचीनतम सभ्यता का वह चित्रण है, जिससे सब आर्य जातियों के धर्म और प्राचीन घटनाओं की बहुत-सी बातें ज्ञात हो जाती हैं। इस ग्रन्थ से मनुष्य की जाति के धार्मिक भावों और धर्म-सम्बन्धी विचारों व विश्वासों के उत्पन्न होने के कारणों पर प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद को पढ़ने से हम जान जाते हैं कि मनुष्य का मन उन वस्तुओं के प्रति पूजा करने की भावनाओं से कैसे भर जाता है, जो सृष्टि में उत्तम बलवान और आश्चर्यजनक हों। ऋग्वेद इस बात पर प्रकाश डालता है कि मनुष्य का मन सृष्टि से हटकर सृष्टि के देवता की ओर कैसे गया।

ऋग्वेद मे १०२८ सूक्त हैं, जिनमें १०००० से ज्यादा ऋचाएँ हैं। ये सूक्त १० मडलो मे विभक्त हैं। ये सूक्त सैकडो वर्षों मे निर्माण हुए हैं। उत्तर काल मे ऋग्वेद की हर ऋचा, हर शब्द, और हरएक अक्षर की गिनती कर ली गयी है। इस गिनती के हिसाब से ऋचाओ की सख्या १०४०२ से लेकर १०६२२ तक, शब्दो की सख्या १ लाख ५३ हजार ८२६, तथा अक्षरो की ४ लाख ३२ हजार है। ऋग्वेद प्राचीन वैदिक सभ्यता पर पूरा प्रभाव डालता है।

वे शताब्दियो तक इन सूक्तो को मौखिक परम्परा से सीखते रहे। शताब्दियो तक ऋग्वेद की अमूल्य निधि इसी प्रकार सुरक्षित रही।

वैदिक ऋषि—इन वैदिक ऋषियो मे सबसे प्रधान विश्वामित्र और वशिष्ठ हैं। वेद का प्रबल विजयी राजा सुदास वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनो ही को पुरोहित और मन्त्री मानता था। विश्वामित्र और वशिष्ठ दोनो ही ने सुदास के लिए यज्ञ किये। ऋग्वेद के तीसरे मडल के सूक्तो को बनाने वाले विश्वामित्र थे, और सातवाँ मडल वशिष्ठ का बनाया हुआ है। इन दोनो ऋषि-कुलो मे कुछ कारणो से द्वेष भाव उत्पन्न हो गया था। ऋग्वेद के कुछ सूक्तो मे एक-दूसरे की निन्दा की गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह द्वेष बहुत काल तक चला, और इसके मूल मे राजनैतिक कारण थे। उत्तर काल मे इन दोनो बडे ऋषियो के सम्बन्ध मे अनेक कथा, कहानियाँ, पुराणो मे वर्णन की गयी हैं।

अगिरा, वामदेव, भरद्वाज, गृत्समद, कण्व और अत्रि भी वैदिक ऋषि हैं। अगिरा ऋग्वेद के नौवें मडल का रचयिता है। वामदेव व भरद्वाज चौथे और छठे मडल के। गृत्समद दूसरे मडल का रचयिता है। प्रसिद्ध है कि गृत्समद के पुत्र शौनिक ने चार वर्णों का विभाजन किया। कण्व ऋग्वेद के आठवें और अत्रि पाँचवें मडल के ऋषि हैं। मत्स्य पुराण मे ९१ वैदिक ऋषियो का वर्णन किया गया है, जो सूक्तो के रचयिता थे। आगे चलकर इन्ही के वशज, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि मे विभक्त हो गये। सक्षेप मे वैदिक सूक्त इन वर्णों के सयुक्त पूर्व पुरुषो ने बनाये थ।

वैदिक ऐतिहासिक घटनाएँ—यह वेद आर्यों का धर्म-ग्रन्थ तो है ही, परन्तु उसका ऐतिहासिक मूल्य भी बहुत है। ससार का सबसे पहला पद्य ऋग्वेद मे, और सबसे पुराना गद्य यजुर्वेद मे है। ऋग्वेद के दूसरे से सातवें मडल तक ऋषियो के एक-एक घरानो का प्राधान्य है, परन्तु दसवें मडल मे अनेक बडे-बडे प्राचीन ऋषि हैं। तीसरे और सातवें मडल मे राजा सुदास का वर्णन है। इस स्थल के पढने से पता लगता है कि सुदास का ययाति के वशधरो से युद्ध हुआ। आर्यों की दो प्रधान शाखाएँ थी—एक सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु की शाखा जो सूर्यवशी अथवा मानव कहाते थे, दूसरे वैवस्वत मनु के जामाता चन्द्रपुत्र बुध की शाखा जो चन्द्र-वश अथवा एल के नाम से प्रसिद्ध हुई। चन्द्रवश मे ययाति प्रसिद्ध राजा हुए,

जिनके पाँच पुत्र यदु, तुर्वश, अनु, दुह्यु और पुरु के नामों पर पाँच पृथक वंश स्थापित हुए, जिनमें पुरु चन्द्रवंश का प्रतिनिधि रहा। इसी वंश में भरत हुए, और आगे चलकर महाभारत के प्रसिद्ध पात्र कौरव पांडव भी इसी वंश में हुए। सूर्यवंश में प्रसिद्ध राजा राम हुए।

इन सब प्रधान आर्यवंशों के अतिरिक्त गांधार, मूजवन्त, मत्स्य, तृत्सु, भरत, भृगु कुशीनर, चेदि, त्रिवि, पांचाल, कुरु, सृंजय, कट, तारावत आदि वंश भी थे। इनमें से कुछ वंश पुरुवंशी थे। प्रसिद्ध विजेता सुदास पौरव था। यादवों का वंश बहुत बड़ा था जिसकी दो शाखाएँ थीं, जिनमें एक हैहय वंश था। उस काल में राजा का पद पैत्रिक होता था और वह एक समिति के द्वारा प्रजा पर राज्य करता था। युद्ध का एक यह नियम भी था कि पराजित देश को तत्काल अभय-दान दिया जाता था। धनुष-बाण, ढाल-तलवार के अतिरिक्त शिला-प्रक्षेपक, शरीर त्राण, अग्निअस्त्र आदि से युद्ध होता था। व्यभिचार, घूंस और आत्मघात अपराध माना जाता था। अनार्य जातियों में भ्रतृ, दनु, पिप्र, सुप्प, सम्बर, वृगद, बलि, नमुचि, मृगय, अर्बुद आदि राजा थे। नतृ के ९९ किले इन्द्र ने तोड़े। शम्बर और वृंगद के १००-१०० किलों का विध्वंस किया। पिप्र के ५०००० योद्धा मारे गये। बलि के ९९ पहाड़ी किले थे, जो सब जीत लिए गये।

सुदास के पिता दिवोदास बड़े भारी विजयी राजा थे। इन्होंने तुर्वशों, दुह्यों और शम्बर को तथा गंगु लोगों को पराजित किया था। उनका पुत्र सुदास वैदिक विजेताओं में सबसे बड़ा है। नहुष वंश, यदु-तुर्वश, अनु और दुह्यु के लोगों ने भारतीयों से मिलकर तथा बहुत से अनार्य राजाओं की सेना लेकर सुदास से युद्ध किया। नाहुषों की सहायता के लिए भार्गव, परोदास, पक्थ, भलान, अलिन, शिव, विशात्, कवम्, युध्यामधि, अज, सिगर और चक्षु तथा २१ जाति के वैकर्ण लोग भी सम्मिलित हुए। कितने ही सिम्यु लोग भी उनकी सहायता को आये। रावी नदी के किनारे पर महाविकराल युद्ध हुआ, जिसमें सुदास ने सम्मिलित शत्रुओं को पूर्ण पराजित किया। इस युद्ध में अनु और दुह्यु वंशियों के ६००० योद्धा खेत रहे। आनवों का सारा सामान लूट लिया गया। युध्यामधि महाराजाधिराज तथा राजा वर्चिन के १०,००० सैनिक युद्ध में खेत रहे। सात किले सुदास के हाथ लगे। अज, सिगरु और चक्षु ने सुदास की आधीनता स्वीकार कर ली। इसके बाद सुदास ने यमुना नदी के किनारे तक बढ़कर महाबली भेद को पराजित कर उसका देश छीन लिया, और भेद सुदास की प्रजा बन गया।

सूर्य वंश और चन्द्र वंश—ऋग्वेद में चन्द्र वंश और सूर्य वंश का कोई उल्लेख नहीं है। निश्चय ही यह वंश आगे चलकर प्रतिष्ठित हुए। परन्तु इन दोनों कुलों के मूल वंशाधरों का नाम बहुत स्थान पर आया है। सूर्य वंश की अपेक्षा चन्द्र वंश के मूल पुरुषों की अधिक प्रधानता है। पुरूरवा नहुष, आयु

और ययाति के नाम ऋग्वेद में हैं। ययाति के पाँचों पुत्रों के नाम और उनके नाम से ही पाँच कुलों का भी उल्लेख है। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि ये चन्द्रवंशी क्षत्रिय अग्नि के उपासक थे, तथा इन्द्रादि देवताओं का पूजन करते थे। अग्नि की उपासना ही होमाग्नि, अग्निहोत्र तथा यज्ञों के रूप में आगे परिवर्तित हो गयी। सूर्यवंशी भी उनकी देखादेखी अग्नि पूजन करने लगे और यज्ञ आर्यों के सांस्कृतिक प्रतीक बन गये। ऋग्वेद की एक ऋचा का अर्थ है—'हे इन्द्र और अग्नि, यदि तुम यदुओं में, तुर्वशों में, इसी तरह द्रुह्युओं में, अनुओं में और पुरुओं में हो तो यहाँ आओ और सोमपान करो।'[1] महाभारत और पुराणों से प्रकट है कि ययाति के पाँच पुत्र दो पत्नियों से थे—यदु और तुर्वसु सगे भाई थे, द्रुह्यु, अनु और पुरु दूसरी स्त्री से थे।

भरतों और यदुतुर्वशों का युद्ध—ऋग्वेद में उल्लेख है कि इन्द्र ने दिवोदास के लिए यदु-तुर्वशों को मारा। सरयू तट पर भरतों से यदु-तुर्वशों की लड़ाइयाँ हुईं।

दाशराज्ञ संग्राम—ऋग्वेद में इस बड़े युद्ध का विस्तृत वर्णन है। यह युद्ध परुष्णी नदी के किनारे हुआ था। आजकल इस नदी का नाम रावी है। एक ओर भरत और सुदास तथा उसके पुरोहित वशिष्ठ और तृत्सु थे। दूसरी ओर यदु-तुर्वसु द्रुह्यु, अनु और पुरु तथा इनके सहायक मित्र अन्य पाँच राजा थे। इस युद्ध को इन्द्र की सहायता से भरतों ने जय किया था। यह संग्राम पंजाब में प्रथम ही से बसे हुए भरतों से बाद के नये राज्यों के संस्थापकों यदु आदि आर्य बहिष्कृत राजाओं ने अनार्य राजाओं की सहायता से किया था। यहाँ एक यह बात जानने योग्य है कि ययाति की दोनों ही पत्नियाँ अनार्य वंश की थीं। तथा ययाति ने अपने छोटे पुत्र पुरु को चन्द्र वंश की प्रधान गद्दी का अधिकारी बना—शेष चार पुत्रों को सीमान्त राज्य देकर आर्य जाति से ही बहिष्कृत कर दिया था, तथा आर्यावर्त क्षेत्र में उनका विस्तार नहीं हो सकता था। इसी से उन्होंने अन्य अनार्य राजाओं से मिलकर पंजाब के प्राचीन भरतों के राज्य को विध्वंस कर अपने राज्यों के विस्तार की चेष्टा की थी जो सफल नहीं हुई। मार्के की बात यह है कि इस युद्ध में 'पुरु' सम्मिलित नहीं हुआ था।

पुरुरवा की सन्तति—ऋग्वेद में पुरुरवा की संतति का सबसे अधिक विस्तार है। यद्यपि वह इतिहास के रूप में नहीं है घटनाओं के रूप में है। वास्तव में चन्द्र वंश का मूल पुरुरवा ही है। चन्द्र और बुध को हम छोड़ देते हैं। पुरुरवा की माता इला थी। इला मनु की पुत्री थी। उसे विवाह में इलावर्त देश दिया गया

---

1 यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थ। अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य। ऋ० [illegible]

था। हिमालय के उत्तर ओर का देश ही इलावर्ष था। यह स्थान दक्षिण-पूर्वी ईरान का प्रान्त था। ऋग्वेद में पुरूरवा और उर्वशी का यथेष्ट वर्णन है। पुरूरवा के बाद आयु और नहुष का वर्णन है। इनकी भी ऋग्वेद में बहुत महिमा है। इसके बाद ययाति राजा है, जो बहुत बड़ा राजा हुआ है। सात द्वीपों पर उसका राज्य था। ऋग्वेद में इसे अपने वंश का मुखिया माना गया है। तथा इसके बाद दनु का नाम आया है। इसने असुर याजक शुक्र-काव्य की कन्या देवयानी और असुरराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से व्याह किया था। यह कथा ऋग्वेद में नहीं है, महाभारत में है। इन्हीं स्त्रियों से उसे वे पाँचों पुत्र हुए, जिनका ऋग्वेद में बहुत उल्लेख है। द्रुह्यु ने असुर याजक भृगु को ही अपना पुरोहित बनाया था। तुर्वशु की संतति यवन हुई और अनु का वंश म्लेच्छ हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वेद काल में इन ययाति के वंशधरों ने पहले पूर्व की ओर गंगा की घाटी तथा अयोध्या को लक्ष्य कर चढ़ाई की थी, परन्तु यहाँ आर्यावर्त का संगठन दृढ़ हो जाने से उन्हें सफलता नहीं मिली। फिर उन्होंने पंजाब में पच्छिम की ओर रुख किया जहाँ प्राचीन भरतों के राज्य थे, परन्तु दाशराज्ञ संग्राम में पराजित होकर सरस्वती के किनारे से गंगा-यमुना के किनारे किनारे दक्षिण की तरफ फैल गये।

पुरु को उसके पिता ने चन्द्रवंश की मुख्य गद्दी देकर अपना उत्तराधिकारी बनाया और उसे आशीर्वाद दिया—'अपौरवातु महान कदाचित् भविष्यति'—अर्थात् पौरवों से रहित पृथ्वी का कोई भाग न रहेगा। पुरु का राज्य-विस्तार पहले सरस्वती के दोनों किनारों पर हुआ। आगे पौरवों का बहुत विस्तार हुआ। इस वंश के अनेक राजाओं का वर्णन ऋग्वेद में है। कण्व ऋषि इसी वंश के पुरुष हैं। तथा इस वंश के पुरोहित भी हैं। इसी कुल में भरत हुआ, पर उसका नाम ऋग्वेद में नहीं है। इसी कुल में कुरु हुआ, जिसने कुरुक्षेत्र की स्थापना की। सरस्वती और यमुना के बीच के भारी मैदान को कुरुक्षेत्र कहते हैं। पौरवों के विकास काल में कुरुक्षेत्र सभ्यता, संस्कृति का केन्द्र रहा। यहाँ की भाषा, रीति-रस्म-व्यवहार आदर्श माने जाते थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में हमें यह संकेत मिलते हैं। यद्यपि कुरु और भरत का नाम ऋग्वेद में नहीं है, पर इस वंश का व्यक्ति देवापि जो शान्तनु का भाई था, ऋग्वेद के अन्त के एक सूक्त का कर्त्ता है।

यदुओं का वर्णन ऋग्वेद में सदा तुर्वशों के साथ आया है। उसमें कण्वों का भी उल्लेख है। सम्भव है यदुओं और तुर्वशों की सीमाएँ मिलती रही हों। ऋग्वेद का आठवाँ मण्डल काण्व ऋषियों का है, जो स्वयं चन्द्रवंशी होने के कारण यदुओं-तुर्वशों के हितैषी हैं। ब्राह्मणों में भरत के पुरोहित भी कण्व ही कहे गये हैं। आङ्गिरस भी यदु-तुर्वशों से सम्बन्धित हैं। ऋग्वेद के पहले मण्डल में आङ्गिरस के अनेक सूक्तों में इस बात का आभास मिलता है। यह स्पष्ट है कि ऋग्वेद काल

में यदुओं का काफी विस्तार हो गया था। इनकी बस्तियाँ यमुना किनारे पर थीं। परन्तु ऋग्वेद काल में कदाचित् यादवों के राज्य नहीं हुए थे, गण थे और उनके प्रमुख गण कहाते थे। शूरसेन और वसुदेव यादवों के गण प्रमुख थे। ययाति ने आरम्भ ही में अपने पुत्र यदु से कह दिया था कि तेरी प्रजा अराजक रहेगी।[1] इसी से यादव गोपालन करते थे तथा गोप नाम से प्रसिद्ध थे। ऋग्वेद के आठवें मण्डल में कण्व सूक्तों में ऐसा उल्लेख है कि हमने यदु-तुर्वशों से गायें लीं। आगे चलकर तुर्वश पांचालों में मिल गये। पांचालों का प्रमुख पुरुष सृंजय, सहदेव, सोमक, ऋग्वेद में वर्णित है।

हरिवंश में द्रुह्यु का वंश गांधार कहा गया है। पर अनु के प्रचेता और सुचेता आदि पुत्र-पौत्र हुए। आगे फिर उसके वंश का पता नहीं लगता। परन्तु महाभारत के आदि पर्व में एक श्लोक मिलता है, जिसका अभिप्राय यह है कि यदु के यादव, तुर्वसु के यवन, द्रुह्यु के भोज, और अनु के म्लेच्छ वंशज हुए।[2] सम्भव है महाभारत काल तक इन वंशों में यह परिवर्तन हो गया हो। परन्तु हरिवंश के कथन की अपेक्षा महाभारत का यह कथन ठीक प्रतीत होता है कि द्रुह्यु से भोजों की उत्पत्ति हुई। सभापर्व में भी कृष्ण के मुँह से यही कहलाया गया है। सम्भवतः यही द्रुह्युवंशी भोज मध्य देश में भारत संग्राम काल में मगध और शूरसेन देशों में प्रबल थे और इन्हीं के कुल में जरासंध आदि हुए। यह भी सम्भव है कि अनु और आयोन (Ion) एक ही हों। उनमें यवनों की उत्पत्ति हुई हो और तुर्वसु से तुर्क अथवा तूर (ईरान की तूरानी) आदि जातियाँ उत्पन्न हुई हों।

ऋग्वेद में तो तुर्वसुओं का सृंजयों से मिल जाने ही का उल्लेख है। तथा अनु की अग्नि प्रसिद्ध थी, ऐसा संकेत है। उनके यहाँ इन्द्र और अग्नि देव नित्य आते थे। इससे यह अनुमान होता है कि महाभारत काल तक ये जातियाँ इस प्रकार परिवर्तित हो गयी थीं। यहाँ ययाति ने अपने पुत्रों को जो शाप दिया था, उस पर ध्यान देना चाहिए। यदु की सन्तति को अराज भाक् (राजकाज न करने योग्य), तुर्वसु को संतति-उच्छेद का शाप दिया गया था। अनु को कहा गया था कि तेरी सन्तान अग्नि की उपासना छोड़, नास्तिक हो जायेगी।

ऋग्वेद में यद्यपि चन्द्रवंश और सूर्यवंश का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। पर महाभारत में कृष्ण ने सभा पर्व में कहा है कि, इस समय भारत में ऐल और ऐक्ष्वाकु वंश के सौ कुल हैं। उनमें भोजवंशियों का विस्तार सबसे अधिक है। ऋग्वेद तो आर्यों की एक जाति मानता है, तथा भारत में उनके अतिरिक्त

---

१ तस्मादराज भाक् तात प्रजा तव भविष्यति।

२ यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः।
द्रुह्योः सुतास्तु वै भोजा अनोस्तु म्लेच्छ जातयः। महा० आदि०

दो अन्य जातियों का उल्लेख करता है—एक दास, दूसरी देव ।[1]

ऋग्वेद और महाभारत के इन प्रवचनों से हम कुछ अंश तक पाश्चात्यों की उस मान्यता का निराकरण पाते हैं, कि भारत में आर्यों की दो शाखाएँ आयीं। ये शाखाएँ—प्राचीन भरत कुल और उनके उत्तरवर्ती—एल और ऐक्ष्वाकुवंशी ही होंगी, जिनमें भारत संग्राम काल में एल वंश प्रवल था । यह वंश ही चन्द्र-वंश था और वह गंगा, यमुना और सरस्वती के किनारे पर आवाद था। भारत संग्राम चन्द्रवंशियों में ही आपसी झगड़े के कारण हुआ।

भारत—ऋग्वेद में 'भरता:' नाम वारम्बार आया है। यह नाम विशेषकर तीसरे और सातवें मंडलों में त्रित्सु और सुदास के नाम के साथ आया है। सातवें मंडल में जो वशिष्ठ के सूक्त हैं, उनसे प्रकट होता है कि वशिष्ठ भरतों के कुलगुरु रहे थे, तथा भरतों के ही कुल में त्रित्सु थे । इसी प्रकार विश्वामित्र के सूक्तों में भी भरतों का बहुत उल्लेख है। ये सूक्त ऋग्वेद के तीसरे मंडल में हैं। भरतों के राजा सुदास से वशिष्ठ और विश्वामित्र, दोनों ही का सम्वन्ध था। एक सूक्त में विश्वामित्र 'भारत-जन' का प्रयोग करता है। छठे मंडल में भारद्वाज के सूक्त हैं, उनमें भी भरतों का, भारतों का उल्लेख है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में 'भारत' का अर्थ क्षत्रिय-योद्धा या पुरोहित के अर्थ में किया गया है। निरुक्तकार भारती शब्द का अर्थ सूर्यवंश से सम्वन्धित कहता है। परन्तु महाभारत में कौरव-पांडव दोनों ही को भारत कहा गया है, सो महाभारत के भारत और ऋग्वेद के भारत भिन्न-भिन्न हैं। महाभारत में ही इस वात को स्पष्ट कर दिया गया है।[2] इस श्लोक में यह स्पष्ट है कि पुराने भारत प्रसिद्ध हैं—वे अपरे अर्थात् और हैं।

ग्रन्थ विभाग—ऋग्वेद के दस मंडल हैं, प्रथम और दसवें मंडल सवसे वड़े हैं। प्रत्येक मंडल में अनेक सूक्त और प्रत्येक सूक्त में अनेक ऋचाएँ हैं। छोटे सूक्तों में चार-छ: ही ऋचाएँ हैं। पर एक मंडल के एक सूक्त में ५२ ऋचाएँ तक हैं। अधिकतर सूक्तों में प्राय: १२ से १५ तक ऋचाएँ रहती हैं।

प्रथम मंडल—प्रथम मंडल में १९१ सूक्त हैं। सूक्त छन्दों में लिखे गये हैं। प्रथम मंडल में गायत्री, अनुष्ठुप, त्रिष्ठुपु, जगती, वृहत्ती, सत्तीवृहती, द्विपदी, विराज और अत्यष्टि छन्द प्रमुख हैं। कई अप्रमुख छन्द भी हैं। इन १९१ सूक्तों में २५ ऋषि हैं, जिनमें दो केवल एक सूक्त के, और पाँच केवल एक अन्य सूक्त

---

१ योनोदास आर्यो वा पुरुष्टुता देव इन्द्र युधये चिके तति । ऋ० मं० १० सू० ३८ ऋ ३ । सायण ने आर्य शब्द का अर्थ त्रैवर्णिक किया है—अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ।

२. भारताद्भारती कीर्ति येनेदं भारत् कुलम् । अप ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुता: । महा० १२१ आ० अ० ७४ ।

के हो। इस प्रकार प्रथम मडल के प्रधानतया १८ ऋषि हैं। ये ऋषि समकालीन नहीं है। भिन्न-भिन्न काल के ऋषियो द्वारा रचे गये मन्त्रों को प्रथम मडल में एकत्र किया गया है।

मंडल के १९१ सूक्तो मे पृथक्-पृथक् देवताओ के विषय मे अनेक मन्त्र हैं। सब देवता सोमपान के लिए नियन्त्रित किये जाते हैं और सोम से बल प्राप्त करते हैं। उनसे कहा जाता है कि घोडे की भाँति दौडकर आओ और बैल की भाँति बहुत-सा सोमपान करो। बैल की उपमाएँ अधिक है। इन्द्र और विष्णु तक की उपमाएँ बैल से दी गयी हैं। कहीं-कहीं भैंसे और घोडे से भी उपमा दी गयी है। मेघो की उपमाएँ भैंस से दी हुई हैं। मेघो को बहुत स्थानो पर गाय कहा गया है। इस मडल मे वर्णित प्रमुख देवताओ का विवरण इस प्रकार है—

वैदिक देवता—इन्द्र वेद का सबसे बडा देवता है। देवताओ का राजा और विष्णु का मित्र है। इन्हे कुशिक भी कहा गया है। इसकी कुतिया का नाम सरमा है। त्वष्टा ने दधीचि की हड्डियो से उसका वज्र बनाया था, जिससे उसने वृत्र को मारा। इसके अतिरिक्त इन्द्र ने सुश्न, नमुचि, करज, परनय और वृंगद को मारा। वृंगद के सौ दुर्ग नष्ट किये। दासों के भी दुर्ग मर्दित किये। सुश्रवस्, तूर्वयान्, यतम, नर्य, तुर्वश, यदु, तुर्वीत, पुरुकुत्स, पुरू और सुदास की रक्षा की। उन्हे युद्ध जीतने मे मदद की। कक्षीवान् ऋषि की वृचया स्त्री थी।

अग्नि—इन्द्र के बाद सबसे प्रसिद्ध देवता है। यह होतार, बसीठी और देवताओ मे यज्ञ लाने वाला है। यह दो माताओ का पुत्र है। भृगु वश से इसका सम्बन्ध है, तथा मनु का पुरोहित है। होत्रा, भारती, वहन् और धिष्णा—इसकी स्त्रियाँ हैं। धिष्णा वाग्देवी है। स्वाहा नाम से अग्नि मे यज्ञ होता है।

वायु—यह नाम दो मन्त्रो मे है।

मरुत—भग के साथ उत्पन्न हुए। कधे पर बरछा और हाथ मे तलवार। प्रथम देवता न थे, परन्तु युद्ध मे इन्द्र की सहायता करके यज्ञ भाग पाने लगे।

आश्विन—दो हैं। इन्होंने करवन्धु, वय और वशिष्ठ को प्रसन्न किया, तथा सुदास को उनकी स्त्री सुदेवी ला दी। बाँझ गाय से दूध निकाला, अधे तथा लँगड़े परावृत्र को चगा किया, विश्पला की टूटी टाँग जोड दी। वद्धमती को हिरण्यहस्त पुत्र और ऋज्राश्व का नेत्र दिये। विश्वक को विश्नापुल पुत्र एव घोषा को पति दिया। इन्होंने वृद्ध च्यवन को युवा बनाया तथा अन्यो की सहायता की, ये चिकित्सक थे। योद्धा भी थे। दस्युओं को हराया।

विश्व देवस १३ हैं—

बृहस्पति—ब्रह्मणस्पति—मन्त्रों के देवता हैं।

ऋभु—तीन हैं, ये आंगिरस सुधन्वा के पुत्र थे। इन्द्र की सहायता करने से देव बन गये। इन्होंने अश्व और अश्विन् का रथ बनाया।

वरुण—मित्र वरुण और मित्र का वर्णन साथ-साथ आता है।

पूषन—बारह आदित्यों में एक है।

रुद्र—बलवान, उदार, औषधि और मन्त्रों के स्वामी, मरुतों के पूर्वज तथा प्रचण्ड पुरुष हैं।

उषस्—आकाश की पुत्री ज्योतिपूर्ण।

सूर्य—मित्र वरुण तथा अग्नि की आँख। विष्णु।

सोम—(चन्द्रमा) परम बुद्धिमान्, धनदाता, औषधियों के स्वामी।

सोम—(रस) पत्थर से पीस तथा ऊनी छन्ने में छानकर और मट्ठे में मिलाकर पिया जाता था।

विष्णु—द्युस के पुत्र। तीन पगों में पृथ्वी और आकाश में विचरण करने वाले। इसी प्रकार रति, सविता, भग, मातरिश्वा, तृत, ऋतु, अर्यमन आदि देवताओं का उल्लेख है।

इस मंडल के ऋषि—विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दस, मधुच्छन्दस के पुत्र जेता, कण्व पुत्र मेधातिथि, अजीगर्त पुत्र शुनःशेप, अंगिरस पुत्र हिरण्यस्तूप, अंगिरस घोर पुत्र कण्व, कण्व पुत्र प्रकण्व, अंगिरस पुत्र सम्य, गौतम पुत्र नोवस, वशिष्ठ के पुत्र शक्ति, शक्ति के पुत्र पराशर, रहूगण के पुत्र गौतम, अंगिरस पुत्र कुत्स, भगीरथ पुत्र कश्यप, राजा गिरि के पाँच पुत्र वर्षा गिरि आदि, कुत्स (दूसरे) कक्षीवान् उशिज के पुत्र यजुवंशी, दिवोदास वंशी परुच्छेप उच्त्थ-ममता पुत्र दीर्घतमस, मान पुत्र अगस्त, लोपामुद्रा अगस्त पत्नी—इस मंडल के ऋषि हैं।

लोपामुद्रा अगस्त्य पत्नी थी, पाँच वर्षागिरों के नाम थे—रिजिराश्व, अम्बरीप, सुराधास, सहदेव और भयमान। मधुच्छन्दस और जेता विश्वामित्र के पुत्र पौत्र हैं। शुनः शेप अजीगर्त के पुत्र थे। हिरण्य स्तूप, कण्व, प्रस्कण्व, सव्य और कुरु अंगिरसवंशी थे। दीर्घतमस अंधे थे। इस प्रकार इस मण्डल के भिन्न-भिन्न ऋषि हैं।

अन्य नाम—मनु, नहुष, इला, ययाति, पुरूरवस, नवग्वधराना, (आर्यों के लिए युद्ध करने वाले) दिवोदास, कसोजु, रस, तृसोक, मान्धाता, उग्रदेव, यदु, तुर्वश, अनु, पुरु, द्रुह्य, भृगु, नववास्त्व, वृहद्रथ, तुर्वीति, अतिथिग्व, सर्यात, सुश्रव, तुर्वयान, नरय, पुरुवंशी, भारद्वाज, पुरुमीढ़, सतवनि, यतस, पुरुकुत्स, रेभा, वन्दन, दधीच, ऋजि स्वन अत्रक, भ्रज्यु, करकन्ध के पुत्र, वर्य, सुचन्ति, पृशिगु, परावृज, वशिष्ठ, वभ्र, श्रुतर्य्य विस्फला, वसु, कलि प्रथि, सयु, सुदेवी, (सुदास की पत्नी) अध्रिगु, सुभर, रितस्तुप, कुत्स, दवाति, ध्वसान्ति, पुरुशान्ति, अफास्व, च्यवन, हिरण्यहस्त, सेलाराज्य जन्हु, ऋचत्क, सर, कृष्ण पुत्र विष्वक्, विश्नायु, उद्योपा, नृश पुत्र कण्व, स्वान, स्वनय, कण्व मरार सार, अमावस, भाव, पुरु, मीढ़, दीर्घतमस, तृण स्कन्द आदि नाम विनतियों से प्रसंग वंश आ गये हैं।

इन पुरुषो के सम्बन्ध मे कोई कथा नही है। एकाध घटना मात्र का उल्लेख है, वास्तव मे यह मण्डल प्रार्थनाओ का ही सग्रह है।

आर्यों के शत्रुओ मे वृत्र, दनु, पिप्रु, सुश्ना, शम्बर, अर्बुद, वघ्र, नमुचि, करज, परनय, नमृद, बल, पणि, वृषय, व्यस-अहि, रौहिनि, कुत्स, तुग्र, त्रैतन और कूपवाच नाम आये हैं।

इस मण्डल मे जितने मन्त्र हैं, सबमे प्रार्थनाएँ ही हैं कोई कथा प्रसंग नही है। कही-कही कुछ व्यक्तियो के प्रसग आ गये हैं। इस मण्डल मे थोडे ही विषयो का बडा वर्णन है, जो प्राय नीरस है। कुछ वर्णन सरस भी हैं—जैसे उषा का वर्णन। पुनरुक्तियाँ हैं। भिन्न भिन्न ऋषियो ने एक ही बात को दोहराया है।

रचनाक्रम—रचनाक्रम की दृष्टि से यह मण्डल सबसे प्राचीन नही है। इस मण्डल के पहले ही मन्त्र मे प्राचीन मन्त्रकारो का कथन है, जिसमे उन मन्त्रो का इस मन्त्र मे प्रथम होना सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त वशिष्ठ और विश्वामित्र के पुत्र इस मण्डल के ऋषि हैं—परन्तु विश्वामित्र और वशिष्ठ स्वय अपने मण्डलो के ऋषि हैं।

सामाजिक रीतियो का सकेत—इस मण्डल मे प्रसगवश तत्कालीन सामाजिक सकेत भी आये हैं परन्तु मण्डल के मन्त्र एक काल के नही हैं। अत ये रीतियाँ एक ही काल की हैं, यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी उनसे त्रेता के अन्त काल और द्वापर के सम्पूर्ण जीवन पर प्रकाश पडता है, क्योंकि इस मण्डल के अधिकाश ऋषि इसी काल के हैं। कुछ सकेत यहाँ देते हैं—

(१) आर्य राज्या की पाँच मुख्य शाखाएँ थी—यदु, तुर्वश अनु, द्रुह्य और पुरु (ये पाँच ययाति पुत्र थे)

(२) आर्यों के अनार्यों स युद्ध होते थे, ये लोग दास, दस्यु, सिम्यु थे। धूम्रवर्ण इनके नेता बडे प्रभावशाली थे, उनमे से कइयो के सौ-सौ किले थे। सुश्न, पिप्रु, वृत्र, कुयव और शम्बर के दुर्ग इन्द्र ने तोडे, कुयव के मरने पर उसकी दो स्त्रियो ने विलाप किया।

(३) बुरे दामाद खूब धन देते थे—तब उनका ब्याह हो गया।[1]

(४) सौ पतवारो तक के जहाज थे, अग्नि से जगल जलाकर साफ किए जाते तथा बस्तियाँ बसायी जाती थी। आर्य सभा करके कोई बात निर्णय करते थे। घुडदौड होती थी, युद्ध रथो पर होते थे। ऋत्विजो को भी पराजित शत्रुओ की लूट के माल मे हिस्सा मिलता था—क्योंकि उनकी प्रार्थनाओ से देवता प्रसन्न होकर युद्ध जय कराते थे। अश्वमेध यज्ञ होते थे।

(५) सात नदियों के नाम इस मण्डल मे हैं—सतलुज, व्यास, रावी, चनाव,

---

१ सूक्त १०९।

झेलम, सिन्धु, सरस्वती। ये सब पंजाब की नदियाँ हैं। सिन्धु, सरस्वती के नाम अधिक हैं। गंगा, यमुना, गोदावरी, कृष्ण-नर्मदा आदि का नाम इस मण्डल में नहीं आया है।[1]

(६) सौ वर्ष तक जीने की प्रार्थना की गयी है।[2]

(७) चारों वर्णों के नाम इस मण्डल में नहीं हैं। असुर शब्द देवताओं के लिए आया है। ब्रह्म और ईश्वर का नाम भी नहीं है। केवल देवताओं ही की स्तुति है।

कुछ ऐतिहासिक संकेत—इस मंडल में कुछ ऐतिहासिक संकेत हैं। इन्द्र कौशिक है उसका नाम राम भी है।[3] शुनःशेप का बंधन और वरुण की प्रार्थना है।[4] पुरूरवस।[5] वृत्र को मारकर इन्द्र डरकर भाग गया।[6] सुदास और तुर्वंश के कथन।[7] ऋजिश्वन ने पिप्रु के दुर्ग नष्ट किये। अतिथिग्व दिवोदास ने शम्बर को जीता। अर्बुद भी जीता।[8] शर्यात।[9] १० हजार वृत्र के आदमी मारे गये। नमुचि मारा गया, अतिथिग्व ने करंज और पर्णद को मारा, ऋजिश्वन ने वंगृदेव के १०० दुर्ग नष्ट किये। सुश्रव ने बीस राजाओं तथा उनके ६० हजार आदमियों को हराया। तूर्वयाण ने कुत्स अतिथिग्व तथा आयु को हराया।[10] इन्द्र ने नर्य, तुर्वंश, यदु और तुर्विति की मदद की।[11]

भार्गवों ने अग्नि की स्थापना की।[12] पुरु के पुत्र अग्नि के अनुगामी हैं[13] पुरुकुत्स ने सात दुर्ग तोड़े। सुदास विजयी हुए। पुरु का लाभ हुआ।[14] पुरुकुत्स मान्धाता, शम्बर, अतिथिग्व, दिवोदास, त्रसदस्यु और भारद्वाज के कथन।[15]

---

१. डॉ० राय चौधरी का मत है कि सप्तसिन्धवः नाम में गंगा-यमुना भी सम्मिलित हैं।
२. सूक्त ८९।
३. सूक्त १०।२। तथा ५१।१
४. २४।१२-१३।
५. ३१।४
६. ३२।१४। इन्द्र का केवल यही अपमानसूचक वर्णन है।
७. ४७।६-७
८. ५१।५-६
९. ५१।१२
१०. ५३।६-१०
११. ५४।६
१२. ५८।६
१३. ५९।६
१४. ४३।७ और १७४।१२
१५. ११२।७-१३-१४

शर्याति मनु के पुत्र, सुदेवी पिजवन सुदास की स्त्री।[१] च्यवन बूढ़े जवान हुए, स्त्रियों से विवाह किया।[२] जह्नु तथा कृष्ण पुत्र विश्वक का वर्णन।[३] अर्थ मामतेय को अग्नि ने विपत्ति से बचाया।[४] दीर्घतमस औचथ्य मामतेय को बाँधकर दासों ने नदी में बहा दिया। उन्होंने त्रैतन से युद्ध किया।[५] अगस्त्य मान पुत्र मान्धर्य थे। वे वीर योद्धा भी थे।[६]

३. ऋग्वेद के अन्य मण्डल

दूसरा मण्डल—इसमें कुल मिलाकर ४३ सूक्त हैं, जिनके ऋषि गृत्समद, सोमाहुत और कूर्म हैं। कूर्म गृत्समद के पुत्र थे। इनके केवल ३ सूक्त हैं। सोमाहुत के ४ हैं। शेष सब सूक्त गृत्समद के हैं। इस मण्डल में त्रिष्टुम छन्द हैं। गृत्समद के नाम पर यह मण्डल गार्त्समद कहाता है। इसमें अग्नि की प्रधानता है। गृत्समद हैहय वंश के राजा वीतिहोत्र (३७) के दत्तक पुत्र थे।

इस मण्डल की प्रमुख घटनाएं निम्नलिखित हैं—

इन्द्र ने और्णवाभ, अर्बुद, नार्मर और वल को मारा। शम्बर को पहाड़ से निकालकर उसका वध किया। रौहिण को मारा। इन्द्र ने दभीति, उरन, सुष्णासुर, अत्री, अदन अहि, वृकहार और सन्धियों के स्वामी को भी मारा। उर्जयन्ती एक राक्षसी थी। आतुष्ठिर आर्यों का एक सहायक था। दिवोदास के लिए इन्द्र ने शम्बर के ६६ दुर्ग तोड़े, तथा दस्युओं के लोहकुलों को नष्ट किया। चुमुरि और धुनि का मारा। वल के पहाड़ी किले तोड़े। वंचिन को पुत्रों सहित मारा। पणि का खजाना कन्दराओं में छिपा था, उसे भी लूट लिया। यह मण्डल विजयों का वर्णन करता है। गृत्समद को शुनहोत्र वंश में उत्पन्न कहा गया है।[७]

तीसरा मण्डल—यह मण्डल मुख्यतया विश्वामित्र का है। उनके अतिरिक्त दो सूक्त ऋषभ के, दो सूक्त उत्कील के, दो सूक्त कत के, चार सूक्त गाथिन, एक सूक्त देव श्रवस और देवव्रात तथा ४ सूक्त प्रजापति के, कुल १५ सूक्त और हैं। ये भाग भी विश्वामित्र के पिता-पुत्र-पौत्र परिजन हैं। कुल मिलाकर ६२ सूक्त इस मण्डल में हैं। अग्नि और इन्द्र के वर्णन अधिक हैं। जगती गायत्री

---

१ ११२।१७-१६
२ ११६।५।१०
३ ११६।१६।२३
४ १४७।३
५ १५८।
६ १६६।१५ और १८०।८
७ ४१।१४-१७

तथा त्रिष्टुप छन्द अधिक हैं। इस मण्डल में उपमाएँ अधिक हैं। वेद पाठियों का एक देवता कहा गया है। देवता ३३ कहे जाते हैं। पर यहाँ नवें सूक्त में वे ३३३९ हो गये हैं। प्रसिद्ध है कि विश्वामित्र ने कुछ नये देवता बनाये थे। विश्वामित्र एकेश्वरवाद की ओर भी चले हैं।[१] ये देवता भारतवासी ही बनाये गये हैं।[२] सरस्वती और दृषद्वती के वर्णन अधिक हैं। वे अग्नि को इला का पुत्र कहते हैं। शत्रदु (सतलज) और विपाश (व्यास) नदी के वर्णन हैं।

वशिष्ठ—विश्वामित्र के झगड़ों का भी यहाँ उल्लेख है।[३] प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र विश्वामित्र ने इसी मण्डल में कहा है। सुदास का तथा भरतों का वर्णन है।[४] शर्यात का नाम भी है। कहा गया है कि इन मन्त्रों के गान से भरतों का वंश प्रसन्न रहेगा। भोज सुदास के परिजन थे। कीकट अवध और दक्षिण बिहार के निवासी अपूजक थे।[५] प्रमदगंड उनका राजा था। कुनार दैत्य वृत्र की माता दनु के साथ रहता था। भारत पंजाब की नदियों के पार गये। सुदास ने पूर्व-पच्छिम और उत्तर जीता। शक्ति विश्वामित्र के घोर शत्रु थे।

चतुर्थ मण्डल—इसमें ५८ सूक्त हैं। प्रधान ऋषि गौतम पुत्र वामदेव हैं। इनके अतिरिक्त त्रसदस्यु ने एक, पुरुमील्ह और अजमीढ़ ने २ सूक्त बनाये हैं। देवताओं में इन्द्र और अग्नि की प्रधानता है। छन्द विशेषतया गायत्री, त्रिष्टुप और जगती हैं। रुद्र घातक कहे गये हैं—इद्र ने पिप्र और मृगयी के ५० हजार सेना को तथा अर्णा और चित्ररथ को सरजू तट पर मारा। ये दोनों आर्य राजा थे तथा सरयू पार रहते थे। अग्नि ने अंधे मामतेय का दुःख दूर किया। अहि को मारकर इन्द्र ने नदियाँ खोल दीं। सहदेव सोमक-कुत्सपरुष्णी (रावी) और कवच के वर्णन हैं। त्रसदस्यु और पुरु के वर्णन हैं। सीता की पूजा लिखी है। पुरुकुत्स कैद में था, तब उसका पुत्र त्रसदस्यु उत्पन्न हुआ। वह भारी राजा था—शत्रुविजयी अर्द्धदेव कहाता था।[६] सृंजय देववात के पुत्र थे। सहदेव पुत्र सोमक ने वामदेव को दो घोड़े दिये। विदथिन के पुत्र अजिस्वन ने मृगय और पिप्र को जीता। दिवोदास अतिथिग्व ने शम्बर के ९९ दुर्ग तोड़े। शम्बर कुलीतर का पुत्र था। वर्चिन के एक लाख पाँच सौ वीर मारे गये। तुर्वश और यदु डूबने से बचाये गये। दिवोदास ने पत्थर के सौ किले तोड़े और ३० हजार दासों को मारा। यह कार्य दभीति ऋषि की सहायता से किया गया।

---

१. ५४।८
२. ५४।१७
३. ५३।१४-१५ तथा ५३-२१
४. ५३।११-१२
५. ५३।१४
६. ४२।१८-९

पचम मण्डल—इसमे ८७ सूक्त हैं तथा इसके ऋषि अनेक हैं। वे अत्रिवशी हैं। जिनके कुछ नाम —बुध और गविष्ठिर (१), गय (२), सुतभर (४), पुरु (२), वव्रि (१), त्र्यरुण, त्रसदस्यु, अत्रि (१), सम्वरण (२), अत्रिभौम (८), श्यावाश्व (६३), अर्चनानस (२), रातहव्य (२), बाहुवृक्त (२), पौर (२), सत्यश्रवस (२), यवयामरुत (१)।

इस मण्डल मे अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवस-मरुत, मित्रावरुण और अश्विन के वर्णन हैं। अग्नि ने शुन शेप को बचाया। पृथ्वी घूमती है।[1] पुरुमीढ ऋषि थे। मुचद्रथ के पुत्र सुनीथ थे। मनु ने विससिप्र को जीता। पारावत परुषणी के तट पर रहते थे। काबुल नदी का नाम कुभा था। सरजू अवध मे थी। इस मण्डल मे त्रिष्टुप गायत्री, अनुष्टुप-जगती और अतिजगती छन्द हैं। त्रसदस्यु नाहुस, भारत, त्रिवृ र्याहण, त्रिविपम राजाओं का नाम है। पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु ने सवरण ऋषि को दस घोडे दिये। स्वर्भानु राहू था, उसने सूर्य को अधकार से भेद दिया। च्यवन बूढे स जवान हुए।

छठा मण्डल—इसमे ७५ सूक्त हैं। प्रमुख ऋषि भरद्वाज हैं। भरद्वाज के (४३), वीतिहव्य (१६), सुहोत्र (२), शुनहोत्र (२), नर (२), शम्य (४), गर्ग (१), रिजिश्विन (४), पायु (१)। अधिकतर छन्द त्रिष्टुप, अनुष्टुप, जगती और गायत्री हैं। अग्नि इन्द्र, विश्वेदेवस, पूषन उषस, और मरुत के वर्णन हैं। गौ के प्रति आदर प्रकट किया गया है। अदन एक असुर था—अथर्वण ने अग्नि को बाहर निकाला, और उसके पुत्र दाधीचि ने आग जलाई। चुमुरी, धुनि, शम्बर, पिप्र और शुष्ण के दुर्ग इन्द्र ने नष्ट किये। कुत्स, आयु और अतिथिग्व को इन्द्र ने हराया, तथा नमि की रक्षा की। वेतसु दसोनी और तुग्र हराये जाकर देवताओं के पास लाये गये। इन्द्र ने पुरुकुत्स की सहायता की और प्रधीनस को कन्या दी। देववाड के पुत्र अभ्यावर्तिन चायमान को इन्द्र ने जिताया। वार्षिक को हराया और वृचनों को मारा। अभ्यावर्तिन चायमान पृथु के वशज थे। इन्द्र यदु को दूर ले आये। इस मण्डल मे गगा तट का वर्णन है। राजवशी दत्तु-द्रुह्य और पुरु के नाम हैं। शम्बर के किले पहाड पर थे। नहुष वशियो को पराक्रमी कहा है। सरस्वती तथा पजाब की नदियो के नाम भी आये हैं। इस मण्डल मे कई ऐतिहासिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। वीतहव्य और भरद्वाज समकालीन प्रमाणित होते हैं। वीतहव्य हैह्य वश मे (२७) थे। पीछे वे ऋषि होकर सम्भवत भरद्वाज के साथ रहने लगे थे। दिवोदास ने भरद्वाज को दान दिया था।

---

१ ८४.२
२ १९ ३

भारतों की खोज गयी ।[1] प्रतदेन का कथन है ।[2] शम्बर को मारकर देवताओं ने दिवोदास की सहायता की । देववात अभ्यावर्तिन चायमान ने यव्यावती नदी पर वृचीनवों को हराया तथा सृजय को तुर्वश देश दिया । चायमान ने २० घोड़े तथा दासियाँ भरद्वाज को दीं । चायमान पृथुवंशी थे ।[3] दिवोदास ने भरद्वाज को धनी बनाया । इन्द्र ने शम्बर के १०० किले तोड़े । प्रस्तोक ने दान दिया । दिवोदास ने अतिथि बन शम्बर के धन से भरद्वाज को दान दिया । अशाथ ने पायु को दिया । सृंजय के पुत्रों ने भरद्वाज का मान किया । भरद्वाज के पुत्र वेदर्षि थे ।[4] वध्रश्व दिवोदास के पिता थे ।[5]

इस मंडल से दिवोदास, प्रस्तोक, अभ्यावर्तित, चायमान, भरद्वाज समकालीन प्रमाणित होते हैं । यह मंडल एक और गम्भीर सत्य पर प्रकाश डालता है, जो अन्धकारावृत है । यहाँ भरद्वाज भरतों को अपना आश्रयदाता मानते हैं । आपको ज्ञात रहे कि यह भरद्वाज भरत के (दौष:न्ति) के वंश में थे । अत: भारत शब्द से ये मनुर्भरतवंशियों की प्रशंसा करते हैं—जिनके राज्य इस काल में भारत में फैले थे ।

सातवाँ-मंडल—इसमें १०४ सूक्त हैं । इनमें २९ के ऋषि मैत्रावरुपि वशिष्ठ हैं—शेप के वशिष्ठ । इनमें एक के ऋपि वशिष्ठ और शक्ति दोनों हैं । एक अन्य के वशिष्ठ और उनके पुत्र । देवताओं में अग्नि, इन्द्र विश्वेदेवस मित्र, सूर्य । आश्विन, उअपस, सरवस्ती और विष्णु की भी प्रधानता है, सुदास की बहुत महिमा गायी गयी है । छन्दों में त्रिष्टुप वृहती, जगती तथा गायत्री अधिक है । मुख्य घटनाएँ निम्नलिखित हैं—

जरूथ को अग्नि ने जलाया तथा नहुपवंशियों को हराकर उन्हें सुदास को कर देने पर बाध्य किया । सुदास ने नदी पार कर सिम्यु लोगों को हराया । विजय के लिए उत्सुक तुर्वश, परोदास, भृगु लोग और दुह्य लोगों ने सुदास की आज्ञा मानी । पक्थ, भलान, अलिल, शिव और विशातों ने तृत्सुवों के नेता सुदास का सामना किया । पर वे भागे । सुदास ने २१ जातियों के वैकर्णो को परास्त किया । सुदास के शत्रुओं ने नदी से एक नहर निकालकर उसे पार करना चाहा, पर वे नदी में डूब गये । इनमें काम और द्रुह्यवंशी भी थे । भृगु, द्रुह्य, तुर्वश आदि ने परुष्णी नदी को पार कर इस नदी के दो टुकड़े कर सुदास पर धावा किया, पर

---

१. १७।८।१४
२. २२, १०
३. २७।५
४. ५०।१५
५. ६३।३

वे स्वय डूब गये। सुदास की सहायता को अनेक आर्य आये। उसने शत्रुओं के ७ किले जीते और अनु के पुत्रों का सामान लूटकर त्रसदस्यु को दिया। अनु और द्रुह्युवंशियों के ६००० योद्धा तथा ६६ वीर सेनानी मारे गये। पुरुवंशी नहीं हारे। शत्रु का सब सामान लूट लिया। यमुना के किनारे सुदास ने भेद का सब खजाना लूट लिया तथा उसे प्रजा बना दिया। युध्यामधि को सुदास ने अपने हाथ से मारा। इस प्रकार प्रसिद्ध दस राजाओं का युद्ध हुआ। राजा वर्चिन के एक लाख आदमी मारे गये। अज-शिग्रु और यक्षु ने सुदास को कर दिया। पराशर-वशिष्ठ और सत्यमान को सुदास ने बहुत-सा धन दिया। सुदास के पिता दिवोदास थे। पराशर-वशिष्ठ और सत्ययति सुदास के नौकर थे। आर्य राजा परिद्युम्न सुदास के समकालीन थे। सिमदा एक राक्षसी थी। दीर्घ श्रावसा घुड़-दौड़ के घोड़े थे। शाल्मली से रुई निकाली जाती थी। आर्यों की पाँच शाखाएँ थी, जो राजा सुदास से हारे, पूजन नहीं करते थे। वशिष्ठ ने समुद्र पर जहाज की यात्रा भी की थी। पुरुवंशी सरस्वती के दोनों किनारों पर रहते थे। जमदग्नि की प्रशंसा की गयी है। जमदग्नि विश्वामित्र के सहायक थे। वशिष्ठ भी उनसे प्रसन्न रहे। आर्य लोग सरस्वती के पूर्व की ओर बढ़ चुके थे, वे आपस में भी लड़ते थे। पुरूरवा की राजधानी प्रयाग के निकट प्रतिष्ठानपुर थी। वशिष्ठ ने जरूथ को मारा। वशिष्ठ का देववानी के संतान ने २०० गायें दीं तथा सुदास ने दो रथ दिये। सुदास तृत्सुपति थे। वशिष्ठ उर्वशी के वरुण-मित्र द्वारा उत्पन्न पुत्र थे। तृत्सु सफेद वस्त्र पहनते थे। पौरवों के दृढ़ राज्य सरस्वती के दोनों किनारों पर थे।

आठवाँ मंडल—इसमें ९२ सूक्त हैं और वालखिल्यों के ११ सूक्त इन ९२ के पीछे लगा दिये गये हैं। इस प्रकार कुल १०३ सूक्त हैं। इनके ऋषि अनेक हैं। जिनमें प्रमुख—मेधातिथि, आसंग, शाश्वती, मनु, प्रियमेध, देवातिथि, ब्रह्मातिथि, वत्स, शशकर्ण, प्रगाथ पर्वत, उशना काण्व, नारद, सोभरि, विश्वमना, मनुवैवस्वत, कश्यप, नीपातिथि, वसुरोचिष, श्यावाश्व, नाभाक, विरूप, त्रिशोक, त्रित, भर्ग, कार्ग, पुरुमीढ, हर्यत कुसीदी, उशना, कृष्ण, विश्वक्, नोधा, अपाला, रेभ, इन्द्र, जमदग्नि, प्रस्कण्व, आयु, मातरिश्वा, कृश और सुपर्ण।

इस मंडल में मुख्य छन्द बृहती, गायत्री-अनुष्टुप, उपनिषद्, महापंक्ति और जगती हैं। देवताओं में यहाँ इन्द्र-अश्विन, अग्नि, वरुण, आदित्य और मरुत प्रधान हैं। गाय का भी वर्णन है। गाय को निर्दोष कहा है। आसंग, विभिन्दु-पाकस्थामा, कुरुंग, कशु, तिरिन्दिर, त्रसदस्यु, चित्र, पृथुश्रवा और श्रुतवर्ण की उदारता के वर्णन हैं।

इन्द्र ने शुष्ण का चलता हुआ किला नष्ट किया। राजा परमज्या, निन्दिताश्व, प्रपथी, आसंग पुत्र स्वनद्रथ और यदु पुत्र उदार थे। आसंग प्लयोग

के पुत्र थे। सरस्वती उनकी पत्नी थी। ये नपुंसक हो गये, पीछे ठीक हो गये। यदु पुत्र ने यति को सुनहले सामान सहित दो घोड़े दिये। राजा विभिन्दु ने यज्ञ किया। पनि एक ऋषिकुल था, जिसका भृगुवंशी राजाओं से सम्बन्ध था। सम्भवतः जिन भार्गवों का सातवें मंडल में सुदास से युद्ध हुआ, वे इसी राजकुल के थे। इन्द्र ने पुरु पुत्र तथा रुशभ, श्यावक, स्वर्णर और कृष राजाओं की सहायता की तथा मृगय और अर्वुद को हराया। इन्द्र अनुवंशियों, तुर्वंश और रूम के मित्र थे। तुर्वश और यदु की प्रशंसा है। पज्र और कण्व शत्रु हैं। तुग्र पुत्र भुज्य को अश्विनी कुमारों से बचाया। चेद पुत्र कसु ने ऋषि को १०० भैंसे और १० हजार गायें दीं। चेदि-लोग बड़े उदार थे। नहुषवंशियों के घोड़े अच्छे थे। सरयातीवान् कुरुक्षेत्र में एक झील थी। पर्शु और तिरिन्दर के नाम आये हैं। कुकुर यादवों के समान थे। उन्होंने भैंसे दान दिये। यश और दशवृर्ज को त्रसदस्यु ने सहायता दी। अथर्वण ऋषि थे। कक्षीवान् और दीर्घतमा ऋषि थे। वेन पुत्र पृथु था। प्रदाकु सामयज्ञ करने वाला था। कवि पंजाब का योद्धा था। शायद यह पांचाल था। पक्थ अध्रिक, बभ्रु और चित्र राजा थे।

इस मंडल में ३३ देवताओं के नाम हैं। मान्धाता राजा और ऋषि थे। दास वलवूथ एक दानी और आर्य पृथुश्रवा के साथी थे। राजपुत्रों को 'क्षत्री' कहते थे[1]। श्रुतवर्ण ने रावी तट पर युद्ध किया। कृदम और उनके पुत्र विश्वक् ऋषि थे। अत्रिवंशी—अपाला ऋषि थी। पृथ्वी पर दस देश थे। पुरुकुत्स पुत्र त्रसदस्यु ने सौभरि को ५० दासियाँ दीं। त्रसदस्यु विजयी तथा दानी था।

नवम्-मंडल—इसमें ११४ सूक्त हैं, जिनके प्रमुख ऋषि-मधुच्छन्दस, मेधातिथि, शुनःशेप, हिरण्यस्तूप, असित, कुत्स, देवल, विन्दु, गौतम, रहूगण, अचश्म, अवत्सार, काश्यप, भृगु, भरद्वाज, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि, रेणु, ऋषभ, हरिमन्त, कक्षीवान्, वसु, प्रजापति, वेन, उशना, कण्व, प्रस्कण्व, उपमन्यु, व्याघ्रपाद, वशिष्ठ-शक्ति पराशर, अम्बरीष, ऋजिश्वन, ययाति, नहुष, मनु, नारद, शिखंडी, अग्नि, चाक्षुष मनु, प्रतर्दन और शिशु। इस मंडल की सब रचनाएँ सोम पव मान ही के विषय की हैं। ६७ सूक्त तक गायत्री छन्द हैं। पीछे जगती, त्रिष्टुम और उष्णिक्।

इस मंडल की मुख्य घटनाएँ—ध्वस्त्र और पुरुपान्ति दानी राजा था। सोम पवमान ने दिवोदास के कारण यदु-तुर्वश और शम्बर को मारा। इस मंडल में जमदग्नि ऋषि तथा व्यास्व ऋषि का नाम बहुत आया है। उत्तर-पश्चिम में बसने वाली एक आर्जीक नामी अनार्य जाति का वर्णन भी है। सिंह-धनुष और सप्तर्षि का वर्णन है। अथर्वण ने सर्वप्रथम अग्नि पायी, उसे सोम पिलाया गया।

---

१. ५६।१

दशम मंडल—इसमें १९१ सूक्त हैं। प्रमुख ऋषियों में त्रित-त्रिशरा, सिन्धु द्वीप, यम, यमी, बृहदुक्थ, हविर्धान, विवस्वान्, शख, दमन, देवश्रवा, च्यवन, विमद, वसुकृत, वसुक्र, कवष, ऊर्म, लुषा, घोषा, कृष्ण, इन्द्र, वैकुंठ। गोपायन, गय, अपास्य, सुमित्र, बृहस्पति, अदिति, गौरिवीति, जरत्कार, विश्वकर्मा, मन्यु, सूर्या, इन्द्र, इन्द्राणी, वृषाकपि, पायु, रेणु, नारायण, अरुण, शार्यात, तान्व, अर्बुद, पुरूरवा, उर्वशी, देवापि, बभ्रु, बुध, मुद्गल, अप्रतिरथ, अष्टक, दक्षिणा, दिव्य, सरमा, पणि, जुहू, जमदग्नि, राम, भिक्षु, लव, हिरण्यगर्भ, वरुण, सोम, वाक्, कुशिक, प्रजापति, परमेष्ठि, सुकीर्ति, शक्पूत, मुद्रा, मान्धाता, गोधा, कुमार, सप्तमुनि, (जूति-वात, जूति, विप्रजूति, वृषणक, एतश, करिक्रत, ऋष्यशृंग) सप्तर्षि—अग, विश्वावसु अग्नि, पावक, तापस, जरितर, द्रोण, सारिसृक्व, स्तम्बमित्र, अत्रि, सुपर्ण, पौलोमी, पूरण, प्रचेतस, कपोत, ऋषभ, विश्वामित्र-जमदग्नि। अनिल, शबर, वसुमनस, जय, प्रजावान्, त्वष्टा, विष्णु, सत्यधृति, उल, अघमर्षण और सम्बवन।

इन वेदर्षियों में राम उनके पुत्र लव और बहनोई ऋष्यशृंग के नाम भी आये हैं। परन्तु राम के नाम में यह सन्देह है कि यह दाशरथि राम हैं या जामदग्न्य राम। वेदर्षि जरितर-द्रोण-सारीसृक्व और स्तम्बमित्र शारंगी शूद्र से उत्पन्न मन्दपाल ब्राह्मण के वे पुत्र हैं जो अर्जुन के खाण्डवदाह से बचे थे। पुरुष सूक्त के ऋषि नारायण ने नारद को वासुदेव का ईश्वर भाव बताया है।[1] इस मंडल के ऋषियों में अनेक प्रसिद्ध राजा या महापुरुष हैं—जैसे विवस्वान, गय, केतु, ऋषभ, चाक्षुष, मनु, ध्रुव, शिवि आदि। कई देवता भी इस मंडल के ऋषि हैं। जैसे—इन्द्र-अग्नि, इन्द्राणी यम-यमी आदि। ध्रुव भी वेदर्षि हैं। कई स्त्रियाँ भी यहाँ वेदर्षि हैं। प्राचीनतम ऋषि वेद, भृगु और पृथु तथा चाक्षुष हैं।

देवताओं में अग्नि, इन्द्र, यम, पितर, जल, गय, विश्वदेवस, बृहस्पति, विश्वकर्मा, सूर्य आदि प्रमुख हैं। देवताओं के अतिरिक्त इस मंडल में अन्य विषयों पर भी सूक्त हैं। जैसे—जल, पितृ, मृत्यु, गाय, जुआ, खेती, जीवात्मा, सुबन्धु का पुनर्जीवन, हाथ, गावण्य की उदारता, ज्ञान, नदी, दबाने का पत्थर, उर्वशी, पुरूरवा, विवाह का आशीर्वाद, वत्रेपति, गदा, सरमा, पनिस, वेन, वायु, रात्रि, केशी, सपत्नी, वा धन, अरण्य, श्रद्धा, दुर्भाग्य निराकरण, पौलोमी, क्षयरोग निराकरण, गर्भपात से बचाव, अदिति, गर्भ को आशीर्वाद आदि। इन बातों से प्रकट है कि इस मंडल में सामाजिक बातें अधिक हैं। इससे तत्कालीन सभ्यता प्रकट होती है।

छन्दों में त्रिष्टुप्‌द, गायत्री, जगती, अनुष्टुप, आस्तार पंक्ति, प्रस्तार पंक्ति, उष्णिक, महा पंक्ति, बृहती और द्विपदी विराट् हैं।

---

१ नारद ने व्यास से यह तत्त्व कहा—व्यास ने युधिष्ठिर से कहा। (महाभारत शान्ति पर्व)

इस मंडल में अनेक घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। यम-यमी जुड़वाँ भाई-वहिन हैं। बहिन-भाई से विवाह का प्रस्ताव करती है, पर भाई अस्वीकार करता है।[1] मृत्यु के वाद मनुष्य यम के यहाँ जाता है। यज्ञ न करने वाले दस्युओं का वर्णन है। सिंह का वर्णन है। दुहश्शासु ने त्रसदस्यु के पौत्र कुरुश्रवन को पराजित किया था। साघ ने दिवोदास की सहायता की। श्रुतवर्ण ने मृगय और सारच को हराया। ३३३९ देवता हैं। उशीनर मध्य देश में रहते हैं। इक्ष्वाक् राजा और मनु बड़े दानी थे। यदु और तुर्वश ने दो दास दान किये। ययाति नहुष के पुत्र थे। गंगा-जमुना का वर्णन है। बैल मघानक्षत्र में मारे जाते थे और अर्जुनी में बच्चा पैदा करते थे। विराट् पुरुष के मुख वाहु जंघा और पैर से ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति कही है।

पुरुप सूक्त नारायण ऋषि का है, जो महाभारतकालीन है। दुस्सीम प्राथि-वान्, वेन राम, और तात्वापार्श्य यज्ञ करता है। पुरूरवा की स्त्री उर्वशी थी। उसके वर्णन हैं। पुरूरवा इला के पुत्र थे। स्वर्ग का वर्णन है। शान्तनु को उनके भाई देवापि ने यज्ञ कराया। जल शक्तिदाता पुत्रोत्पादक, बलदायक, स्वास्थ्यकर और यालक निराकरण कारक है। वह सब दवाओं में श्रेष्ठ है। पितर यम लोक में रहते हैं। उनका स्थान प्रकाशवान् और जल से परिपूर्ण है। वे यम के साथ प्रसन्न हैं।[2] अन्य विपयों का भी वर्णन है।

उशीनर, इक्ष्वाक्, सुवन्ध, अगस्त्य के भांजे का वर्णन है। ६१वाँ सूक्त नाभा-नेदिष्ट का है, ६२वें में सावर्णा मनु के यज्ञों की प्रशंसा है . ६२ गय का सूक्त है। विवस्वान् के वंशधर तेजस्वी-वर्चस्वी राज्यवर्धन हैं। नाहुप भी ऐसे ही हैं। मनु ने सात पुरोहितों द्वारा सर्वप्रथम यज्ञ किया। गय प्रति के पुत्र थे। वध्रश्व सरस्वती और अग्नि के पूजक थे। सिन्ध, गंगा, जमुना, शतद्रु, परुष्णी, सरस्वती, अस्विनी, वितस्ता, कुंभा और गोमती नदियों के नाम हैं। ८१ सूक्त में एकेश्वर कहा गया है। ८२ में ईश्वर सबका पिता है, उसी ने सृष्टि रची है। एक ही विश्व कर्मन् कर्ता है। वह देवता और असुरों से पहले का तथा अज है। ९० पुरुष सूक्त हैं—यही सूक्त यजुर्वेद में भी हैं। १०२ मुद्गल का सूक्त है। इन्द्रसेना मुग्दलानी ने रथ हाँककर पति को विजय दिलायी थी, हिरण्यगर्भ सवसे प्रथम थे।

ऋग्वेद की ऐतिहासिक घटनाओं का पूर्वा पर सम्बन्ध—निस्सन्देह ऋग्वेद में महत्वपूर्ण इतिहास के संकेत हैं। परन्तु उन सवका पूर्वा पर सम्वन्ध केवल वेदों के सहारे स्थिर नहीं किया जा सकता—क्योंकि वेदों का वर्तमान सम्पादन तिथि-

---

१. कुछ लोग इसे अलंकारिक वर्णन कहते हैं। परन्तु प्राचीन काल में भाई-वहनों से विवाह की प्रथा कुछ जातियों में थी।

२. पितृ एक जाति थी। वाइविल में भी पितरों का वर्णन है।

अनुक्रम मे नही हुआ। विषयो और ऋषियो का ध्यान करके बिखरे हुए सूक्त एकत्र किये गये हैं। एक ही स्थान पर अति प्राचीन सूक्त भी हैं और नवीनतम भी। इसलिए वैदिक ऐतिहासिक घटनाओ का पूर्वा पर सम्बन्ध क्रम ब्राह्मणो, इतिहासो, पुराणा आदि की सहायता से हो सकता है। सहिता के सहारे से तो ज्ञानमात्र प्राप्त हो सकता है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि ऋग्वेद मे बहुत से महत्वपूर्ण व्यक्तियो के नाम अपरिचित हैं। पुराणो और ब्राह्मणो मे जो आर्य राजाओ के नाम आये हैं, उनम परिचित प्रसिद्ध पुरुष वेद मे बहुत कम हैं। इसी से हमारा अनुमान है कि वेद वास्तव मे केवल आर्यो ही का ग्रन्थ नही है, उसमे अनार्य जातियो का भी वर्णन है। आर्य पुरुषो के वर्णन प्रसगवश आये हैं। वे भी बहुत कम हैं। खासकर आर्यों के प्रमुख पुरुषो के तो नाम तक सदिग्ध हैं। जैसे कृष्ण और राम। पुराणो मे तथा अन्यत्र वे नाम नही मिलते हैं, जो वेदो मे हैं, तथा उन प्रमुख घटनाओ, युद्धो का भी कही उल्लेख नही मिलता—जिनका वेदो मे बारम्बार जिक्र है। इसके अतिरिक्त वेद म राम-रावण के प्रसिद्ध युद्ध का जिक्र तथा रावण का नाम है ही नही। राम का नाम सदिग्ध है।

४. ऋग्वेद साहित्य

ऋग्वेद का मध्यकाल वह था जब आर्यों का विस्तार लगभग सिन्धु या सरस्वती नदी तक हो चुका था। उत्तरा पथ मे भी उनका विस्तार कठिनाई से गगा के किनारो तक ही हुआ था। नगर नही थे, नागरिकता नही थी, किन्तु सभ्यता की उच्च सीमा उनके रहन-सहन म पहुँच गयी थी। कुटुम्बो की प्रथा प्रचलित थी और कुटुम्ब का पिता उसका मुखिया माना जाता था।

वे लोग विजयी, और कार्यदक्षता के प्रबल और प्रेम-उत्साह से युक्त एव आमोद प्रमोद के साथ तरुण जातीय-जीवन से परिपूर्ण थे। वे धन, प्रभुता और खेतो से भरे-पूरे एव आनन्दित थे। उन्होने अपने बाहुबल से नये अधिकार और नये देश को यहाँ के आदि निवासियो से छीन लिया था। उस समय यहाँ के आदि निवासी व्यर्थ हो उनके विरुद्ध अपना अस्तित्व बनाये रखने की चेष्टा करते थे। यह युग उनका और आदि निवासियो के युद्ध का युग था। वे अपनी जय का अभिमान अपनी ऋचाओ मे प्रगट करते थे। प्रकृति मे जो तेजवान, उज्ज्वल और लाभदायक वस्तु होती, आर्य उसकी प्रशसा किया करते थे।

उस समय आर्य लोग एक ही जाति के थे। इनमे कोई जाति भेद न था। हाँ, देश मे आर्य और आदि निवासी इस रूप मे जाति भेद अवश्य था। व्यवसाय भेद भी उन दिनो स्पष्ट न था। कुछ बीघे भूमि का स्वामी जो शान्ति के समय

खेती करता और अपने पशुओं को पालता था, वही युद्ध के समय अपने प्राणों की रक्षा करता था। वही फिर ऋचाएँ भी बनाता था। उस समय न मन्दिर थे न मूर्तियाँ। यज्ञ के लिए पुरोहितों की आवश्यकता पड़ने लगी थी और कहीं-कहीं राजा का भी निर्माण हो गया था। परन्तु न राजा की कोई जाति थी न पुरोहित की। वे लोग स्वतन्त्र थे।

बहुत से काम के जानवर पाल लिए गये थे। गाय, बैल, साँड़, बकरी, भेड़, सूअर, कुत्ते और घोड़े पालतू हो गये थे। रीछ, भेड़िये, खरगोश और सर्प मालूम हो चुके थे। हंस, बत्तक, कोयल, कौआ, लवा, सारस और उल्लू भी प्राचीन आर्यों को मालूम हो गये थे।

भिन्न-भिन्न व्यवसाय प्रारम्भ हो रहे थे, किन्तु शिल्प का प्रचार बढ़ गया था। घर, गाँव, नगर और सड़कें बनने लगी थीं। नावों द्वारा व्यापार की वस्तुओं का आयात-निर्यात एवं व्यापारिक यात्राएँ होने लगी थीं। सूत कातना, कपड़े बुनना, तह लगाना, रोम, चर्म और ऊन को काम में लाना वे जान चुके थे। बढ़ई का काम उन्नत दशा में था और रंगने की विद्या भी जान ली गयी थी। आर्य खेती की ओर अधिक ध्यान देते थे। कुछ कुलपति परिवारों को लिए अच्छी भूमि और चरागाह की तलाश में आगे को बढ़ रहे थे।

युद्ध होते थे, जंगली पशु और जंगली जातियों से। हड्डी, लकड़ी, पत्थर और धातु के हथियार बनाये जाते थे। तीर-धनुष और तलवार, भाले ये हथियार बन चुके थे। धातुओं में चाँदी (रजत), सोना (हिरण्य), लोहा (अयस), मालूम हो चुके थे। सीधी-सादी छोटी-सी प्रजा अभी तक राजा का निर्माण नहीं कर सकी थी। प्रजापति या विस्पति-पति ही उनका राजा था, वे उसी के आधीन रहते थे। और यह पुरुष केवल अपने बड़प्पन से बिना किसी शक्ति प्रयोग के शासन करता था। प्रजा शब्द सन्तान के अर्थ में प्रयुक्त होता था (प्रजोपश्यामि सीमन्तापायन संस्कार) खेती की ओर ऋग्वेद के काल में अधिक ध्यान दिया गया था। यह इसी एक बात से प्रकट है कि आर्यों और जनसाधारण के लिए एक शब्द का बहुधा प्रयोग मिलता है—वह शब्द है 'चर्षन'। 'कृष्टि' चृष और कृप धातु से बने हैं, जिनका अर्थ खेती करना है। ऋग्वेद के एक सूक्त में क्षेत्रपति की स्तुति है। देखिये यह किसानी के लिए कितनी उपयुक्त है—

(१) हम लोग इस खेत को 'क्षेत्रपति' की मदद से जोतेंगे। वह हमारे पशुओं की रक्षा करें।

(२) हे क्षेत्रपति ! जिस तरह गाएँ दूध देती हैं उसी तरह मधुर, शुद्ध, जल की वर्षा हमें प्राप्त हो। जल देव हमें सुखी करें।

(३) बैल आनन्द से काम करें, मनुष्य आनन्द से काम करें, हल आनन्द से चलें, जोत को आनन्द से बांधो, पैने को आनन्द से चलाओ।

(४) हे शुन और सीर ! इस सूक्त को स्वीकार कीजिये। जो मेह आपने द्युलोक में उत्पन्न किया है उससे पृथ्वी को सींचिये।

(५) हे सुभग सीते (हल की फाल) आगे बढ़ो, हम प्रार्थना करते हैं, हम लोगों को धन और फसल दो।

(६) हल के फाल (सीता) आनन्द से जमीन को खोदें, मनुष्य बैलों के पीछे आनन्द से चलें, पर्जन्य पृथ्वी को वर्षा से तर करे। हे शुन और सीर ! हमें सुखी करो (४।५८)

(७) हलों को बांधो, जूओं को फैलाओ और जुती भूमि पर बीज बोओ, अनाज भूसों के साथ बढ़े, आसपास के खेतों में हँसुए चलें जहां अनाज पक गया है।

(८) पशुओं के लिए कठड़े तैयार हो गये हैं। गहरे, अच्छे और कभी न सूखने वाले कुए में चमड़े की रस्सी चमक रही है और पानी सहज में निकल रहा है। पानी निकालो।

(९) घोड़ों को ठंडा करो। खेत में ढेरी लगे अनाज को उठाओ और गाड़ी में भर लाओ। यह कुआं जो पशुओं के पीने के लिए पानी से भरा हुआ है, एक द्रोण विस्तार में है। उसमें पत्थर का एक चक्र है। मनुष्यों के पीने का कुण्ड एक स्कन्द है इस पानी से भरो। (१०।१०१)

उपर्युक्त प्रमाणों से प्रकट है कि उस काल में कृषि का प्रचार खूब था। म० १२। सू० ६८। ऋ० १ में हल्ला करके चिड़ियों को उड़ा देने तथा म० १०। सू० ९९। ऋ० ४ में नालियों द्वारा खेत सींचने का वर्णन मिलता है। गाय चराना, पशु पालना, डाकू-लुटेरों आदि का भी वर्णन है। खरीद बिक्री का भी वर्णन है।

कोई मनुष्य पहले बहुत सी वस्तु कम दाम पर बेच डालता है और फिर खरीदार के यहां बेचना अस्वीकार कर अधिक दाम मांगता है। पर एक बार जो मूल्य तय हो गया है वह उससे अधिक नहीं ले सकता (४, २४।९)। म० ५। सू० २७ में सोने के सिक्के का भी वर्णन है। 'निष्क' शब्द इसके लिए प्रयोग में आया है।

विवाह पूर्ण युवावस्था में होते थे। विवाहोत्सव पर वर की अपेक्षा कन्या के घर अधिक धूमधाम होती थी। वर-कन्या वेदी पर अग्नि-प्रदक्षिणा करते थे और पत्थर पर पैर रखवाते थे। विवाह समाप्त होने पर अलंकृत वधू को लाल पुष्पों से शोभित श्वेत बैलों की गाड़ी में बैठाकर वर अपने घर ले जाता था। बहुत सी स्त्रियां वृद्धावस्था तक कुमारी रहती थीं। पुत्रहीन होना दुर्भाग्य समझा जाता था, दत्तक पुत्रों का भी विधान था। कन्याओं की अपेक्षा पुत्र का अधिक सम्मान होता था।

व्यभिचार, गर्हित पाप था। चोरी करना बड़ा दुष्कर्म था। प्रायः गाएँ चोरी

जाती थीं। चोरों को बाँधकर पीटा जाता था, जुआ खेलते थे; पर भद्र पुरुष उससे घृणा करते थे।

वस्त्र प्रायः ओढ़ने या लपेटने के होते थे। वे ऊन के होते थे, उन पर छींटें छपी होती थीं। जरीदार वस्त्र भी होते थे।

स्त्री-पुरुषों में केश रखने का प्रचार था। 'शतदती' और 'कंकतिका' नामक औषधियों से केश बढ़ते थे। बालों में सुगन्धित वस्तु लगायी जाती थी। वशिष्ठ लोग केशों का दाहिनी ओर जूड़ा बाँधते थे। स्त्रियाँ बाल खुले रखती थीं।' रुद्र' और 'पूषा' केश-विन्यास के प्रकार थे। उत्सवों में मालाएँ पहनी जाती थीं। पुरुष दाढ़ी रखते थे। दूध मुख्य खाद्य था। दूध में अन्न पकाकर खाते थे। कभी सोम-रस दूध में मिलाकर पीते थे। घृत बहुत प्रिय था। धान्य भूनकर और पीसकर पूए बनाये जाते थे। फल भी खाये जाते थे।

पकाने के पात्र लोहे और मिट्टी के तथा पीने के पात्र लकड़ी के होते थे। वे लोग शिकार करते थे। धनुष-बाण मुख्य था; हिरणों को वागुरा से, पक्षियों और सिट्टों को जाल से पकड़ते थे। सूअर को कुत्तों से पकड़ाते थे। लुहार, चर्मकार, चटाई वाले, वस्त्र बुनने वाले मौजूद थे।

रथ क्रीड़ा, द्यूत क्रीड़ा, नर्तन ये इनके विनोद के साधन थे। नर्तन में स्त्रियाँ शृंगार करके भाग लेती थीं (ऋ० १०।७६।६)। बाजों में दुन्दुभी, वाण वाद्य, वीणा आदि मौजूद थे।

भोजन के सम्बन्ध में ऋग्वेद में 'यव, 'धान्य' की बहुतायत है। यद्यपि आज-कल की संस्कृत में 'यव' जौ के अर्थ में आता है परन्तु उस समय जौ, गेहूँ बैलों के अर्थ में आता था। बल्कि अन्न मात्र के लिए 'यव' शब्द का प्रयोग होता था। उसी प्रकार 'धान्य' शब्द से चावल का अर्थ होता है पर वेद में यह शब्द भुने हुए जौ के अर्थ में आया है। व्रीहि (चावल) का ऋग्वेद में कहीं भी जिक्र नहीं है। कई प्रकार की रोटियों का जिक्र 'पक्ति,' 'पुरोदास', 'अपूय', 'करम्भ' आदि के रूप में (म०३। सू०५२ ऋ० १-२, म० ४ सू० १४ ऋ० ७ आदि में) पाया जाता है।

माँसाहार का प्रकरण भी वेद में दीख पड़ता है और इस बात का घोर सन्देह होता है कि क्या प्राचीनकाल के आर्य माँस खाते थे? उस काल में जैसा जीवन था, उसे देखते यह अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। ऋग्वेद के म० १ सू० ६१ ऋ० १२। म० २ सू० ७ ऋ० ५। म०५ सू० २९ ऋ० ७ और ८। म० ६ सू० १७ ऋ० ११। म० ६ सू० १६। ४७। म० ६ सू० २८ ऋ० ४। म १० सू० २७ ऋ० २। म १० सू० २८ ऋ० ३ आदि में इस प्रकार के प्रमाण मिलेंगे। म० १०। सू० ८९ ऋ० १४ में ऐसे स्थान का वर्णन है जहाँ पशुवध किया जाय और म० १०। सू० ९१ ऋ० १४ में अन्य पशुओं के वध की बात है। यद्यपि यह

सत्य है कि इन मंत्रों के अर्थ ऐसे भी किये जा सकते हैं जिनसे और ही अर्थ प्रकट हों। परन्तु मांस और पशुवध सम्बन्धी अर्थ इतने निकट और स्पष्ट हैं कि यदि हम वेदों का पक्षपात न करें, और पूर्वजों के मांसाहार से सर्वथा चिढ न जायें तो इन अर्थों से इन्कार करना सर्वथा कठिन है।

ऋग्वेद के पहले मंडल के १६२वें सूक्त में बेत से घोड़े की देह पर निशान करने और इसी निशान पर से उसके काटे जाने और अंग-अंग अलग किये जाने का उल्लेख है।

दूसरी विचारणीय बात सोमरस की है जो निस्सन्देह भंग के समान नशे की चीज थी और जिसे आर्य लोग पीते थे। ऋग्वेद के पूरे एक मण्डल में इसका जिक्र है। ऐसा प्रतीत होता है, इसी सोम के कारण ईरान के आर्यों और भारत के आर्यों में बड़ा झगड़ा हुआ। जन्दावस्ता में आर्यों की इस बुरी लत का कई जगह उल्लेख है। आर्यों और ईरानियों के दो पृथक गिरोह बनकर सुर और असुर के नाम से विख्यात होने का मूल कारण यही सोम-पान प्रतीत होता है। यह सोम पत्थर पर कुचल कर और ऊनी छन्ने में छानकर दूध मिलाकर पिया जाता था। यह बात ऋग्वेद के ६वें मण्डल में है।

वस्त्र बुनने का जिक्र म० २ सू० ३ ऋ० ६। म० २ सू० ३८ ऋ० ४ आदि में है। म० १० सू० २६ ऋ० ६ में ऊन बुनने और उसके रंग उड़ाने का देवता पूषण कहा गया है। म० १ सू० १६४ ऋ० ४४ में आग लगाकर जंगल साफ करने का वर्णन है। बढ़ई के काम का वर्णन म० ३ सू० ५३ ऋ० १६। म० ४ सू० २ ऋ० १४। म० ४ सू० १६ ऋ० २० में है। म० ३ सू० १ ऋ० ५ में लुहार के काम का और म० ६ सू० ३ ऋ० ४ में सुनारों के सोना गलाने का वर्णन मिलता है। म० १ सू० १४० ऋ० १०। म० २ सू० ३६ ऋ० ४। म० ४ सू० ५३ ऋ० २ में लड़ाई के हथियारों का वर्णन है। म० २ सू० ३४ ऋ० ३ में सिर के सुनहरे झिलमिल का तथा म० ४ सू० ३४ ऋ० ६ में कंधों या भुजाओं के कवच का वर्णन है। म० ५ सू० ५७ ऋ० २ में तलवार या बाण को बिजली की उपमा दी है। म० ६ सू० २७ ऋ० ६ में हजारों कवचधारी योद्धाओं का वर्णन है। म० ६ सू० ४७ ऋ० १० में तेज तलवारों और इसी सूक्त की २६वीं और २७वीं ऋचाओं में लड़ाई के रथों और दुन्दुभी बाजों का वर्णन है। म० ४ सू० २ ऋ० ८ में घोड़े के सुनहरी साजों का वर्णन है। म० ७ सू० ३ ऋ० ७। म० ७ सू० १२ ऋ० १४। म० ७ सू० ६५ ऋ० १ में लोहे के मजबूत किलों और म० ४ सू० ३० ऋ० २० में पत्थर के बड़े-बड़े नगरों का वर्णन मिलता है। म० २ सू० ४१ ऋ० ५। म० ५ सू० ६२ ऋ० ६ में हजारों खंभों वाले मकानों का भी वर्णन मिलता है।

उपर्युक्त तमाम वर्णन इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि ऋग्वेद के काल में

अर्थात् आर्यों के प्रारम्भिक जीवन में आर्यों ने कैसी उन्नति कर ली थी।

ऋग्वेद में दस्यु, दास तथा अनार्यों से भयानक युद्धों का वर्णन भी आया है। इन युद्धों में धनुषबाणों का अधिक उपयोग हुआ है। घोड़ों का भी उपयोग है जिसे दस्यु नहीं जानते थे और जिससे वे डरते थे। पाठकों के मनोरंजन के लिए हम ऐसे कुछ वर्णन उद्धृत करते हैं। ये सब ऋग्वेद के सूक्त हैं।

"इन्द्र का आवाहन किया है। इन्द्र के साथ शीघ्रगामी साथी हैं। उसने अपने वज्र से पृथ्वी पर रहने वाले दस्युओं और सिम्यों का नाश करके खेतों को अपने गोरे मित्रों (आर्यों) में बाँट दिया। वज्र का पति सूर्य का प्रकाश करता है और जल बरसाता है।" (ऋ० १-१००, १८)

"इन्द्र ने अपने वज्र और अपनी शक्ति से दस्युओं के देश का नाश कर दिया और अपनी इच्छा के अनुसार भ्रमण करने लगा। वज्री ! तू हम लोगों के सूक्तों पर ध्यान दे, दस्युओं पर अपने शस्त्र चला और आर्यों की शक्ति और यश बढ़ा।" (ऋ०१-१०३-३)

"कुयव दूसरे के धन का पता पाकर उसे अपने काम में लाता है। वह पानी में रहकर उसे खराब करता है। उसकी दोनों स्त्रियाँ जो नदी में स्नान करती हैं, शीका नदी में डूब मरें !"

"अयु पानी में एक गुप्त किले में रहता है। वह पानी की बाढ़ में आनन्द से रहता है। अंजसी, कुलिशी और वीर पत्नी नदियों के पानी उसकी रक्षा करते हैं।" (ऋ० १-१०४-और ४)

"इन्द्र लड़ाई में अपने आर्य पूजकों की रक्षा करता है। वह जो कि हजारों बार उनकी रक्षा करता है, सब लड़ाइयों में भी उनकी रक्षा करता है। जो लोग प्राणियों (आर्यों) के हित के लिए यज्ञ नहीं करते, उन्हें वह दमन करता है। शत्रुओं की काली चमड़ी को वह उधेड़ डालता है, उन्हें मार डालता है, और (जलाकर) राख कर डालता है। जो लोग हानी पहुँचाने वाले और निर्दयी हैं उन्हें वह जला डालता है।" (ऋ० १-३०८)

"हे शत्रुओं के नाश करने वाले ! इन सब लुटेरों के सिर को इकट्ठा करके उन्हें अपने चौड़े पैर से कुचल डाल ! तेरा पैर चौड़ा है।"

"हे इन्द्र ! इन लुटेरों का बल नष्ट कर उन्हें इस बड़े और घृणित खड्डे में फेंक दे।"

"हे इन्द्र ! तूने ऐसे-ऐसे पचास से भी तिगुने दलों का नाश किया है। लोग तेरे इस काम की प्रशंसा करते हैं। पर तेरी शक्ति के आगे यह कुछ भी बात नहीं है।"

"हे इन्द्र ! उन पिशाचों का नाश कर जो कि लाख रंग के हैं और भयानक हल्ला मचाते हैं। इन सब राक्षसों का नाश कर।" (१-१३३, २-५)

'हे अश्विनो ! उन लोगों का नाश करो जो कुत्तों की नाईं भयानक रीति से भूँक रहे हैं और हम लोगों का नाश करने के लिए आ रहे हैं। उन लोगों को मारो जो हम लोगों से लड़ने की इच्छा करते हैं। तुम उन लोगों के नाश करने का उपाय जानते हो। जो लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, उनके हरएक शब्द के बदले उन्हें धन मिले। सत्यदेव ! हम लोगों की प्रार्थना स्वीकार करो।"

दधिका घोड़ा—अमेरिका जीतने वाले स्पेन देशवासियों की जीत का कारण अधिक करके उनके घोड़े ही थे, जिनको अमेरिका के निवासी लोग काम में लाना नहीं जानते थे और इस कारण से उन्हें डर की दृष्टि से देखते थे। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन हिन्दू आर्यों के घोड़ों ने भी आर्यावर्त्त में आदिवासियों में ऐसा ही डर उत्पन्न किया था। अतएव नीचे लिखा हुआ वर्णन जो कि दधिका अर्थात् युद्ध के देवतुल्य घोड़े के सम्बन्ध में है और जो एक सूक्त का अनुवाद है, मनोरंजक होगा—"जिस तरह लोग किसी कपड़ा चोरी करने वाले चोर पर चिल्लाते और हल्ला करते हैं, उसी तरह शत्रु लोग दधिका को देखकर चिल्लाते हैं। जिस तरह झपटते हुए बाज को देख कर चिड़िया हल्ला करती हैं, उसी तरह शत्रु लोग भोजन और पशु लूटने की खोज में फिरते हुए दधिका को देखकर हल्ला करते हैं।"

"शत्रु लोग दधिका से डरते हैं जो कि बिजली की नाईं दीप्तिमान् और नाश करने वाला है। जिस समय वह अपने चारों ओर के हजारों आदमियों को मार भगाता है उस समय वह जोश में आ जाता है और अधिकार के बाहर हो जाता है।" (४-३८-५ और ८)

ऋग्वेद के अनेक वाक्यों से जाना जाता है कि कुत्स एक प्रतापी, योद्धा और काले आदि निवासियों का एक प्रबल नाश करने वाला था। म० ४ सू० १६ में लिखा है कि इन्द्र ने कुत्स को धन देने के लिए मायावी तथा पापी दस्यु का नाश किया, उसने कुत्स की सहायता की और आप दस्यु को मारने के लिए उसके घर आया और उसने लड़ाई में पचास हजार 'काले शत्रुओं' को मारा। म ४ सू० २८ ऋ० ४ से पता चलता है कि इन्द्र ने दस्युओं को गुणहीन तथा सब मनुष्यों का घृणापात्र बनाया है। म० ४ सू० ३ ऋ० १५ से जाना जाता है कि इन्द्र ने एक हजार पाँच सौ दासों का नाश किया।

म० ५ सू० ७ ऋ० ३, म० ६ सू० १८ ऋ० ३ और म० ६ सू० २५ ऋ० २ में दस्यु लोगों तथा दासों के दमन करने और नाश करने के इसी तरह के वर्णन हैं। म० ६ सू० ४१ ऋ० २० में दस्यु लोगों के रहने की एक अज्ञान जगह का विचित्र वर्णन है जो अनुवाद करने योग्य है—

"हे देवताओ ! हम लोग यात्रा करते हुए अपना रास्ता भूलकर ऐसी जगह आ गये हैं जहाँ पशु नहीं चरते। यह बड़ा स्थान केवल दस्युओं को ही

आश्रय देता है। हे बृहस्पति ! हम लोगों को अपने पशुओं की खोज में सहायता दो। हे इन्द्र ! मार्ग भूले हुए अपने पूजने वालों को ठीक रास्ता दिखला।"

यह जान पड़ता है कि आर्य लोग आदिवासी असभ्यों की चिग्घाड़ और हल्ले का वर्णन बहुत ही निन्दापूर्वक करते थे। ये सभ्य विजयी लोग यह बात कठिनता से विचार सकते थे कि ऐसी चिग्घाड़ भी भाषा हो सकती है। अतएव उन्होंने इन असभ्यों को कहीं-कहीं भाषा-हीन लिखा है।

(मं० ५ सू० २९ ऋ० १० आदि)

ऊपर दो आदिवासी लुटेरों अर्थात् कुयव और अयु का हाल दिया जा चुका है जो कि नदियों से घिरे हुए किलों में रहते थे, और गाँवों में रहने वाले आर्यों को दुख दिया करते थे। कई जगह एक तीसरे आदिवासी प्रबल मुखिया का भी वर्णन मिलता है, जो कि कदाचित काला होने के कारण कृष्ण कहा गया है।

"वह तेज कृष्ण, अंशुमती के किनारे १० हजार सेना के साथ रहता था। इन्द्र अपने ज्ञान से इस चिल्लानेवाले सरदार की बात जान गया। उसने मनुष्यों (आर्यों) के हित के लिए इस लुटेरी सेना का नाश कर डाला।"

"इन्द्र ने कहा मैंने तेजकृष्ण को देखा है। जिस तरह सूर्य बादलों में छिपा रहता है उसी तरह वह अंशुमती के पासवाले गुप्त स्थान में छिपा है। हे मरुत्स ! मेरा मनोरथ है कि तुम उससे लड़कर उसका नाश कर डालो।"

"तब तेजकृष्ण अंशुमति के किनारे पर चमकता हुआ दिखायी पड़ा। इन्द्र ने बृहस्पति को अपनी सहायता के लिए साथ लेकर उस तेज का और बिना देवता की सेना का नाश कर दिया।" (८, ९६, १३-१५)

दस्यु लोग केवल चिल्लाने वाले तथा बिना भाषा के ही नहीं लिखे गये हैं, किन्तु कई जगह पर तो वे मुश्किल से मनुष्यों की गिनती में माने गये हैं। एक जगह लिखा है—

"हम लोग चारों ओर दस्यु जातियों से घिरे हुए हैं। वे यज्ञ नहीं करते, वे किसी चीज में विश्वास नहीं करते, उनकी रीति-व्यवहार भिन्न है, वे मनुष्य नहीं हैं। हे शत्रुओं के नाशकर्ता उन्हें मार ! दस्यु जाति का नाश कर ! (१०-२२-८)

म० १० सू० ४९ में इन्द्र कहता है कि—"मैंने दस्यु जाति को 'आर्य' के नाम से रहित रखा है (ऋ० ३) दस्यु जाति की नवीन बस्तियों का और बृहद्रथ का नाश किया है (ऋ० ६) और दासों को काटकर दो टुकड़े कर डालता हूँ, उन लोगों ने इसी गति को प्राप्त होने के लिए जन्म लिया है।" (ऋ० ७)

सुदास एक आर्य राजा था तथा विजयी था। उसके विषय में प्रायः यह वर्णन आया है कि अनेक आर्य जातियाँ और राजा लोग मिलकर उससे लड़े, पर उसने उन सभी को पराजित किया। आर्य जातियों के बीच इन विनाशी युद्धों के, तथा जो जातियाँ सुदास से लड़ी थीं उनके वर्णन ऋग्वेद में इतिहास की दृष्टि से बड़े

मूल्यवान हैं।

"धूर्त शत्रुओं ने नाश करने का उपाय सोचा और अदीन नदी का बांध तोड डाला। परन्तु सुदास अपनी शक्ति से पृथ्वी पर स्थित रहा और चयमान का पुत्र मरा।" (८)

"क्योंकि नदी का पानी अपने पुराने मार्ग से ही बहता रहा, उसने नया मार्ग नहीं किया और सुदास का घोडा समस्त देश में घूम आया। इन्द्र ने लडाके और बकवादी बैरियों और उनके बच्चों को सुदास के अधीन कर दिया।" (९)

सुदास के युद्ध—सुदास ने दोनों प्रदेशों के २१ मनुष्यों को मारकर यश प्राप्त किया। जिस तरह यज्ञ के घर में युवा पुरोहित कुश काटता है उसी तरह सुदास ने अपने शत्रुओं को काट डाला। वीर इन्द्र ने उसकी सहायता के लिए मरुत्स को भेजा। (११)

"अनु और द्रुह्यु के छासठ हजार छ सौ छासठ योद्धा जिन्होंने पशुओं को लेना चाहा था और सुदास के शत्रु थे सब मार डाले गये। ये सब कार्य इन्द्र का प्रताप प्रकट करते हैं।" (१४)

"इन्द्र ने ही बेचारे सुदास को इन सब कामों के करने योग्य किया। इन्द्र ने बकरे को इस योग्य बनाया कि वह शक्तिशाली शेर को मारे। इन्द्र ने बलिदड को एक सुई से गिरा दिया। उसने सब सम्पत्ति सुदास को दी।" (७, १८)

"ऋषि तृत्सु या वशिष्ट, जिसने सुदास के इस यश का वर्णन किया है, वह अपनी चिरस्थायिनी ऋचाओं के लिए विना पुरस्कार पाये नहीं रहा। क्योंकि २२ और २३वीं ऋचाओं में वह कृतज्ञता के साथ स्वीकार करता है कि वीर सुदास ने उसे दो सौ गाय, दो सौ रथ और सोने के गहनों से सजे हुए चार घोडे दिये। नीचे सुदास के सम्बन्ध का एक दूसरा सूक्त उद्धृत किया जाता है—

(१) "हे इन्द्र और वरुण! तुम्हारे पूजनेवाले तुम्हारे ऊपर भरोसा करके पशु जीतने के अभिप्राय से अपने अस्त्र शस्त्र लेकर पूरब की ओर गये हैं। हे इन्द्र और वरुण, अपने शत्रुओं को चाहे वे दस्यु हो या आर्य, नाश करो और सुदास को अपनी रक्षा से बचाओ।"

(२) 'जहां पर लोग, झंडा उठाकर लडा करते हैं, जहां हम लोगों की सहायता करनेवाली कोई वस्तु नहीं दिखायी देती, जहां लोग आकाश की ओर देखकर भय से कांपते हैं, वहां पर हे इन्द्र और वरुण! हम लोगों की सहायता करो और हमें धीरज दो।"

(३) 'हे इन्द्र और वरुण! पृथ्वी के छोर खो गये से जान पडते हैं और हल्ला आकाश तक पहुंचता है। शत्रुओं की सेना निकट आ रही है। हे इन्द्र और वरुण! तुम सदा प्रार्थनाओं को सुनते ही हमारे निकट आकर रक्षा करो।"

(४) "हे इन्द्र और वरुण! तुमने अभी तक अपराजित भेद को मारकर

सुदास को बचाया। तुमने तृत्सुओं की प्रार्थनाओं को सुना। उनकी दीन प्रार्थना लड़ाई के समय फलीभूत हुई।"

(५) "हे इन्द्र और वरुण! शत्रुओं के हथियार हम पर चारों ओर से आक्रमण करते हैं, शत्रु लोग लूटों में हम पर आक्रमण करते हैं। तुम दोनों प्रकार की सम्पत्ति के स्वामी हो। युद्ध के दिन हमारी रक्षा करो।"

(६) "युद्ध के समय दोनों दल सम्पत्ति के लिए इन्द्र और वरुण की प्रार्थना करते थे। पर इस युद्ध में तुमने तृत्सुओं के सहित सुदास की रक्षा की जिन पर दस राजाओं ने आक्रमण किया था।"

(७) "हे इन्द्र और वरुण! वे दस राजे जो कि यज्ञ नहीं करते थे मिलकर भी सुदास को हटाने में समर्थ नहीं हुए।"

(८) "हे इन्द्र और वरुण! जिस समय सुदास दस सरदारों से घिरा हुआ था और जिस समय सफेद वस्त्र धारण किये हुए, जटा जूट धारी तृत्सु लोगों ने नैवेद्य और सूक्तों से तुम्हारी पूजा की थी तो तुमने सुदास को शक्ति दी थी।" (७, ८३)

(१) "जब युद्ध का समय निकट आ पहुँचता है और योद्धा अपना कवच पहनकर चलता है तो वह बादल के समान देख पड़ता है। योद्धा तेरा शरीर न छिदे, तू जय लाभ कर, तेरे शस्त्र तेरी रक्षा करें।"

(२) "हम लोग धनुष से पशु जीत लेंगे, हम लोग धनुष से जय प्राप्त करेंगे, हम लोग धनुष से भयानक और घमंडी शत्रुओं की अभिलाषा को नष्ट करेंगे। हम लोग धनुष से अपनी जीत चारों ओर फैलावेंगे।"

(३) "जब धनुष की प्रत्यंचा खींची जाती है तो वह युद्ध में आगे बढ़ते हुए तीर चलाने वाले के कान तक पहुँचती है। उसके कान में धीरज के शब्द कहती है और वह तीर को इस तरह गले लगाती है जैसे कोई प्यार करने वाली स्त्री अपने पति को गले लगाती है।"

(४) "तरकस बहुत से तीरों के पिता के समान है। बहुत से तीर उसके बच्चों की नाँई हैं। वह आवाज करता हुआ योद्धा की पीठ पर लटकता है। लड़ाई में उसे तीर देता है और शत्रु को जीतता है।"

(६) "चतुर सारथी अपने रथ पर खड़ा होकर जिधर चाहता है उधर अपने घोड़ों को हांकता है। रास घोड़ों को पीछे से रोके रहती है. उनका यश गाओ।"

(७) "घोड़े जोर से हिनहिनाते हुए अपने खुरों से धूल उड़ाते हैं और रथों को लेकर क्षेत्र पर जा ते हैं। वे हटते नहीं वरन् लुटेरे शत्रुओं को अपने पैरों के नीचे कुचल डालते हैं।"

(११) "तीर में पर लगे हैं। उसकी नोक हरिन के सींग की है। अच्छी

तरह खींची जाकर तथा तांत से छोडी जाकर वह शत्रु पर गिरती है। जहाँ पर मनुष्य इकट्ठे या जुदे जुदे खडे रहते हैं वहाँ पर तीर लाभ उठाती है।"

(१४) "चमडे का बन्धन कलाई को धनुष की तांत की रगड से बचाता है और कलाई के चारो ओर सांप की नाईं लिपटा रहता है। वह अपना काम जानता है, गुणकारी है और हर तरह पर योद्धा की रक्षा करता है।"

(१५) "हम उस बाण की प्रशंसा करते हैं जो कि जहर से बुझा हुआ है, जिसकी नोक लोहे की है और जो पर्जन्य की है।"

सरस्वती नदी

ऋग्वेद ही से यह बात भी प्रमाणित होती है कि आर्यों ने लगातार युद्ध करके सिन्धु से सरस्वती तक का प्रदेश और पर्वतो से समुद्र तक का देश जीत लिया था। ऋग्वेद मे सिन्धु और उसकी पांचो सहायक नदियो का उल्लेख १०वें मडल के ७५वें सूक्त मे है। इस सूक्त मे तीन बडे-बडे प्रवाहो का वर्णन है। एक वह जो उत्तर-पश्चिम से बहकर सिन्धु मे मिलता है। दूसरा वह जो उत्तर पूर्व से उसमे मिलकर दूरस्थ गगा-यमुना मे मिल जाता है। इस प्रकार एक भौगोलिक सीमा बन जाती है जिसके उत्तर मे हिमालय, पश्चिम मे सिन्धु नदी, और सुलेमान पहाड, दक्षिण मे सिन्धु नदी और समुद्र और पूर्व मे गगा-यमुना है। पंजाब की पांचो नदियो और सिन्धु तथा सरस्वती सबको मिलाकर सप्त नदी नाम दिया गया है। सप्त नदी की माता सिन्धु है। (म० ७ सू० ३६ ऋ०६)

जिस समय गगा और यमुना का भरत खड मे प्रवाह नही हुआ था उस समय सरस्वती नदी ही भारतवर्ष की सर्वप्रधान नदी थी। इसका प्रवाह अत्यन्त विस्तीर्ण और प्रबल था। ऋग्वेद के षष्ठ और सप्तम मडल[1] मे सरस्वती का वर्णन है। उस वर्णन से पता लगता है कि सरस्वती नदी जो आज कालचक्र से सूख गयी है और जिसके विषय मे हिन्दू जनता का विश्वास है कि वह त्रिवेणी संगम या प्रयाग में गगा यमुना मे गुप्त रूप से मिली है, हिमालय से निकली थी और समुद्र तक उसका अत्यन्त विस्तीर्ण प्रवाह था। इन वेद-मन्त्रो मे सरस्वती नदी[2] को शत्रुओ के आक्रमण से बचाने को दुर्ग भूमि सी सुरक्षित, और सुदृढ

---

१ प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः॥
एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय। (ऋ० म० ७ सू० ९५)

२ आ यत् साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः॥
(ऋ० म० ६। अ० ३। सू० २७)

"दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि"

लोहे के फाटक के समान कहा गया है। वेगवती होने के विपय में कहा गया है कि 'रथ्येवयाति' मानो रथ पर चढ़ी जाती है। तथा इस सरस्वती ने अन्य नदियों को अपने महत्व से परास्त कर दिया है, ऐसा स्पष्ट वर्णन है।

पुराणों से पता लगता है कि हिमालय के प्लक्ष प्रस्नवण से सरवस्ती निकली; और पुण्य तीर्थ पृथूदक कुरुक्षेत्र के ब्रह्मावर्त प्रदेश में होती और क्रमश: पश्चिम दक्षिण झुकती हुई द्वारिका के समीप समुद्र से मिली है।

इस सरस्वती नदी के तीर पर प्रजापति ब्रह्मा से लेकर अनेक देवताओं ऋपियों और मुनियों ने बड़े-बड़े यज्ञ किये थे और सप्त-ऋषियों से लेकर अनेक प्रमुख ऋपिवरों के आश्रम सरस्वती के तीर पर थे। इन सबके ब्रह्मावर्त नामक प्रदेश में जो कुरुक्षेत्र के आसपास है, अधिक आश्रम थे। मनुस्मृति में लिखा है—

"सरस्वती दृपद्वत्योर्देव नद्योर्यदन्तरम्।
तन्देव निर्मितं देशं ब्रह्मावर्तविदुर्वुधा:"॥

अर्थात्--सरस्वती और दृषद्वति इन दोनों नदियों के वीच का देश ब्रह्मावर्त कहाता है।

इतिहास की छोटी-से-छोटी वात पर भी गहरा विचार करना चाहिए।

तैत्तिरीय, शतपथ व्राह्मण में भी इस क्षेत्र की प्रशंसा की गयी है। महाभारत के शल्य पर्व में, गदायुद्ध पर्व में, वलदेव तीर्थ यात्राध्याय और सारस्वतोपाख्यान के कई स्थलों में सरस्वती और कुरुक्षेत्र का वर्णन आया है। वलदेव जी जव तीर्थ यात्रा को निकले तव द्वारका से चलकर सरस्वती के निवास-स्थान प्लक्ष प्रस्नवण पर्वत पर चढ़ गये थे। वहाँ सरस्वती की शोभा देखकर उन्होंने उसका वर्णन इस प्रकार उसका किया है—

सरवस्ती वास समा कुतो रति:,
सरस्वती वास समा कुतो गुणा:।
सरस्वती प्राप्य दिवंगता जना:
सदा स्मरिष्यन्ति नदीं सरस्वतीम्।
सरस्वती सर्व नदीपु पुण्या,
सरस्वती लोक सुखावहा सदा।
सरस्वती प्राप्य जना: सुदुष्कृतं,
सदा न शोचन्ति परत्र चेह च।

तीर्थपुण्यतमं राजन् पावनं लोक विश्रुतम्।
यत्र सारस्वतो यात: सोऽङ्गिरास्तपसोनिधि:।
तस्मिस्तीर्थे नर: स्नात्वा वाजिमेधं फलं लभेत्।
सरस्वती गतिं चैत्र लभते नाऽत्र संशय:॥

उक्त श्लोकों में 'सरस्वती प्राप्यदिवंगता:' और 'सरस्वती गति चैत्र

लभते' इत्यादि पदों से निश्चय होता है कि, बलदेवजी के समय से पूर्व ही सरस्वती सूख गयी थी। इसकी पुष्टि में उसी तीर्थयात्रा प्रकरण में और भी प्रमाण मिलते हैं—

'ततो विनशनं राजन् जगमाथ हलायुधः।
शूद्राभीरान् प्रति द्वेषाद्यत्र नष्टा सरस्वती॥
यस्मात्सा भरतश्रेष्ठ द्वेषान्नष्टा सरस्वती।
तस्मात्तदृषयो नित्यं प्राहुर्विनशनेतिहि'॥

इससे पता लगता है कि शूद्र और अहीर जाति के लोगों के किसी प्रतिबन्ध के कारण जिस प्रदेश में सरस्वती नष्ट हुई उसका नाम 'विनशन' पड़ा। यह विनशन प्रदेश वर्तमान मेवाड़ प्रान्त के पश्चिम भाग का मरु प्रदेश प्रतीत होता है।

यद्यपि सरस्वती नदी महाभारत के काल में नष्ट हो चुकी थी, परन्तु नैमिषारण्य तीर्थ में तथा पुष्कर, गया, उत्तर कोशल, ऋषभद्वीप, गंगाद्वार, कुरुक्षेत्र, हिमालय आदि स्थानों पर सरस्वती के प्रवाहों का वर्णन मिलता है।

इन वर्णनों से पता लगता है कि, सरस्वती की वह विशाल धारा सूख गयी थी, परन्तु फिर भी कहीं-कहीं उसकी छोटी धाराएँ महाभारत के काल तक थीं। ऐसी सात धाराएँ और सुरेणु नाम की धारा ऋषभद्वीप में तथा एक गंगाद्वार में ऐसी कुल नौ धाराओं का जिक्र मिलता है जिनके पृथक्-पृथक् नाम रख लिए गये थे और जो तीर्थ की तरह प्रतिष्ठित थीं।[1]

अब एक प्रश्न हल करने को यह रह गया कि, वेदों में जिस सरस्वती की मुख्य धारा का वर्णन है वह तो पश्चिमाभिमुखी प्रवाहित होकर पश्चिम समुद्र में द्वारका के निकट गिरी थी। तब प्रयाग के त्रिवेणी संगम पर सरस्वती की प्रसिद्धि होने का कारण क्या? क्योंकि सरस्वती की गति पूर्व में प्रयाग तक तो नहीं पायी जाती।

ऐसा मालूम होता है कि महानदी सरस्वती की मुख्य धारा प्लक्ष प्रस्रवण से निकलकर कुरुक्षेत्र के स्थाणु तीर्थ तक वही है जो आज तक है। वहाँ से वह

१ देवा वै सत्र मासत, ऋद्धि परिमित यशस्कामा। तेऽब्रुवन् यन्न, प्रथम यश ऋच्छात्, सर्वेषां नस्तत्सहासदिति। तेषां कुरुक्षेत्र वेदिरासीत् तस्यै खाण्डवो दक्षिणार्द्ध आसीत तुर्घ्नमुत्तरार्द्ध. परीणाज्जघनार्द्ध मरु उत्कर तेषां मख वैष्णव यश आर्च्छत्। तै०।
कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनं। कुरुक्षेत्र वै देव यजनम्। श० प०।
सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला च मनोरमा। सरस्वती चौघवती सुरेणुर्विमलोदका। पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै। सुप्रभा नाम राजेन्द्र नाम्ना तत्र सरस्वती। आजगाम महाभाग तत्र पुण्य सरस्वती। नैमिषे काञ्चनाक्षी
आहूता सरितां श्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती। विशालान्तां गयेष्वाहु ऋषय संशित व्रता। उत्तरे कोशला भागे पुण्ये राजन् महात्मन। उद्दालकेन यजता पूर्वं ध्याता सरस्वती। आजगाम् सरित् श्रेष्ठा तद्देश ऋषिकारणात्। मनोरमेति विख्याता ...

नदी उदयपुर के दक्षिण पश्चिम सिद्धपुर, पटना, मातृ गया के पास होती हुई कच्छ के निकट द्वारका वाले पश्चिम समुद्र की खाड़ी में जा मिली है। उसकी वह शाखा जो सुरेणु नाम से प्रख्यात है और जहाँ दक्ष ने यज्ञ[1] किया था, प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम पर मिल गयी होगी।

ऋग्वेद के मन्त्रों में जो 'सप्तसिन्धु', 'सिन्धुमाता' और 'सिन्धुरन्या' शब्द आया है उससे ऐसा भी मालूम होता है कि पंजाब का प्रसिद्ध सिन्धुनद (अटक) और पंजाब की अन्य[2] पाँच नदियाँ भी महानदी सरस्वती में मिल गयी थीं। यजुर्वेद में भी एक मंत्र[3] मिलता है। पंजाब का प्राचीन नाम सारस्वत प्रसिद्ध भी है।

ऋग्वेद में जाति और वर्ण के विषय में बहुत कुछ है। वर्तमान जाति या वर्ण-व्यवस्था ऋग्वेद काल में न थी। प्रत्येक घर का स्वामी स्वयं अपना पुरोहित होता था और वह अपने परिजनों के साथ वेद-मन्त्रों द्वारा अग्नि स्थापन और हवन करता था। अग्नि सुलगाना उन दिनों में वास्तव में एक बड़ी भारी प्रसन्नता की एवं महत्वपूर्ण और असाधारण बात रही होगी। वस्त्रों की कमी, जंगल का वास, आग्नेय वस्तुओं का अभाव इन सब कारणों से यह बात समझी जा सकती है।

स्त्रियाँ सब कामों में भाग लेती थीं। वे स्त्रियाँ जो स्वयं ऋषि या मन्त्र-दृष्टा थीं, सूक्तों की व्याख्या करतीं और होम करतीं थीं। स्त्रियों के लिए कोई बुरे बन्धन न थे। न पर्दा ही था। विदुषी स्त्री विश्ववारा जो कई सूक्तों की

---

१. 'सुरेणु ऋषभे द्वीपे पुण्ये राजर्षि सेवते।
कुरोश्च यजमानस्य कुरुक्षेत्रे महात्मनः॥
आजगाम महाभाग सरित् श्रेष्ठा सरस्वती।
ओघवन्नपि राजेन्द्र वशिष्ठेन महात्मना॥
समाहूता कुरुक्षेत्रे दिव्य तोया सरस्वती।
दक्षेण यजता चापि गंगा द्वारे सरस्वती॥
सुरेणुरिति विख्याता प्रसृता शीघ्रगामिनी।
विमलोदा भगवती ब्राह्मण यजता पुनः॥
समहूता ययौ तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ।
एकी भूतास्ततस्तास्तु तस्मिन्स्तीर्थे समागताः॥
सप्त सारस्वतं तीर्थंस्ततस्यत्प्रथितं भुवि।
इति सप्त सरस्वत्योः नामतः हरिकीर्तिताः॥
सप्त सारस्वतं चैव तीर्थम्पुण्यं तथा स्मृतम्। (महाभारत)

२. पंच नद्यः सरस्वतीमपि यान्ति सस्रोतसः

३. सरस्वती तु पंचधासोदेशेऽभवत्सरित्। (य० अ० ३४॥ कं० ११)
महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयतिकेतुनो। (ऋ० मं० १।३ सू०)

ऋषि थी, का परिचय म० ५ सू० २८ अ० ३ से मिलता है। आजकल के वज्र के समान नियमों से यदि उन सरल और उदार नियमों का मिलान किया जाये तो इस सभ्यता के विकास पर धिक्कार देने की ही इच्छा होती है। कुछ कुमारियों का भी जिक्र हम पाते हैं जिन्हें पिता की सम्पत्ति में भाग मिला था (म० २ सू० १७ मू० ७) कुछ प्रात काल आकर गृह कर्म में लगने वाली प्रात-काल के समान पवित्र स्त्रियों का भी जिक्र म० सू० १२४ ऋ० ४ में मिलता है। कन्या पति को चुनती थी, इसके प्रबल प्रमाण जहाँ-तहाँ मिलते हैं। विवाह की रीतियाँ बहुत उत्कृष्ट थी। 'कन्यादान' का अधिकार पिता को न था। आगे हम भिन्न भिन्न विषयों पर ऋग्वेद की सम्मतियों का उल्लेख करेंगे।

ऋग्वेद के देवताओं में सर्वशक्तिमान व्यापक परमेश्वर कोई सर्वोपरि देवता माना गया है। परन्तु ऋग्वेद के ऋषिगण प्रकृति से प्रकृति के देवताओं की ओर बढे हैं। उन्होंने वह आकाश जो व्यापक और प्रकाशित है, वह सूर्य जो प्रकाश और उष्णता प्रदान करता है, वह वायु जो जीवन दाता है, वे प्रचण्ड जल जो भूमि को उपजाऊ बनाने वाली कृषि को भाती हैं, को देवताओं की तरह माना। इनम स द्यु' लगभग यूनानियों का, 'जीउस' रोमन्स का, 'जुपिटर' का प्रथम अक्षर (जु), सक्सन लोगों का 'टिङ' और जर्मनो का 'जिओ' है।

यद्यपि ग्रीस और रोम के देवताओं में बहुत दिनों तक जीउस और जुपीतर प्रधान रहे, किन्तु वैदिक देवताओं में 'इन्द्र' ने विशेष स्थान ग्रहण किया। क्योंकि भारत म नदियों की वार्षिक बाढ, पृथ्वी की उपज, फसल की उत्तमता चमकीले आकाश पर निर्भर नही मेघ पर निर्भर थी।

'वरुण' ही ग्रीक लोगों का 'उरेनस' है। यह भी आकाश के ही अर्थों में हैं; परन्तु 'द्यु' के विपरीत। 'द्यु' प्रकाशमान दिन का आकाश, और वरुण अन्धकार-युक्त रात्री का आकाश। 'मित्र' शब्द भी दिन के चमकीले आकाश के लिए आया है। जिन्दावस्ता का मिथू' शब्द भी यही है। वैदिक विद्वान मित्र और वरुण को दिन और रात बताते हैं। ईरानी लोग 'मिथू' को सूर्य कहते हैं और 'वरुण' को अन्धकार। जर्मनी के प्रख्यात विद्वान डा० राथ का मत है कि आर्यों और ईरानियों के जुदा होने क प्रथम वरुण' दानो ही का पवित्र देवता था।

वेद में घने काले बादलों को 'वृत्र' नाम दिया गया है। वे बादल जो कभी नहीं बरसते वृत्रासुर हैं। यह पौराणिक कथा है कि यह 'वृत्र' जल को रोक लेता है जब तक कि इन्द्र, वज्र प्रहार न करे। इस प्राकृत घटना पर ऋग्वेद मे सुन्दर वर्णन है। इस युद्ध म वृत्र (घने काले बादलों) पर इन्द्र जो वास्तव मे जल पूर्ण मेघ है जब वज्र प्रहार करता है (टकराकर बिजली चमकाता है) तब जल स नद नदी परिपूर्ण हो जाती है। इस युद्ध मे मरुत देव (आँधी) इन्द्र की बड़ी सहायता करते हैं और खूब गरजते है।

ईरानी पुस्तकों में यद्यपि 'इन्द्र' नाम नहीं है, किन्तु 'वेरे थ्रघ्न' नाम है जो वास्तव में 'वृत्रघ्न' का अपभ्रंश है। जन्दावस्ता पुस्तक में 'अहि' के 'थ्र येतन' द्वारा मारे जाने का उल्लेख है। 'अहि' तो उपर्युक्त 'वृत्र' का ही नाम है और थ्र येतन, इन्द्र का।

ऋग्वेद के सूक्तों में 'वरुण' और 'इन्द्र' इन दो महान देवतायों का वर्णन एक-दूसरे से विल्कुल भिन्न है। इन्द्र के सूक्तों में वल और शक्ति की विशेषता पायी जाती है और वरुण के सूक्तों में सदाचार के भावों की विशेषता है। इन्द्र-एक प्रवल देव है जो सोम पान करता है, योद्धा है, मरुतों की सहायता से अना वृष्टि से युद्ध करता है, असुरों के युद्ध में आर्यो के दल का नेता है और नदियों के तट की भूमि को खोदने में सहायक है।

पूपण गोपों का सूर्य है। विष्णु ने आजकल के हिन्दुओं में बड़ा उच्च स्थान प्राप्त किया है। परन्तु वैदिक देवताओं में वह एक साधारण देवता है और उसका पद इन्द्र, वरुण, सवितृ तथा अग्नि से कहीं नीचा है। इस विष्णु रूप सूर्य के लिए वेद कहता है कि यह तीन पद में—अर्थात् उगते हुए शिरो विन्दु पर तथा अस्त होते हुए आकाश को पार करता है। इसी को पुराणों ने प्रख्यात वालि-छल का रूप दिया है।

'अग्नि' सभी प्राचीन जातियों में आदरणीय वस्तु थी। अग्नि को 'यविष्ठ' अर्थात् छोटा देवता कहा गया है। क्योंकि, वह वारम्वार रगड़कर निकाली जाती थी। इसलिए उसे 'प्रमन्थ' भी कहा गया है। यह वात आश्चर्य की नहीं है कि अन्य प्राचीन जातियाँ भी अग्नि की प्रतिष्ठा करती थीं। लैटिन में अग्नि के देवता को 'इग्निस' (Ignis) और सालवोनियन लोगों में ओग्नि (Ogni) कहते थे। इसी प्रकार 'प्रमन्थ' का नाम 'प्रोमेथिअस' 'भरण्यु' का 'फोरोनस' और 'उल्का' का 'वल् के नस' के रूप में पाते हैं।

परन्तु ऋग्वेद की 'अग्नि' पृथ्वी की साधारण अग्नि नहीं, यह वह अग्नि है जो विजली और सूर्य में थी, और उसका निवास अदृष्ट में था। भृगु ने उसे जाना, मातारिश्वन उसे नीचे लाये और अथर्वन तथा अंगिरा ने उसे पृथ्वी पर मनुष्यों के लिए स्थापित किया। इन प्रवचनों में अग्नि की प्रारम्भिक खोज का महत्व मिलता है।

वेद में वायु ने कम महत्व प्राप्त किया है। वायु के सूक्त वहुत थोड़े हैं। सिर्फ आँधी के देवता 'मरुत्स' को वहुधा स्मरण किया गया है। वे भयानक थे; परन्तु उपकारी थे, क्योंकि अपनी माता पृश्नि (वादलों) के स्तन से वहुत-सी वृष्टि दुह लेते थे।

रुद्र भयानक देवता है और वह मरुत्स का पिता है। यास्क और सायण उसे 'अग्नि' का रूप वताते हैं। डा० राथ का अभिप्राय इससे भयानक गर्जने वाले

आंधी और तूफान से है। यह भी देवता विष्णु की तरह वेद मे छोटा-सा ही देवता है। उसके सम्बन्ध मे बहुत कम सूक्त हैं। पौराणिक काल मे वह बडा महान देवता हो गया है। उपनिषदो मे काली, कराली आदि नाम उन भयानक बिजलियों के हैं जो रुद्र (तूफान) के साथ गर्जन-तर्जन से आती हैं। श्वेत यजुर्वेद मे 'अम्बिका' भी उसमे गिनी गयी है, परन्तु पुराणो मे ये सब रुद्र की स्त्रियां बन गयी हैं, परन्तु वेद मे एक भी किसी देवी का वही नाम नही आया है।

अब 'यम' की बात लीजिए। यह भी पुराणो का प्रबल देवता हो गया है। प्रयोग मे वह सूर्य का पुत्र कहा गया है—परन्तु ऋग्वेद मे यम की कल्पना अस्त होते हुए सूर्य से की गयी है। सूर्य उसी तरह अस्त होकर लीन हो जाता है जैसे मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है। ऋग्वेद के अनुसार विवस्वत अर्थात् आकाश यम का पिता है। सरन्यु अर्थात् प्रभात उसकी माता है और यमी उसकी बहिन है।

इस घटना पर ऋग्वेद मे एक अद्भुत वर्णन है। यम की बहिन यमी, यम से पति की तरह आलिंगन किया चाहती है। परन्तु यम इसे स्वीकार नही करता। यम यमी वास्तव म दिन-रात हैं। यद्यपि दिन-रात सदा एक-दूसरे का पीछा किये रहते हैं परन्तु उनका समागम तो कभी हो ही नही सकता।

ऋग्वेद मे यह देवता मृतकों का राजा है। यहां तक तो उसका पौराणिक चरित्र मिलता है, परन्तु इसके आगे समानता का लोप हो जाता है। वैदिक यम उस सुखी लोक का परोपकारी देवता है जहां पुण्यात्मा मृत्यु के बाद रहकर सुख भोगते है और जिनको पितरो के नाम से सम्मानित किया जाता है, किन्तु पौराणिकों का यम भयानक दण्ड देने वाला, बडा निष्ठुर, पापियो का कोतवाल है। वेद के सूक्त सुनिये —

(१) विवस्वत के पुत्र यम का सम्मान करो, सब लोग उसी के पास जाते हैं। पुण्यवानो को वह सुख के देश मे ले जाता है।

(२) यम ने हम प्रथम मार्ग दिखाया, वह कभी नष्ट न होगा' सब प्राणी उसी मार्ग से जावेंगे, जिनस हमारे पितर गये हैं। (१०।१४)

'सोम' एक नशीली वनस्पति है। किन्तु देखते है कि उसकी भी देवता की तरह स्तुति की गयी है।

जिन विवस्वत अर्थात् आकाश और सरण्यु अर्थात् प्रभात से यम यमी दो सन्तान हुए' उन्ही से 'अश्विन' यमज भी हुए। ये अश्विन भी यम यमी की भांति प्रभात और सध्या से उत्पन्न हुए हैं। ये अश्विन ऋग्वेद मे बडे भारी चिकित्सक माने गये है। उनकी दयापूर्ण चिकित्साओ का कई सूक्तो म वर्णन है। ये दोनो 'अश्विन' अपने तीन पहिये के रथ पर प्रतिदिन पृथ्वी परिक्रमा करते है और दुखियो की चिकित्सा करते हैं।

अब एक सुन्दर अलंकार को देखिये जो ऋग्वेद के सूक्त में है—

१. पनिस कहता है—हे सरमा ! तू यहाँ क्यों आयी है ? यह स्थान बहुत दूर है। पीछे को देखने वाला इस मार्ग से नहीं जा सकता। हमारे पास क्या है ? जिसके लिए तू आयी है। तूने कितनी यात्रा की है। तूने रसा नदी कैसे पार की ?

२. सरमा कहती है मैं इन्द्र की भेजी आयी हूँ। हे पनिस ! तुमने बहुत-से पशु छिपा रखे हैं, मैं उन्हें लूंगी। जल मेरा सहायक है। मैं रसा पार कर आयी हूँ।

३. पनिस—वह इन्द्र कैसा है जिसकी भेजी तू दूर से आती है। वह किसके समान दीख पड़ता है। (परस्पर) इसे आने दो हम इसे प्रेम से ग्रहण करेंगे। इसे पशु दे देंगे।

४. मैं किसी को ऐसा नहीं देखती जो इन्द्र को जीत सके; वह सबको जीतने वाला है। बड़ी-बड़ी नदियाँ उसके मार्ग को नहीं रोक सकतीं। हे पनिस ! तुम निस्सन्देह इन्द्र से वध किये जाओगे।

५. पनिस—हे सुन्दरी ! तुम बड़ी दूर से—आकाश से—आयी हो, हम बिना झगड़ा किये तुम्हें पशु दिये देते हैं। दूसरा कौन इस तरह दे देता ? हमारे पास बड़े तीव्र हथियार हैं।

६. पनिस—हे सरमा ! तुम्हें इन्द्र ने धमकाने को भेजा है। हम तुम्हें अपनी बहिन की तरह स्वीकार करते हैं। तुम लौटो मत, हम तुम्हें पशुओं में से एक भाग देंगे।

७. सरमा—तुम कैसे भाई बन्धु का सम्बन्ध निकालते हो ? इन्द्र और आङ्गिरस यह सब बात जानते हैं। जब तक सब पशु न प्राप्त हों मैं उन पर दृष्टि रखती हूँ, तुम दूर भाग जाओ। (ऋ० १०, १०८)

इस मनोरंजक कथानक में रात्रि के अन्धकार के बाद पूर्ण प्रकाश के फैलने का रूपक है। प्रकाश की किरणों की उन पशुओं से समानता की गयी है जिनकी खोज इन्द्र कर रहा है। वह सरमा को खोज में भेजता है, यह सरमा 'ऊषा' है। सरमा उस विलु अर्थात् गह्वर को पा लेती है जहाँ अन्धकार एकत्र था। पनिस ही अन्धकार है। वह उसे ललचाता है; परन्तु सरमा नहीं बहकती। वह इन्द्र के पास लौट आती है। वह प्रकाश करता है।

मैक्समूलर का अनुमान है कि ट्राय का युद्ध इसी वैदिक कथा के आधार पर लिखा गया है। यह वह युद्ध है जो प्रतिदिन पूर्व दिशा में सूर्य द्वारा हुआ करता है और जिसका दीप्तिमान धन प्रतिदिन सन्ध्या समय पश्चिम दिशा से छीन लिया जाता है। मैक्समूलर साहब के मत से इलियन ऋग्वेद का विलु है। पेरिस वेद का पनिस है जो कि ललचाता है और हेलेना सरमा है, जो वेद में लालच को

रोती है, परन्तु यूनानी पुराण में ललचा जाती है।

अब 'आदित्य' की बात सुनिये जो अदिति का पुत्र है। अदिति का अर्थ—अभिन्न, अपरिमित और अनन्त है और जर्मन के प्रख्यात डाक्टर के मत में इस शब्द का अर्थ 'अनादि और अनिवार्य' ईश्वरीय प्रकाश है। इस अनन्त में वह भाव है जो दृश्य जगत् अर्थात् पृथ्वी-मेघ और आकाश से भी परे का द्योतक है। ऋग्वेद में आदित्यों का स्पष्ट विवरण है। म० २। सू २७ में वरुण मित्र के सिवाय अर्यमन, भग, दक्ष और अंस का भी उल्लेख है। म० ९ सू० ११४ तथा म० १० सू० ७२ में आदित्यों की संख्या ७ कही गयी है। इन्द्र अदिति का पुत्र है और सवितृ-सूर्य भी आदित्य माना गया है। इसी भाँति पूषण और विष्णु भी जो कि सूर्य के ही नाम हैं, आदित्य हैं। आगे चलकर जब वर्ष १२ मासों में बाँटा गया तब आदित्यों की संख्या भी १२ स्थिर हो गयी। भाष्यकारों ने सवितृ ऊगते हुए या बिना ऊगे सूर्य को कहा है तथा सूर्य प्रकाशित सूर्य को। सूर्य की सुनहरी किरणों की उपमा सुनहरी हाथों से दी गयी है। पुराणों में तो सवितृ का एक हाथ यज्ञ में जल गया तो वहाँ सोने का लगाया गया, ऐसा वर्णन है; किन्तु यही कथा जर्मन पुराणों में कुछ रूपान्तर से है। वहाँ सूर्य का हाथ 'बाघ खा गया' ऐसा वर्णन है।

इसी 'सवितृ' का वह एकमात्र प्रसिद्ध सूक्त है जो उत्तर काल के ब्राह्मणों का पवित्र गायत्री मन्त्र है—

'तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहिधियो योनः प्रचोदयात्।' डा० विल्सन ने इसका अर्थ किया है—

"हम लोग उस दिव्य सवितृ के मनोहर प्रकाश का ध्यान करते हैं जो हम लोगों को पवित्र कर्मों में प्रवृत्त करता है। (३-३२-१०)

बृहस्पति—या ब्राह्मणस्पति ऋग्वेद में साधारण देवता है; परन्तु उपनिषदों में कदाचित वही महान् 'ब्रह्मन्' की उपाधि पाने वाला है। वही बौद्धों के मत में उपकारी ब्रह्मा तथा पौराणिकों का जगत रचयिता 'ब्रह्मा' है। ये वैदिक ब्रह्मा, वैदिक विष्णु और वैदिक रुद्र, पौराणिक त्रिदेव के रूप में उसी तरह अथाह हो गये हैं, जैसे गंगोत्तरी की पवित्र क्षीण धारा बंगाल की खाड़ी के निकट हो गयी है।

ऋग्वेद में देवियों के स्थान पर यदि कुछ है तो उषस, और 'सरस्वती'। 'सरस्वती' नदी थी, जो पीछे वाणी की देवी बनी। उषस या प्रभात का जैसा मधुर और कवित्वमय वर्णन वेद में है, वैसा और किसी का नहीं। सुनिये—

'हे अमर उषा! तू हमारी प्रार्थना की अनुरागिनी है, हे तेजस्विनी तू किस पर दयालु है?'

'हे नाना रंगों की चमकीली उषा! दूर तक तेरा विस्तार है, तेरा

निवास कहाँ है ?

(२२) हे आकाश की पुत्री ! इन भेटों को स्वीकार कर और हमारे सुखों को चिरस्थायी कर। (१-३०)

(७) आकाश की वह पुत्री जो युवती है, श्वेत वस्त्र धारण किये है और सारे संसार के धन की स्वामिनी है, वह हमें प्रकाश देती है, हे शुभ्र उषा ! हमें यहां प्रकाश दे।

(८) जिस मार्ग से बहुत प्रभात बीत गये हैं और अनन्त प्रभात आने वाले हैं उसी मार्ग से चलती हुई तेजस्विनी उषा अन्धकार को दूर करती है और जो लोग मृतकों की नाँई नींद में बेखबर पड़े हैं उन सबको जीवित करके जगाती है।

(१०) कब से उषा का उदय होता है और कब तब होता रहेगा। आज का प्रभात उन सबके पीछे है जो बीत गये हैं और आगामी प्रभात आज के चमकीले उषा का पीछा करेगा। (२।११३)

(११) अपनी माता के द्वारा सिंगारी हुई दुलहिन की नाँई शोभायमान होकर तू प्रकट हुई। हे शुभ्र उषे ! इस आच्छादित अन्धकार को दूर कर। तेरे सिवा और कोई इसे दूर नहीं कर सकता। (१।१२३)

यह उषा, प्राचीन जातियों में भी बहुत प्रसिद्ध है। यूनानी भाषा में 'ऊषस' को 'इओस (Eos) और लैटिन में अरोरा (Aurora) के नाम से पुकारा गया है। 'अर्जुनी' वही है जो यूनानियों के यहाँ अर्जिनोरिस (Argynoris) है। 'बृसया' यूनानी बिसेइस (Briseis) और 'दहना' यूनानी 'दफने' (Dophne) है। 'सरमा' यूनानी हेलेना (Helena) है।

सरस्वती, नदी है। प्राचीन काल में आदि आर्य उसी के तट पर चिरकाल तक रहे हैं। स्वाभाविकतया वह देवी, सूक्तों की देवी बन गयी। वही पौराणिक काल में वाणी की देवी बन गयी है।

वैदिक देवताओं के उपर्युक्त विवरण से विद्वान पाठक यह समझ सकेंगे कि ज्यों-ज्यों आर्यो ने प्रकृति से आदि काल में परिचय प्राप्त किया, त्यों-त्यों वे उसके गुण गान एक सच्चे कवि की तरह करने लगे। उपर्युक्त कल्पनाओं से इसमें सन्देह नहीं रहता कि वे लोग कैसे सरल और सदाचारी रहते रहे हैं। इन सूक्तों में यह अद्भुत बात है कि कोई भी दुष्ट प्रकृति का देवता नहीं बताया गया है, न कोई नीच या हानिकर बात पायी जाती है। अतः यह बात स्वीकार करने में क्या आपत्ति हो सकती है कि इन सूक्तों से एक विस्तृत नीति की शिक्षा प्रकट हो रही है।

ऋग्वेद में किसी देवता की पूजा, मंदिर या उपासना का जरा भी उल्लेख नहीं है। उससे यही प्रकट होता है कि गृहपति अपने घरों में होमाग्नि प्रकट करता और धन-धान्य-परिवार की सुख कामना से इन वेदमन्त्रों द्वारा उन देवताओं का

यशोगान करता था। वे ऋषि जो ऋग्वेद मे हैं पौराणिक पाखण्डी और बनावटी ऋषि नही हैं। वे एक सांसारिक मनुष्य थे जिनके पास पशु के और अन्न के रूप मे बहुत सा धन रहता था। जिनके बडे बडे घराने थे, तथा काले असभ्यो से आर्यों की रक्षा के लिए समय समय पर हल को एक ओर रख भाले और तलवार तथा धनुषबाण लेकर युद्ध करते थे।

यद्यपि योद्धा पुरोहित और कृषक, ये तीनो ही गुण प्राय प्रत्येक ऋषि मे होते थे, परन्तु ऋग्वेद के उत्तर काल मे सूक्तो मे ऐसे पुरोहितो को देखते हैं जो अन्यत्र भी व्यवसाय की दृष्टि से पौरोहित्य करके दक्षिणा लेने लगे थे। इसका वर्णन हम अन्यत्र करेंगे। कुछ घराने सूक्तो के विशेषज्ञ 'मन्त्र दृष्टा' की तरह दीख पडते हैं।

इन ऋषियों म सर्वश्रेष्ठ 'विश्वामित्र और वशिष्ठ' हैं। डाक्टर म्योर ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत टेक्स्ट्स' के प्रथम भाग मे इन ऋषियो की बहुत सी कथाओ का संग्रह किया है। इन दोनो ऋषियो म विद्वेष हो गया था। विद्वेष का वास्तविक कारण एक-दूसरे के यजमानों की छीना-झपटी थी, तथा विश्वामित्र योद्धा ऋषि से पुरोहित ऋषि बन गये थे और भृगुओ के सम्बन्धी तथा पक्ष वाले थे। इन्होने वशिष्ठ के यजमान सुदास के यहाँ वशिष्ठ की अनुपस्थिति मे यज्ञ कराया था और वहाँ वशिष्ठ पुत्रो ने पहुँचकर विश्वामित्र को खूब आडे हाथो लिया था। इस प्रकार इन दोनो मे खासा बैर हो गया था। ऋग्वेद के मडल ३ सू० ५२ म देखिये वशिष्ठ को कैसी खरी-खरी सुनायी गयी हैं।

"नाशकर्त्ता की शक्ति नही देख पडती। लोग ऋषियों को इस तरह दुरदुराते हं जैसे वे शक्ति हा। बुद्धिमान लोग मूढो की हँसी करने पर उतारू नही होते। वे घोडे के आगे गधे को नही चलने देते।" (२३)

'इन भारतो ने (वशिष्ठो के साथ) हेलमेल करना नही सीखा। द्वेष करना सीखा है। वे उनके सम्मुख घोडे दौडाते है धनुष से युद्ध करते हैं।" (२४)

वशिष्ठ ने म० ७ सू० १०४ मे उन कुवाच्या का जवाब दिया है—"सोम दुष्टो को शुभ नही जो अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं। वह उन झूठो को नष्ट करे, हम दोना तो इन्द्र के आधीन हैं। (१३)

'यदि मैं यातुधान होऊँ या मैंने किसी को दुःख दिया हो तो मैं मर जाऊँ या जिसने मुझे झूठ-मूठ यातुधान कहा हो वह अपने इन सम्बन्धियो के बीच से उठ जाय। (१५)

'यदि मैं यातुधान नही तो जिसने मुझे यह गाली दी उस अधम पर इन्द्र का वज्र गिरे।" (१६)

इस वैदिक काल के द्वेष भाव को पुराणो ने अतिरंजित कर दिया है। पौराणिक गाथाओ मे विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण होना बताया गया है।

पर ऋग्वेद में न वे ब्राह्मण हैं न क्षत्रिय। वे प्रथम योद्धा ऋषि और फिर पुरोहित ऋषि हैं। विश्वामित्र के बहुत-से श्रेष्ठ सूक्त ऋग्वेद में हैं और आधुनिक ब्राह्मणों का वह सावित्री सूक्त जो गायत्री कहा जाता है विश्वामित्र का ही है। उनका जन्म क्षत्रियकुल में मानकर महाभारत, हरिवंश और विष्णुपुराण में उनके ब्राह्मण हो जाने की अद्भुत कथा लिख दी है। इसके शिवा हरिश्चन्द्र की कथा में उन्हें क्रोधी, क्रूर, निष्ठुर एवं लोभी ऋषि के तौर पर दिखाया गया है।

तृशंकु राजा सदेह स्वर्ग जाना चाहता था। उसने वशिष्ठ से कहा। वशिष्ठ ने उसके विचार को असम्भव बताया, पर विश्वामित्र ने पूर्ण सम्भव कहा। वशिष्ठ ने क्रुद्ध होकर उसे चाण्डाल कर दिया; पर विश्वामित्र ने उसे यज्ञ कर स्वर्ग भेज दिया। इन्द्र ने उसे स्वर्ग से ढकेल दिया; तब विश्वामित्र ने उसे वहीं रोक दिया और एक और ही स्वर्ग की सृष्टि करने लगे। यह पौराणिक गाथा है। इस प्रकार की बहुत बना ली गयी हैं, जिनमें कालक्रम की परवा भी नहीं की गयी है। पचासों पीढ़ियों तक ये दोनों ऋषि और इनकी सन्तान लड़ते-झगड़ते रहे हैं।

अंगिरा ऋषि, जो ऋग्वेद के नवम मंडल के ऋषि हैं, के विषय में विष्णुपुराण (म० ४।२।२) में लिखा है कि नभाग के नाभाग, उसके अम्बरीष, उसके विरूप, उससे पृष दश्व, उससे रथीनर हुए। यह अंगिरा कुल है जो क्षत्रिय हो गया था।

वामदेव और भारद्वाज को मत्स्य पुराण (अ० १३२) में अंगिरा वंश की उस शाखा में बताया गया है जो ब्राह्मण हो गयी थी।

गृत्समिद् के विषय में सायण का मत है कि वे प्रथम अंगिरा कुल के थे, पीछे भृगुवंश के हो गये, परन्तु विष्णुपुराण और वायुपुराण ने गृत्समिद को सैनिक का पिता बताया है, जिसने वर्णों का निर्माण किया। (वि० ४-८)

कण्व को विष्णुपुराण (४-१६) में और भागवत (४-२०) में पुरु की सन्तान लिखा है; जो क्षत्रिय थे, पर वे ब्राह्मण माने जाते थे। अजमीध से कण्व और उससे मेधातिथि उत्पन्न हुए, जिनसे कण्वनय (कान्यकुब्ज?) ब्राह्मण उत्पन्न हुए। (वि० पु० ४-१९)

अत्रि को विष्णुपुराण में पुरुरवा का दादा कहा गया है (वि० ४-६) मत्स्यपुराण (अ० १३२) में ९१ वैदिक सूक्तकारों का वर्णन दिया गया है। परन्तु वास्तव में आधुनिक पुराणों का वर्णन इन अति प्राचीन ऋषियों के सम्बन्ध में उतना प्रामाणिक नहीं हो सकता कि जिस पर बिलकुल निर्भर रहा जाये। पुराणों ने ऋषियों के तीन भेद किये हैं—देवर्षि-जैसे नारद, ब्रह्मर्षि-जैसे वशिष्ठ, राजर्षि-जैसे जनक। परन्तु निश्चय ही वैदिक ऋषि इन विभागों से पृथक् थे। तब ये श्रेणियाँ बनी ही न थीं। इन तमाम वर्णनों से हम ऋग्वेद में इन वस्तुओं को

प्राप्त करते हैं—

(१) नदियाँ—जो लगभग २५ हैं। जिनमें तीन को छोड शेष सब सिन्धु नदी की शाखाएँ हैं। (१) वितस्ता, (२) असिक्नि (चन्द्रभागा), (३) उपरुष्णी (रावी), (४) विपाट, (५) शुतद्री (सतलज), (६) कुभा, (७) सुवास्तु, (८) क्रमु, (९) गोमती, (१०) गंगा, (११) यमुना, (१२) सरस्वती, (१३) सिन्धु (१४) दृषद्वती, (१५) रसा, (१६) सरयू, (१७) अञ्जणी, (१८) कुलिशी, (१९) वीर पत्नी, (२०) सुशोमा, (२१) मरुद् वृधा, (२२) आर्जीकीया (विपाशा), (२३) तुष्टामा, (२४) सुसर्तु (२५) श्वेती, (२६) मेहत्नु।

(२) पर्वत—(१) हिमवन्त (हिमालय), (२) मूजवत् (जहाँ सोम उत्पन्न होता है, और जो काबुल के पास काश्मीर से दक्षिण पश्चिम में है), (३) त्रिक कुत, (४) नावाप्रभ्र शन।

(३) पशु—सिंह, गज, वृक (भेडिया) वराह, महिष, ऋक्ष, वानर, मेष (मेढा), अजा (बकरा), गर्दभ, श्वा (कुत्ता), गौ, ऊष्ट्र।

(४) पक्षी—हंस, क्रौंच, चक्रवाक, मयूरी, प्रतुद्।

(५) खनिज—स्वर्ण, अय (लोहा), रजत (चाँदी)।

(६) मनु जाति वर्ग—गान्धार, मूजवत्, पचवर्ग, पचजन, पूरव, तुर्वशा, यदव, अनव, द्रुह्यव, मत्स्या, सृञ्जय, उशीनरा, चेदय, क्रिवय, भरता, क्रोवय।

(७) गहने—कटक, कुडल, ग्रैवेय, नूपुर आदि।

सायण के बाद ऋग्वेद पर ऋषि दयानन्द ही का आर्यभाष्य महत्वपूर्ण है। महापुरुष सायण म विशेषता यह है कि विशुद्ध सस्कृत का विद्वान होते हुए भी अत्यन्त स्वच्छन्द बुद्धि और नवीन विवेक स इसने वेदो को दखा, समझा और समझाया है। ऋषि दयानन्द ब्रह्मवादी मत के हैं और उन्होने वेदो के वैज्ञानिक अर्थ किये हैं। उनके मतानुसार ऋग्वेद के विषय-स्थलो का हम सकेत मात्र यहाँ देना उचित समझते हैं—

ब्रह्म विद्या और धर्म आदि—१।६।१५।५, १।२।७।५, ८।८।४९।२-३-४।
सृष्टि विद्या—८।७।१७, ८।७।३
पृथ्वी आदि का भ्रमण—८।२।१०।१, ६।४।१३।२
गणित—८।७।१८।३
ईश्वर स्तुति—१।३।१८।२
उपासना—४।४।२४।१, १।१।११।१
मुक्ति—८।२।११
नौ विमान आदि विज्ञान—१।८।८।३,४, १।८।८।५, १।८।९।१, १।३।४।१,

१।३।५।७, १।३।३४।८, १।६।६।४, १।३।३४।७, २।३।२३।४७, २।३।२४।४८

तार विद्या—१।८।२१।१०

पुनर्जन्म—८।१।२३।६-७

नियोग—७।८।१८।२, १०।१८, ८।८।५।२७।२०

राजधर्म—३।२।२४।६, १।३।१८।२

प्रायः सभी अर्वाचीन प्राचीन भाष्यकारों का ऋषि दयानन्द ने खंडन किया है, खासकर सायण और महीधर का; परन्तु आश्चर्य है कि शतपथ आदि ब्राह्मणों के विषय में उन्होंने बिलकुल मौन धारण किया है।

६. ऋग्वेद की विवाह परिपाटी

वैदिक काल में, जबकि मनुष्य जीवन सरल और स्वाभाविक था, जीवन के सम्बन्ध उनकी आवश्यकताओं के अनुसार किये जाते थे। उसके लिए कठोर और अनिवार्य रूढ़ियाँ और विधान नहीं काम में लाये जाते थे। महत्वपूर्ण बात यह थी—कि यह सर्वथा आवश्यक नहीं था कि लड़कियों का अवश्य ही विवाह किया जाये। ऋग्वेद में हम उन कुमारियों का वर्णन पाते हैं, जो आजन्म कुमारी रहीं और जिन्होंने पिता की सम्पत्ति का एक अंश अपने लिए प्राप्त किया।[१] इसमें सन्देह नहीं कि कुछ ऐसी कुमारियों का भी उल्लेख है, कि जिनके चरित्र की रक्षा करने वाले भाई नहीं थे।[२]

जो कन्याएँ अपना विवाह किया चाहती थीं—उन्हें अपना पति स्वयं चुनने का अधिकार प्राप्त था। यद्यपि वे कभी-कभी धोखा खा जाती थीं जिसके कारण उन्हें सुखी जीवन प्राप्त नहीं होता था। वे पुरुषों के प्रलोभनों में फँस जाती थीं, परन्तु बहुधा उन्हें अपने उपयुक्त पति प्राप्त होते थे।[३] कभी-कभी पिता भी रूपवती और गुणवती कन्या को वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके योग्य वर को देता था।[४] ये गृहिणी सदैव चतुर, परिश्रमी और घर-गृहस्थी की देख-भाल में तत्पर होती थीं। वे प्रातःकाल जगकर अपने कार्यों में लग जाती थीं, और घर के सब लोगों को जगाकर उनके अपने-अपने कार्यों में प्रेरणा करती थीं।[५]

विवाह के समय की वे प्रतिज्ञाएँ जो वर-वधू से आज तक भी विवाह के

---

१. म० २। सू० १७। श्लोक ७

२. ऋ २।२६०।१

३. म० १०। सू० २७। ऋ० १२

४. म० ६ सू० ४६ ऋ० २। म० १०। सू ३६। ऋ० १४

५. म० १। सू० ३२४। ऋ० ४

समय कराई जाती हैं—अपना गम्भीर अर्थ और यथार्थता रखती हैं। उन्हें देखने से पता लगता है, कि सरल, सादा जीवन होने पर भी उस काल के आर्यों ने विवाह के महत्व और उसकी आवश्यकताओं को यथार्थ में जान लिया था। अब आप ध्यान से उन ऋचाओं पर दृष्टि डालें, जो इस सम्बन्ध में ऋग्वेद में वर्णित हैं।

"हे विश्वावसु इस स्थान से उठो, क्योंकि इस कन्या का विवाह हो गया। हम आपका स्तवन और नमन करते हैं—अब तुम किसी दूसरी कुमारी के पास जाओ, जो अपने पिता के घर हो, और जो विवाह योग्य हो चुकी है, वह अब तुम्हारा ही भाग है।" (२१)

"हे विश्वावसु अब तुम उठो, हम तुम्हें नमन करते हैं। अब तुम किसी दूसरी कुमारी के पास जाओ, जिसके अंग प्रौढ़ हो चुके हैं और उसे एक पति की पत्नी बनाओ।" (२२)

इन ऋचाओं से स्पष्ट होता है कि उस काल में बाल विवाह की परिपाटी नहीं थी। बारात जाने का एक वर्णन कितना मोहक है—

"जिस मार्ग से हम विवाह के लिए कुमारी को प्राप्त करने जाते हैं; उस मार्ग को सरल और विघ्न-रहित कीजिये। हे अर्यमन और भग, हमें सकुशल ले जाइये, पति-पत्नी भली-भाँति मिलें।" (२३)

अब कोमल भावनापूर्ण उद्‌गार देखिये—

"हे कुमारी, उज्ज्वल सूर्य ने तुझे कौमार्य के बन्धन में बाँधा है, हम तुझे उससे उन्मुक्त करते हैं, और तुझे तेरे पति से मिलाकर वहाँ ले जाते हैं, जो सत्य और पुण्य का धाम है।" (२४)

"हम इस कुमारी को यहाँ से 'पितागृह' से मुक्त करते हैं। परन्तु वहाँ 'सुसराल' से नहीं। हमने इसका सम्बन्ध भली-भाँति किया है, हे इन्द्र, यह भाग्य-शालिनी और योग्य पुत्रों की माता बने।" (२४)

"पूषण यहाँ से तेरा हाथ पकड़कर तुझे ले चले, तेरे रथ में दो घोड़े जुते हों, अपने घर जाकर गृह-पत्नी बन, और वहाँ की प्रत्येक वस्तु पर अपना प्रभुत्व कर।" (२४)

"तुझे आशीर्वाद है, तू पुत्रवती हो, गृहकार्यों में तू सावधान रहे, अपने पति के साथ एक तन, एक प्राण हो, वृद्धावस्था तक इस घर में प्रभुत्व कर।" (२७)

"तू पहले सोम की थी, फिर गंधर्व की हुई, इसके बाद अग्नि की, अब चौथी बार यह मनुष्य तेरा पति हुआ है।" (४०)

"सोम ने तुझे गंधर्व को दिया और गंधर्व ने अग्नि को, अग्नि ने तुझे धन और सन्तति के लिए मुझे दिया।" (४१)

"वर और वधू अब तुम दोनों साथ साथ रहो, पृथक् मत हो, अनेक विधि-

भोजनों का आनन्द लो, अपने ही घर में रहकर पुत्र-पौत्री का आनन्द भोग करो।" (४२)

"हे प्रजापति, हमें सन्तति दो। हे आर्यमन्, हम वृद्धावस्था एक तक साथ रहें। अरी दुलहिन, तू इस पति घर में इस शुभ मुहुर्त में प्रवेश कर, और हमारे दास-दासियों तथा पशुओं का कल्याण कर।" (४३)

"इन्द्र देव, इस स्त्री को सौभाग्यवती और पुत्रवती बनायें, उसके दस पुत्र हों, जिससे घर में पति के साथ ग्यारह पुरुष हो जायें।" (४६)

"अरी दुलहिन, तू सास-ससुर को वश में कर और ननद और देवर पर रानी की भाँति शासन कर।" (४६)

सब देवता हमारे (पति-पत्नी) हृदयों को एक करें, मातरिश्वा और धातृ वाग्देवी हमें एक करें। (४७।१०।८५)

ऋग्वेद के इन उद्धरणों से तत्कालीन वैवाहिक जीवन की एक सुखद कल्पना की जा सकती है—

"हे तपस्वी ब्रह्मचारी, तुझ सुन्दर को मैंने मन से वर लिया।"

(ऋ० १०।१८३।१)

"हे वधू, तू अपने सुन्दर शरीर का ऋतुकालीन संयोग चाह, मैं तुझे मन से चाहता हूँ। मुझसे विवाह करके सन्तान उत्पन्न कर।" (ऋ० १०।१८३।२०)

"विवाह की कामना करने वाली कितनी ही स्त्रियाँ मीठी-मीठी बातों को करने वाले पुरुषों की बहक में आकर उनके आधीन हो जाती हैं, परन्तु कुलवती भद्रा स्त्री सभा के बीच में ही पति को चुनती हैं।" (ऋ० १०।२१।१२)

"बिन दुही गाय की तरह कुमारी युवतियाँ जो कुमारावस्था त्याग चुकी हैं, वे नवीन ज्ञान से पूर्ण होकर गर्भ धारण करती हैं।" (३।५५।१६)

ऋग्वेद के अन्तिम सूत्रों में कुल ऐसे मन्त्र पाये जाते हैं—जिनसे पता चलता है कि बड़े-बड़े आदमी—जैसे धनपति या राजा लोग अनेक स्त्रियों से विवाह करते थे और सौतों में कलह हो जाती थी। (म० १० सू० १४५, म० १० सू० १५९) में ऐसा ही उल्लेख मिलता है। मालूम होता है कि वैदिक काल के अन्तिम दिनों में जब धीरे-धीरे साम्पतिक अवस्था और साम्राज्य भावना बढ़ चली थी—वहु विवाह जारी हो गये थे।

एक समय में दो पत्नियों की निन्दा है—

"जैसे रथ का घोड़ा दो धुरों के बीच में दबा हुआ हिनहिनाता चलता है, वैसे ही दो स्त्रियों वाले पति की दशा होती है।"

जुआरी लोग अपनी पत्नियों को जुए में हार जाते हैं, ऋग्वेद में इसका मनोहर वर्णन मिलता है—

"यह मेरी स्त्री मुझे कष्ट नहीं देती थी—न कभी क्रोध करती थी—तथा

अपने परिजनों के साथ मुझसे प्रेम करती थी—जुए के कारण मुझे भी गँवानी पड़ी। (ऋ० १०।३४।२)

जिसके धन और धन का नाश जुआ करता है, उसकी स्त्री का दूसरे ही उपभोग करते हैं। घर वाले कहते हैं—हम इसे नहीं जानते, इसे बाँधकर ले जाओ।" (१०।३४।४)

"जब जुआरी दूसरों की युवती पत्नियों को, महल अटारियों को, और ऐश्वर्य को देखता है, तब उसे बड़ा संताप होता है। जो जुआरी प्रातःकाल सुसज्जित घोड़ों की जोड़ी पर सवार था, वही आग तापकर रात काटता है।"

(१०।३४।११)

पाँचवाँ अध्याय

सामवेद

यह वेद गिनती में तीसरा तथा महिमा की दृष्टि से दूसरा स्थान रखता है। सामवेद में कुल १५४९ मन्त्र हैं। जिनमें केवल ७२ नवीन हैं, शेष सब ऋग्वेद के हैं। इस वेद के दो भाग हैं। प्रथम में ६ काण्ड और दूसरे में ९ काण्ड हैं। एक-एक काण्ड में कई-कई कण्डिकाएँ हैं, जिन्हें सूक्त भी कहा जा सकता है। कुल मिलाकर ४५९ कण्डिकाएँ हैं। पाठ में ऋग्वेद से थोड़ा अन्तर है। कुछ विद्वानों का मत है कि सामवेद का पाठ ऋग्वेद की अपेक्षा शुद्ध और प्राचीन है। यह भी कहा जाता है कि जो ऋचाएँ सामवेद में नवीन हैं, अर्थात् अधिक हैं—वे भी कभी प्राचीन ऋग्वेद में थीं जिन्हें व्यास ने निकाल दिया। कुछ विद्वानों का मत है कि व्यास ने कुछ और भी ऋचाओं को ऋग्वेद से निकाल दिया था, जो अब नष्ट हो गयीं।

सामवेद की कुछ ऋचाओं को छोड़कर उसकी सब ऋचाएँ ऋग्वेद में पायी जाती हैं। सम्भवत: उसकी शेष ऋचाएँ भी ऋग्वेद की ही हों और अब उन्हें भूल गये हों। फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि सामवेद, ऋग्वेद के गायन कार्य के लिए स्वरताल बद्ध करके संग्रहीत किया गया है। सामवेद के कुछ मन्त्र यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में भी पाये जाते हैं।

सामवेद में अधिकतर सोम-पवमान का वर्णन है। इसके अतिरिक्त अग्नि, इन्द्र, उषा, अश्विन् आदि के भी वर्णन हैं। कुछ ऋचाएँ वैवस्वत मनु की भी हैं। इन्द्र को राम कहा गया है। वय्य के पुत्र सत्यश्रव ऋषि का नाम आया है। नकुल की एक ऋचा है जो ऋग्वेद में नहीं है। कुछ ऋचाएँ नहुष-ययाति मनु-अम्बरीष तथा ऋत्विजा की भी हैं, कुछ आप्सव मनु की हैं। पृथ्वी के चारों ओर बहने वाली रसा नामक नदी का उल्लेख है। सोम पवमान ने दिवोदास के लिए शम्बर, यदु तुर्वश को हराया। श्यावक, ऋजिस्वा और अम्बरीष इन्द्र के कृपापात्र कहे गए हैं। कवि एक असुर था। ईश्वर का वर्णन विश्वकर्मा—स्कम्भ प्रजापति और

पुरुष नाम से आया है। कहीं-कहीं अग्नि इन्द्र और सूर्य से भी ईश्वर का भाव प्रकट किया गया है। पवीरु ससमी के राजा थे। सुनीथ सुचद्रथ के पुत्र थे। मनुष्य जीवन १०० वर्षों का है, पर कहीं-कहीं ११६ या १२० वर्षों का कहा गया है।

यजुर्वेद

यजुर्वेद का शब्दार्थ है—'यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान'। कुल मिलाकर इसके ४० अध्याय हैं। जिनमे २००० छन्द हैं। कुछ गद्य भी है। इसका अधिकाश भाग ऋग्वेद से तथा कुछ अथर्व से लिया गया है। यज्ञ आर्यों तथा अनार्यों की भी प्राचीन परिपाटी थी। कहा जाता है कि बलि दैत्य के यज्ञ म वामन ऋषि ने विशेष विधि वर्णित की थी। तभी से यज्ञ विधि पर विचार होने लगे, इसी से यजुर्वेद का आरम्भ हुआ। सम्भवत व्यास के विभाजन के पूर्व भी यजुर्वेद पृथक् किसी रूप म था। सायण और महीधर ने इसे यज्ञ पूरक वेद माना है। ऋग्वेद मे हम यज्ञकर्त्ताओ के भिन्न भिन्न नाम जहाँ तहाँ मिलते हैं, जो यज्ञ मे भिन्न-भिन्न कार्य किया करते थे। अध्वर्यु को यज्ञ म भूमि नापनी, यज्ञकुण्ड निर्माण करना और लकडी-पानी की व्यवस्था करनी पडती थी। गायन का कार्य उद्‌गाता करता था। इन लोगों को ऋग्वेद म 'यजुष और सामन्' के नाम से सम्बोधन किया गया है। अवश्य ही ऋग्वेद के ये सूक्त जिनमे इन बातो का उल्लेख है, उत्तरकालीन हैं और उस सभ्यता से बहुत पीछे की सभ्यता का उल्लेख करते हैं, जो उन सूक्तों म प्रतिध्वनित होती है जिसमे इन्द्र मित्र वरुण और उषा का वर्णन है।

प्रथम तथा दूसरे अध्यायो म नवीन चन्द्र तथा पूर्ण चन्द्र सम्बन्धी यज्ञो के वर्णन है। तीसरे म अग्निहोत्र का कथन है। ४ से ८ तक सोम यज्ञ का विधान है। ९ और १० म वाजपेय और राजसूय यज्ञो का कथन है। ११ से १८ अध्याय तक वेदी बनाने की विधि वर्णित है। १९ से २१ तक सौत्रामणि यज्ञ करने तथा शतरुद्रीय का विधान वर्णित है। २२ से २५ तक अश्वमेध का कथन है। २६ से २९वें अध्याय तक चान्द्र यज्ञो का विधान है, तथा ३०-३१ मे नरमेध की विधि है।[1] ३२ स ३४ तक सर्वमेध का वर्णन है। ३५ मे पितृयज्ञ और ३६ मे दीर्घजीवी होने की विधियाँ हैं। ३७ स ३९ तक प्रवर्ग विधान है। ४०वाँ अध्याय एक उपनिषद् है, जिसमे ब्रह्म वर्णित है।

इस वेद के दो स्वरूप हैं—एक शुक्ल यजुर्वेद दूसरा कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल

---

१ शतपथ कहता है कि नरमेध में पुरुष के पुतले की बलि दी जाय। यह कदाचित् प्राचीन परिपाटी का संशोधन है।

यजुर्वेद के अध्याय १६ और ३० में अनेक व्यवसायों के नाम दिये गये हैं—चोर, सवार, नर्तक, पदाती, काननि, रथवाहक, रथकार, बढ़ई, कुम्हार, सुनार, कृपक, नाई, धनुष बनाने वाले, बौने, कुबड़े, अंधे, गूंगे, वैद्य, ज्योतिषी, हाथीवान्, लकड़हारे, घोड़ा और पशुओं के पालने वाले, नौकर, रसोइये, द्वारपाल, चित्रकार, नक्काश, धोबी, रंगरेज, चमार, मछुए, शिकारी, चिड़ीमार, कवि, वादक, कामी आदि पेशेवर नाम हैं, जिससे तत्कालीन सामाजिक विकास पर प्रकाश पड़ता है।

कृष्ण यजुर्वेद, तित्तिरि के नाम से तैत्तिरीय संहिता कहाता है। इस वेद की आत्रेय प्रति की अनुक्रमणी में यह लिखा है कि यह वेद वैशम्पायन से यास्क को प्राप्त हुआ फिर यास्क से तित्तिरि को, तित्तिरि से उख को और उख से आत्रेय को। हम तो इस परम्परा-वर्णन का यह अभिप्राय निकालते हैं कि अब जो हमें यजुर्वेद की प्रति प्राप्त है वह आदि प्रति नहीं।

शुक्ल यजुर्वेद याज्ञवल्क्य वाजसनेय के नाम से वाजसनेयी संहिता कहाता है। याज्ञवल्क्य विदेह के राजा जनक की सभा के प्रसिद्ध पुरोहित थे और उस नाम के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उक्त पुरोहित ने इस नई शाखा को प्रकाशित किया।

इन दोनों यजुर्वेदों की प्रतियों में अन्तर यह है कि कृष्ण यजुर्वेद में तो यज्ञ सम्बन्धी मन्त्रों के साथ ही साथ उनकी व्याख्याएँ भी दे दी हैं। साथ ही उनके आगे यज्ञ सम्बन्धी आवश्यक वर्णन भी हैं; परन्तु दूसरी संहिता में अर्थात् शुक्ल यजुर्वेद में केवल मन्त्र ही दिये गये हैं और उनकी व्याख्या तथा यज्ञ वर्णन अतिविस्तार से अलग एक ब्राह्मण में दिया गया है। इसी ब्राह्मण का नाम शतपथ है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि इस यज्ञ-प्रेमी पुरोहित ने यजुर्वेद की पुरानी परिपाटी में एक संशोधन किया, कुछ परिवर्तन भी किया और उसकी पद्धति तथा शिष्य परम्परा ही पृथक् चल गयी तथा उसका एक नवीन सम्प्रदाय बन गया।

शुक्ल यजुर्वेद में ४० अध्याय हैं और कृष्ण यजुर्वेद १८ ही अध्याय का है। शतपथ ब्राह्मण में उन १८ अध्यायों के मन्त्र पूरे नौ खण्डों में सम्पूर्ण किये गये हैं और यथा क्रम उन पर टिप्पणी दी गयी है। इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि ये १८ अध्याय प्राचीन कृष्ण यजुर्वेद के उद्धरण हैं और संभवतः इन्हीं का संकलन या संस्कार याज्ञवल्क्य ने नये रूप में किया। शेष ७ अध्याय प्रायः याज्ञवल्क्य के पीछे तक भी संकलित होते रहे प्रतीत होते हैं और अन्त के १५ अध्याय जो फुटकर (परिशिष्ट वा खिल) कहे जाते हैं, प्रत्यक्ष ही उत्तरकालीन है।

यजुर्वेद की १०१ शाखाएँ हैं। ये शाखाएँ शैली भेद, अध्यापन भेद और देश भेद के कारण हो गयी हैं। इन शाखाओं में बहुत-सी लुप्त भी हो चुकी हैं। गुरु से पढ़कर जिस शिष्य ने अपने देश में जाकर जिस ढंग से अपने शिष्यों को पढ़ाया

और उसमें कुछ न कुछ भेद पड़ गया, तो वह शाखा उसी अध्यापक के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। कुछ शाखाओं में परस्पर इतना भेद है कि यजुर्वेद के दो नाम ही पड़ गये हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, श्वेत (शुक्ल) यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता बहुत प्रसिद्ध है। वाजसनेय ऋषि ने भिन्न भिन्न देश के १७ शिष्यों को यजुर्वेद पढ़ाया था। उन १७हों के नाम से १७ शाखाएँ हो गयीं। शाखा-भाष्यकारों ने इनका अवलम्बन लिया है। इसकी मूल यजुर्वेद का शुद्ध स्वरूप माना गया है। इसी शाखा का ब्राह्मण भी उपलब्ध होता है। "षड्शीति शाखायजुर्वेदस्य —चरणव्यूह।"

यजुर्वेद म जाति और वर्ण व्यवस्था के भेद वर्णन बहुत स्पष्ट हैं। मिश्रित जातियों का भी वर्णन है तथा दस्तकारी-विज्ञान-व्यापार के भी बड़े-चढ़े कथन हैं। इससे यह वेद अपेक्षाकृत नवीन प्रतीत होता है। ग्रिफिथ का यही विचार है। यजुर्वेद म जो ऋचाएँ ऋग्वेद की हैं—उनके ऋषियों के नाम तो ज्ञात हैं, पर जो ऋचाएँ अथर्व स ली गयी हैं उन ऋषियों के नाम अज्ञात हैं। केवल अन्तिम ५ अध्याय दधीचि कृत हैं। शेष ३५ अध्यायों के रचयिता प्रजापति परमेष्ठी-नारायण पुरुष स्वयंभू ब्रह्मा, बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, अश्विनी, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, मधुच्छन्दस, मधातिथि, सूर्य और याज्ञवल्क्य कहे गये हैं। कदाचित् यजुर्वेद की महिमा बढ़ाने के लिए उसकी कुछ ऋचाओं को देवताओं की कही बताया गया है। एक-दो स्थानों पर मन्त्रों का प्रभाव ऋग्वेद स भी बढ़ा चढ़ा प्रकट किया गया है। ऋग्वेद म तो देवताओं की विनय प्रार्थनाएँ ही हैं कि वे हमें प्राण मुक्त करें—पर यजुर्वेद में तो कहा गया है कि वह उनके पाठ से पाप मुक्त हो गया, तथा सब दुरात्माएँ मन्त्र द्वारा जला दिये गये।

ऋक् और साम के नाम आए हैं तथा आयु और पुरुरवा के वर्णन हैं। ऋग्वेद की अपेक्षा इस वेद में विष्णु का वर्णन अधिक है। रुद्र की महिमा भी अधिक है। वे शिव शंकर महादेव तथा ईश्वर तक हो गए हैं। सन्द और मर्क शुक्र के पुत्र हैं। मर्क राक्षसों के पुरोहित थे। सन्द हराये गए और मर्क भगाये गए थे। जन्म का महत्व बढ़ गया था। कहा गया है—आज मुझे ऐसा ब्राह्मण मिले जो स्वयं ऋषि हो और ऋषियों की सन्तान हो। पवित्र बाप-दादों में उत्पन्न हो। सिन्धु नदी, भारतीय क्षत्रिय, जलयान का कथन है। कुरु को राक्षस कहा है जिसे भरत ने हराया। पुरोहितों की जाति बनी। तथा शूद्र और आर्य एवम् तार्क्ष्य और अरिष्ठनेमि उत्पन्न हुए। ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रों को ज्योति प्रदान हो। बिना हाथों वाले कुनार नामक एक दैत्य का वर्णन है, जो दानवों के साथ रहता था। भेड़िये और चीता का कथन है। अम्बा-अम्बालिका और अम्बिका नाम है।[1] मागध नाम है। उस समय तक मगध राज बन चुका था। ईश्वर का

१ महाभारतकालीन।

वर्णन अधिक स्पष्ट है। आर्य और दास दोनों ईश्वर के हैं—इस कथन से स्पष्ट है कि अब दोनों जातियाँ मिल-जुलकर रहने लगी थीं।

अथर्वेद

अथर्वेद का उल्लेख हमें आधुनिक काल में मिलता है। मनुस्मृति तथा अन्य स्मृतियाँ भी प्रायः तीन वेदों का ही उल्लेख करती हैं। कौषीतिक ६।१०, ऐतरेय ब्राह्मण ५।३२, शतपथ ब्राह्मण ११।५।८, १४।६।१०।६, छान्दोग्य उपनिषद् ४।१७, ऐतरेय आरण्यक ३।२।३, बृहदारण्यक १।५, में तीनों वेदों के नामों का उल्लेख करके इस ग्रन्थ की अथर्वाङ्गिर नामक इतिहास में गिनती की है। इस ग्रन्थ का वेद माने जाने का उल्लेख अथर्वेद ही के ब्राह्मण और उपनिषदों में परस्पर पाया जाता है। इन प्रमाणों से हमें स्पष्ट ज्ञान होता है कि ईसा से १५०० वर्ष पूर्व तक यह ग्रन्थ अथर्वाङ्गर के नाम से माना जाता था। बहुत बार इसे अथर्वन्वेद कहकर वेद मानने के लिए पेश किया गया था, परन्तु ईसा सन् प्रचलित होने के बाद तक भी यह वेद नहीं हो पाया था। गोपथ ब्राह्मण तो चौथे वेद की आवश्यकता को तर्क द्वारा सिद्ध करने की चेष्टा करता है। वह कहता है कि गाड़ी के चार पहिये होते हैं। पशु भी बिना चार टाँगों के नहीं चल सकता, इसी तरह यज्ञ भी बिना चार वेदों के नहीं हो सकते।

यह कहा जा सकता है कि वेद हजारों वर्षों के प्राचीन आर्यो के भावों का संग्रह है। किसी एक पुरुष की एक काल की रचना नहीं है। वेद सृष्टि के आदि-काल में उत्पन्न हुए हैं, इसी रूप में हमेशा रहेंगे और जब-जब भी संसार की सृष्टि होगी, तब भी इनका यह रूप यही विषय और यही आकृति होगी।

अथर्व के कुछ मन्त्र सम्भवतः ऋग्वेद से भी प्राचीन हैं। इस वेद का निर्माण ऋग्वेद से भी प्रथम आरम्भ होकर पीछे तक होता रहा है। इसे अथर्वांगिरस और ग्वाङ्गिरस भी कहा गया है। अथर्वण पहले ऋषि थे, जिन्होंने लकड़ियाँ रगड़ कर आग पैदा की। अंगिरा और भृगु भी प्राचीन ऋषि हैं। इन तीनों ऋषियों और इनके वंशधरों का वर्णन ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर आया है। इन्हीं तीन ऋषियों के वंशधरों ने आगे तक इस वेद का निर्माण जारी रखा। ऋग्वेद में एक विशेषता यह है कि वह अन्य किसी वेद की सहायता लेकर नहीं चला। स्वतन्त्र और प्राचीन ऐतिहासिक दृष्टि से वह महत्वपूर्ण है। यही बात अथर्व के सम्बन्ध में भी है। ऋक् और अथर्व में एक भारी अन्तर यह है कि ऋक् में जाति-भेद या ब्राह्मण की श्रेष्ठता नहीं है, पर अथर्व में है। ऋग्वेद में प्राकृतिक वर्णन अधिक है। अथर्व में जादू-टोना और भूत-प्रेतों के मन्त्र हैं। संक्षेप में अथर्व रहस्यपूर्ण है। आयुर्वेद-चिकित्सा और औषधिशास्त्र का भी प्रारम्भिक

रूप अथर्व ही में देखने को मिलता है। अनेक रोगों के वर्णन और उनको नष्ट करने वाली अनेक औषधियों के गुण नाम, रूपरेखा, कीटाणु-शास्त्र के गहन विषय, दीर्घायु होने, धन प्राप्त करने और निरोग रहने की अनेक महत्वपूर्ण बातें इसमें हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि अथर्व के मन्त्र ऋग्वेद के साथ ही प्राचीन काल में नीचे दर्जे के लोगों में या अनार्यों में प्रचलित थे। ऋग्वेद भी अंगिरस ऋषियों को मायावी कहता है। प्राचीन आर्यों के जीवन और विश्वासों का विकास कैसे हुआ—इसकी झलक हमें अथर्व में ही मिलती है। इस दृष्टि से अथर्व ऋग्वेद से भी अधिक महत्वपूर्ण है। वैदिक साहित्य में वास्तव में तीन ग्रन्थ ही सर्वोपरि हैं—ऋग्वेद-अथर्व और शतपथ ब्राह्मण।

अथर्व में २० काड ७६० सूक्त और ६०१५ छन्द हैं। इसमें १८०० ऋचाएँ ऋग्वेद में ली गयी हैं। अथर्व वेद के ऋषियों के नाम पृथक् नहीं दिये गये हैं। प्रत्येक मडल में कई अनुवाक् हैं, प्रत्येक अनुवाक् में कई सूक्त हैं, प्रत्येक सूक्त में कई ऋचाएँ हैं। स्त्रियों के वर्णन इसमें कम हैं। झाड़ने-फूंकने के मन्त्र अधिक हैं। अथर्व में जुए के भी सूक्त हैं। विश्वकर्मा को जगत का रचयिता कहा गया है। गाय और बैल के मांस खाने का कथन है।[1] लड़की की अपेक्षा लड़का पैदा होना अच्छा माना गया है। कुटुम्ब में मिल-जुलकर रहने और सब में निर्वाह करने के सूक्त हैं। भेड़िया बाघ आदि दुष्ट जीवों के सूक्त हैं। स्वर्ग का वर्णन प्रचुर है। एक पूरा सूक्त ही स्वर्ग के सम्बन्ध में है। तेरहवाँ महीना लौंद का इन्द्र ने पैदा किया था। वभ्रु एक राजा था। अराज का भी वर्णन है। सूमों की निन्दा और उदार लोगों की प्रशंसा है। ब्राह्मण का महत्व और शूद्र की हीनता प्रकट की गयी है। शूद्र अपनी गुफा में आर्य का अपमान न करे। यदि दस अब्राह्मण किसी स्त्री को चाहते हों, और एक ब्राह्मण उसे चाहे तो वह उसी एक की होगी। ब्राह्मण का निरादर करने या लूटने से नाश होगा। मूंजवन, महावृष और वाल्हीक जातियाँ उत्तर-पश्चिम में रहती थीं। कहा है कि हे ज्वर, तू मूंजवन वाल्हीक, महावृष आगों और मागधों में जा। हे ज्वर, तू लम्पट, शूद्र बालिका के पास जा। गाय और ब्राह्मण की प्रशंसा है। प्रजापति-स्कम्भ, पुरुष और विश्वकर्मा के नामों से ईश्वर का वर्णन है। चीने को सविता का प्रतिरूप समझा गया है। विराज के वर्णन में ईश्वरवाद का कथन है। अंगिरावंशी जादूगर थे। किमिदिन, अलिम्न और वत्सप राक्षस थे। किलिम्ब गर्भ में बच्चे को बचाये और उसे लड़की न होने दे। केवला दवा जानने वाला होता है। असुर राक्षस है। प्रह्लाद पुत्र विरोचन था। असुर मायावी थे। द्विमूर्धा और आर्तव राक्षस थे। चित्ररथ और वसुरुचि गन्धर्व थे। वैनपुत्र पृथु थे। उनकी सब देवता सहायता करते हैं। गाय की पूजा खुर और पूंछ

---

1 काण्ड १ सूक्त २२।

की होनी चाहिए। गाय यज्ञ से निकली है। गाय क्षत्रिय की माता है, तथा विष्णु, पृथ्वी और ब्रह्मा गाय हैं। जो ब्राह्मण गाय देता है वह पुण्य करता है। कृत्या से जादूगरों के मारने की प्रार्थना की गयी है। सप्तर्षि दुनिया के स्वामी हैं। ऋषि सन्तानों की प्रशंसा की गयी है। अर्घक को रुद्र ने मारा। ब्रह्मचारी काला मृग-चर्म ओढ़े। सविता ने अपनी पुत्री सूर्या यति को दान दी। स्त्री से कहा गया है तू अपनी ससुराल में जा, सबसे मिलकर प्रेम से रह, अपने लड़कों से प्रसन्न रह, सब पर आज्ञा कर, पति से पृथक् न हो, प्रसन्न होकर रह, पति से प्रेम कर, पति के परिवार को वश में रख। सब वस्तुओं की स्वामिनी हो।

हे स्त्री, मैंने तुझे अपने घर की स्वामिनी बनाया है। सब पर दया कर, और सबसे मृदु व्यवहार रख। सास-स्वसुर से मृदु व्यवहार रख। गाय-बैलों की सुरक्षा रख, घर की सब चीजों को संभाल, ढंग से रख। सब जीवधारियों को प्रसन्न रख। प्रातःकाल पति के साथ एक ही पलंग पर जाग। वीर पुत्र उत्पन्न कर।

इन वचनों से स्त्रियों के अधिकारों पर प्रकाश पड़ता है।

व्रात्यों को स्तोत्र द्वारा आर्य बनाया गया। १०० पतवारों के जहाज होते थे। एक स्थान पर हजार वर्ष जीने की कामना की गयी है।[1] समय सात लगाम वाला घोड़ा है, सफेद किरण में सात रंग हैं। इन्द्र ने बीस राजाओं को हराया तथा सुश्रव और तूर्व्व-यान को बचाया। दधीच की हड्डी के वज्र से सप्तपानी झील के निकट ७ द्रुह्यों को मारा। उशना इन्द्र के मित्र थे। रुम, रुशम और श्यापक के नाम हैं। रुशमों का राजा कौरम और ऋणंजय था। परीक्षित कौरव्यों में श्रेष्ठ था। रज राक्षस था। दधि क्रवन घोड़ा विजय करता है। कृष्ण दस हजार साथियों के साथ अंशुमती तट पर छिपा था। वहीं बृहस्पति, इन्द्र और मरुत ने उसका साम्मुख्य किया। सूर्य, इन्द्र, अग्नि आदि में ईश्वर भाव कथित है। सौभरि ऋषि का कथन है—रोग, शान्ति, मृत्यु, विष, सर्पविष निवारण के बहुत मन्त्र हैं। मगध और अंग आर्य सभ्यता के किनारे पर थे।

---

१. मं० १७। सूक्त १

छठा अध्याय

वेदों पर व्यापक दृष्टि

कीथ का कथन है कि ऋग्वेद दूसरे मंडल से सातवें मंडलों तक पहले बना, पीछे प्रथम मंडल का दूसरा भाग बना, फिर प्रथम भाग। इसके बाद आठवाँ मंडल। इसके बाद आठों मंडलों से सोम पवमान सम्बन्धी ऋचाएँ निकालकर नवाँ मंडल बनाया गया। इसके बाद दसवाँ मंडल बना। बाल-ख्याखिल्य मुख्य संहिता का भाग नहीं हैं। दान स्तुति भी पीछे से जोड़ी गयी।

सामवेद के सम्बन्ध में कीथ का कहना है कि वह बहुत कुछ ऋग्वेद पर आश्रित है। पर ऐतिहासिक दृष्टि से वह सारहीन है। यजुर्वेद का गद्य प्राचीनतम वैदिक गद्य है। कदाचित् पंचविंश ब्राह्मण का गद्य इससे भी प्राचीन है। यह सामवेद का ब्राह्मण है। ऋग्वेद के ब्राह्मण उत्तरकालीन है। गोपथ ब्राह्मण, कौशिक और वैतान सूत्रों के पीछे का है।

आर्यों का अफगानिस्तान पर अधिकार था। वे कुभा (काबुलनदी) सुवस्तु (स्वात) क्रमु (कुर्रम) गोमती (गुमल) परुष्णी (रावी) के किनारे बसे। ऋग्वेद में विन्ध्य नर्मदा चीता और चावल का कथन नहीं है—सिंह और हाथी के कथन हैं, पीछे के काल में आर्य सोम के स्थान से दूर हट चुके थे, सुदास तृत्सु थे। उनके युद्ध में पाँच अप्रसिद्ध वंश सम्मिलित थे—अलिन (उत्तर पूर्वी काफिरस्थान), पक्थ (अफगान पख्तून), भलान (बोलन दर्रा), शिव और विषाणि[1]। शेष पाँच अनु द्रुह्यु, तुर्वश, यदु और पुरु हैं। युद्ध जय करने पर सुदास पलटकर भेद का सामना करता है। भेद के साथ—अज, शिग्रु और यक्ष लोग भी थे। दिवोदास, अतिथिग्व, तौर्वश, यादव और पौरवों से लड़े। शम्बर, पणि, पारावत और बृसयों से भी लड़े। कुछ युद्ध यमुना तट पर हुए। कुरु कृवि तथा भारत सृंजय परस्पर मिले थे।

---

1 इनके वर्णन महाभारत में भी हैं।

मैक्डानल्ड का मत—मैक्डानल्ड कहते हैं कि दूसरे के सातवें मंडल तक की रचना पहले हुई। शेष चारों मंडल धीरे-धीरे बने। नवाँ मंडल सबके बाद बना। इसके बाद दसवाँ।

विवेचना—दूसरे से सातवें मंडल तक ऋषियों में एक-एक घराने का प्राधान्य है। इससे ये मंडल तो अल्पकाल ही में बने हैं, पर दसवें मंडल में तो अनेक प्राचीन ऋषि हैं। तीसरे और सातवें मंडल में सुदास का वर्णन है, जो पुरु के वंशधरों में ४०वीं पीढ़ी पर था। चाक्षुप मनु तो वैवस्वत से भी पहले के हैं। सुदास का ययाति के वंशधरों से युद्ध हुआ। दसम मंडल में ययाति के सूक्त हैं। इससे पाश्चात्यों का यह पूर्वा पर सम्बन्ध का मत ठीक नहीं है।

दसवें मंडल की कुछ ऋचाएँ तो अवश्य ही तीसरे और सातवें मंडलों से पुरानी हैं। आठवें-नवें और दसवें मंडलों की वर्तमान स्थिति वेदव्यास कृत हैं। अतः इनमें अनेक नयी-पुरानी रचनाएँ मिली हुई हैं। इसलिए—पहले, आठवें, नवें और दसवें मंडलों का पूर्वा पर क्रम स्थिर नहीं हो सकता।

दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे और सातवें मंडलों की स्थिति बिल्कुल जुदा है। इन मंडलों में ऋषियों में से बहुतों ने बहुत से सूक्त बनाये हैं। इससे अनुमान होता है कि दूसरे से सातवें तक के रचनाकाल में ऋषि ऋचाओं के निर्माण में अधिक तत्पर हो गये थे। इस प्रकार पहले, आठवें, नवें और दसवें मंडलों में तो सम्पादन द्वारा नये-पुराने सूक्तों का विषयानुक्रम से संग्रह है—और शेष छै मंडल मुख्य-मुख्य ऋषियों के घरानों के हैं। सबसे अधिक ऋग्वेद की ऋचनाएँ राम काल में बनी हैं, जो त्रेता का अन्त है। दपम मंडल के अधिकांश भाग द्वापर के अन्त तक बनते रहे हैं।

सबसे पहला पद्य और गद्य—

संसार का सबसे पहला पद्य ऋग्वेद में है, और संसार का सबसे पहला गद्य यजुर्वेद में। उसके बाद का गद्य ब्राह्मण ग्रन्थों में। ऋग्वेद की सबसे पुरानी प्रति शाक्ल-शाखा भी मिलती है, जिसमें सब मिलाकर १०२८ सूक्त हैं।

ऋग्वेद में ३३ देवता हैं। विश्वामित्र ने यह संख्या ३३३९ कर दी थी। पीछे पुराणों में वह बढ़कर तैंतीस करोड़ हो गयी। वेद में प्रतिमा पूजन नहीं है। प्राचीन काल में वरुण की महत्ता थी, पीछे इन्द्र की हुई। सरस्वती पहले पवित्र नदी मानी जाती थी, बाद में गंगा मानी जाने लगी। सरस्वती वाग्देवी हो गयी। पौराणिक काल में वह ब्रह्मा की पत्नी हो गयी। सोम पहले एक मादक रस था, पीछे वह चन्द्रमा में अभिप्रेत हो गया।

व्यावहारिक बातें—आर्यो के जलयान समुद्र पर चलते थे। सोने के सिक्के को निष्क कहते थे। सुरापान और जुआ खेलने का शौक था। सिंह, महिष, हंस, शुक, मयूर, काक, सर्प के उल्लेख ऋग्वेद में हैं। आर्य यमुना तट पर रहते थे, ऐसा

ऋग्वेद में आया है। अश्वत्थ की महिमा है। वड वृक्ष ऋग्वेद में नहीं है, अथर्व में केवल दो स्थानों में है। गाय आर्यों की मुख्य सम्पत्ति थी। अवस्ता में भी उसकी महिमा है। धीरे-धीरे गौ की महिमा बढ़ी। परन्तु विवाह आदि काल में उसका वध होता था, बैलों का अधिक। यजुर्वेद में गौ हिंसक को प्राण-दंड-विधान है, पर यज्ञों में वह बलि दी जाती थी। अथर्व में उसकी पूजा होती थी। घरों में लकड़ी अधिक लगती थी। राजा का पद उत्तराधिकार से मिलता था। राजा को कर प्रजा स्वेच्छा से देती थी। राजा समितियों द्वारा निर्णय करते थे। पहले कोई भी ऋषि यज्ञ का पुरोहित हो जाता था—पीछे वह जाति बन गयी। यजुर्वेद जन्म को महत्व देने लगा, अथर्व में ब्राह्मण की महत्ता अधिक बढ गयी। नहरें भी थीं। पराजित देश को तत्काल अभयदान मिलता था। धनुष, बाण, तलवार, ढाल, शरीरत्राण, शिलाप्रक्षेपक अस्त्रों से युद्ध होता था। बिना भाई की कन्या का नाम पुरुष के समान रखा जाता था। घोडों से भी हल जोता जाता था। स्त्रियाँ कभी-कभी सती होती थीं। लोग धनवान थे। मृत की भस्म गाड दी जाती थी।

सातवाँ अध्याय

वेदों में महत्वपूर्ण वर्णन

श्वासोच्छ्वास-विज्ञान—श्वास और उच्छ्वास ये दो वायु हैं। भीतर जाने वाला श्वास है—वह बल देता है और जो बाहर आने वाला उच्छ्वास है, वह दोषों को दूर करता है। इस प्रकार दोष दूर करने और बल बढ़ाने के कारण प्राणी जीवित रहते हैं। (ऋ० १०।१३७।२)

शुद्ध वायु—शुद्ध वायु रोग दूर करने वाला औषध है। वही हृदय और मन को शान्ति देने वाला है। आनन्द प्रसन्नता उसी से प्राप्त होती है। दीर्घायु भी उसी से प्राप्त होती है। (ऋ० १०।१८।१)

दीर्घायु रहस्य—हे प्राण नीति ! घी पीकर, प्रकाश में रहकर और सूर्य के दर्शन करके हम तेरी रक्षा करें। हमारे मन दीर्घ जीवन के लिए दृढ़ हों। (ऋ० १०।५६।५)

दूध पीना—गाय का ताजा दूध उत्तम है। जो पकाने पर पक्व होता है। जो नवीन होता है वही पदार्थ अच्छा होता है। दोपहर के भोजन के साथ दही खाना और उत्तम पुरुषार्थ करना चाहिए। (ऋ० १०।१७८।२)

दान—जो दुर्बल, रोगी भिखारी को अन्न देता है वही सच्चा भोजन करता है। उसके पास योग्य समय पर दान के लिए अन्न की कमी नहीं रहती और विपत्ति से उसकी रक्षा होती है। (ऋ० १०।११७।३)

तीन गुण—मित्रता, न्याय और वीरता ये तीन गुण मनुष्य में होने चाहिए। (ऋ० १०।१८५।१)

दरिद्रता का नाश करो—हे धनहीन विरूप, कुरूप और सदा रोने वाली दरिद्रा ! निर्जन पर्वत पर जाओ। नहीं तो वज्र के समान दृढ़ अन्तःकरण वाले मनुष्य के पराक्रम से हम तेरा नाश कर देंगे। (ऋ० १०।१७५।१)

कारीगर दरिद्रता का नाश करता है—जो कारीगर है वह दरिद्रता रूपी समुद्र को सरलता से पार करता है। इसलिए कारीगर बनो। (ऋ० १०।२२५।३)

लौह का कारवार—जब लोह के कारखाना विशेष पुरुषार्थ के साथ खोले जावेंगे तब ऐश्वर्य का शत्रु दारिद्रय पानी के बुलबुलों की तरह स्वयं ही नष्ट हो जायेगा। (ऋ० १०।१५५।४)

जुआ खेलने का परिणाम—यह मेरी स्त्री मुझे कष्ट नही देती थी, न कभी क्रोध करती थी तथा अपने परिजनो के साथ मुझसे प्रेम करने वाली थी, जुए के कारण मुझे वह भी गँवानी पडी। (ऋ० १०।३४।२)

जिसके ज्ञान और धन का नाश जुआ करता है उसकी स्त्री का दूसरे ही उपभोग करते '। माता-पिता और भाई उसके विषय मे कहते हैं कि हम इसको नहीं जानते—इसे बाँधकर ले जाओ। (ऋ० १०।३४।४)

ये जुए के पासे नीच होने पर भी ऊँचे हैं। इनके हाथ न होने पर भी हाथ वालों को हराते हैं। चौकी पर फेंके हुए ये पासे जलते हुए अंगारे हैं, जो स्वयं शीतल होने पर भी हृदय को जलाते हैं। (ऋ० १०।३४।९)

जब जुआरी दूसरो की युवती पत्नियो को, महल अटारियों को और ऐश्वर्य को देखता है, तब उसे बडा सन्ताप होता है। जो जुआरी प्रातःकाल सुसज्जित घोडों की जोडी पर सवार था, वही पापी अग्नि तापकर रात काटता है। (ऋ० १०।३४।११)

पुरुषार्थ धर्म—इस लोक मे कर्म करते हुए सौ वर्ष जीवे। यही तेरे लिए एक मार्ग है। कर्तव्य पर डटे रहने से मनुष्य दोष मे लिप्त नही होता। (य० ४०।२)

ईश्वर की प्रतिमा नही है—जिसका महान नाम प्रसिद्ध है उसकी कोई प्रतिमा नहीं है। (य० ३२।३)

उससे प्रथम कुछ न था। उसने सब भुवनो को बनाया। वह प्रजापति, प्रजा के संग रहने वाला, और सोलह कला युक्त तीनो तेजो को धारण करता है। (य० ३२।५)

३३ देवता—जिसके अंगों मे ३३ देव सेवा करते हैं उसे केवल ब्रह्म ज्ञानी ही जान सकता है। (अ० १०।७।२७)

राष्ट्र मे वर्णों की उन्नति—हे ब्राह्मण, हमारे राज्य मे ब्राह्मण ज्ञान-युक्त और क्षत्रिय शूर हों। दुधारू गायें बैल व चपल घोडे और विद्वान् स्त्रियाँ हों, यज्ञकर्त्ता का पुत्र शूर विजयी और सभा मे चमकने वाला हो, योग्य समय पर मेह बरसे। वनस्पतियाँ फलों से भरपूर हों। (य० २२।२२)

कान छेदना—लोहे की सुई से जैसे अश्विनी कुमारो ने दोनो कानो को छेदा था, जो कि वह प्रजा सूचक था, वैसा ही वेधन तुम भी करो। (अ० ६।१४२)

वाणिज्य—हे देवो ! मूलधन से धन की इच्छा करने वाला मैं जिस धन से व्यापार चलाता हूँ, वह मेरा धन वहुत होवे, कम न हो। (अ० ३।१५)

जिस धन से मैं व्यापार करता हूँ उसके द्वारा उससे अधिक की मैं कामना करता हूँ। (अ० ३।१५)

कवूतर से दूत का काम—इशारे से उड़ाया हुआ कवूतर वड़े मार्ग से यहाँ आया है। हम उसका सत्कार करें और उसे लौटाने की तैयारी करें। (अ० १०।१७५।१)

दूध घी—गौओं का दूध मैं काढ़ता हूँ। घी से वल वढ़ाने वाले रस को संचित करता हूँ। दूध घी से हमारे वीर तृप्त हों, इतनी गायें हमारे पास रहें। (अ० २।२६।४)

गृहस्थ—हमारे घर में दूध, घी, धान्य, पत्नी, वीर-पुरुष, और रस हैं। (अ० २।१६।५)

ऋण निन्दा—इस लोक और परलोक में कहीं हम ऋणी न हों। (अ० ६।११७।३)

नौका वर्णन—उत्तम रक्षा के साधनों से युक्त, विस्तृत, न टूटी हुई, सुख देने वाली, अखंडित, उत्तमता से चलती हुई, दिव्य, सुन्दर वल्लियों वाली, न चूने वाली नाव पर हम चढ़ें। (अ० ७।६ (७)३)

हमारे घरों में कभी न गलती करने वाला कवूतर मंगल मूर्ति होकर रहे और समाचार ले जाने का काम करे। (ऋ० १०।१६५।२)

उत्तम विचार के साथ कवूतर को भेजिये और प्रसन्नता के साथ आवश्यक सन्देशा भेजिये। यह कवूतर लौटकर हमारे सन्देहों को दूर करेगा। (ऋ० १०।१६५।५)

संयम—आचार्य और राष्ट्रपति को संयम और ब्रह्मचर्य से रहना शोभा देता है। जो संयमी राजा होता है, वही इन्द्र कहाता है। (अ० ११।५।६७)

राजा ब्रह्मचर्य के ही तेज से राष्ट्र की रक्षा करता है और आचार्य ब्रह्मचर्य ही के वल पर विद्यार्थियों को ब्रह्मचारी वना सकता है। (अ० ११।५ (७)

ब्रह्मचर्य से और तप से देवताओं ने मृत्यु को जीता। (अ० ११।५ (७)

विवाह—हे तपोनिष्ठ ब्रह्मचारी ! तुझ सुन्दर को मैंने मन से वर लिया। (ऋ० १०।१८३।१)

हे वधू ! तू अपने सुन्दर शरीर का ऋतुकालीन संयोग चाह ! मैं तुझे मन से चाहता हूँ, मुझसे विवाह करके सन्तान उत्पन्न कर। (ऋ० १०।१८३।२०)

विवाह की कामना वाली कितनी ही स्त्रियाँ पुरुष की मीठी-मीठी वातों में वहक कर उनके अधीन हो जाती हैं परन्तु कुलवती (भद्रा) स्त्री सभा के वीच में ही पति को चुनती हैं। (ऋ० १०।२१।१२)

बिन दुही गाय की तरह अविवाहिता युवतियाँ जो कुमारावस्था त्याग चुकी हैं वे नवीन ज्ञान से पूर्ण होकर गर्भ धारण करती हैं। (ऋ० ३।५५।१६)

औषधि—जो औषधियाँ देवों से तीन युग प्रथम उत्पन्न हो गयी थी उनकी एक सौ सात जातियाँ हैं। (ऋ० १०।९७।२)

औषधियाँ सोमराज से कहती हैं कि सच्चा वैद्य जिस रोगी के लिए हमारी योजना करता है उस रोगी को रोग से हम मुक्त कर देती हैं।

(ऋ० १०।९७।२२)

एक समय में दो पत्नी निषेध—जैसे रथ का घोड़ा दो धुरों के बीच में दबा हुआ हिनहिनाता चलता है, वैसे ही दो स्त्रियों वाले की दशा होती है।

(ऋ० १०।१०१।११)

अतिथि सत्कार—जो अतिथि से प्रथम खाता है वह घर का सुख, पूर्णता, रस, पराक्रम, वृद्धि, प्रजा, पशु, कीर्ति, श्री, ज्ञान को खाता है। (अ० ९।६।३)

अतिथि के आने पर स्वयं खड़ा हो जाय और कहे कि हे व्रती ! आप कहाँ से पधारे हैं ? यह जल है आप तृप्त हूजिये, जो वस्तु चाहिए वह लीजिये, आपकी जो इच्छा होगी वही की जायेगी। (अ० १५।११।१-२)

गृह व्यवस्था—यहाँ मैं पक्का घर बनाता हूँ। यह घर सुरक्षित रहे। इसमें हम सब घर के शूर, निरोगी पुरुष रहेंगे। (अ० ३।१२)

इसी घर में गाय, घोड़ों का भी प्रबन्ध होगा। यह घर घी, दूध, अन्न और शोभा से पूर्ण रहेगा। (अ० ३।१२)

इस घर में बहुत घृत होगा। धान के कोठे होंगे। इस घर में बछड़े और बच्चे खेलेंगे और शाम को कूदती गायें आवेंगी। (अ० ३।१२)

वीर पुरुष—ओ मनुष्यों के हितैषी ! तेरी बाहुओं में कल्याणकारी धन है। छाती पर तेज का भूषण है। कन्धों पर माला और शस्त्रों में तेज धार है। पक्षी के पंखों के समान तेरे बाणों की शोभा है। (ऋ० १।११६।१०)

वे वायु के समान बलिष्ठ, युगल भाई के समान एक-सी वर्दी वाले, सुन्दर भूरे और लाल रंग के घोड़ों पर बैठने वाले, निष्पाप शक्तिवान्, स्वदेशी वस्त्र पहने मरने के लिए तैयार वीर हैं, इसलिए वे आकाश के समान विशाल हैं।

(ऋ० ५।५७।४)

धनुर्युद्ध—गोह के चमड़े का दस्ताना सर्प की तरह मेरे हाथ से लिपटकर धनुष की डोरी की चोट से मेरे हाथ की रक्षा करता है। (ऋ० ६।७५।१४)

हमारे रथ के पहिये, धुरे, घोड़े और लगाम सब मजबूत हैं।

(ऋ० १।३८।१२)

वैद्य—जो सब औषध को सभा में एकत्रित राजाओं की तरह सजाकर रखे—वही वैद्य है। (ऋ० १०।९७।६)

रक्षा के उपाय—हे ज्ञानियो ! उत्तम भाषण कीजिये, ज्ञान और पुरुषार्थ फैलाइये। शत्रु से बचाकर पार ले जाने वाली नावें बनाइये, अन्न तैयार कीजिये। सब शस्त्रास्त्र तैयार रखिये। अग्र भाग में बढ़ाने का सत्कार, संगति-दान रूप सत्कर्म बढ़ाइये। (ऋ० १०।१०१।२)

खेती—हल चलाइये ! जोड़ियों को जोतिये। जमीन तैयार करने पर उसमें बीज बोइये। और धान्य काटने के हँसिये निश्चय पके हुए धान्यों में व्यवहार कीजिये, इससे भरण-पोषण होगा। (ऋ० १०।१०१।३)

कुआ—सब डोल, बालटियों को ठीक रक्खो, रस्सी को मजबूत बनाओ। फिर अटूट और मीठे जल के कुए से पानी सींचो। (ऋ० १०।१०१।५)

गोशाला—गायें स्वच्छ वायु में घूमें और स्वच्छ जल पीवें तथा पुष्टि कर औषधियाँ खाकर पुष्ट होवें और हमें अमृत समान दूध दें।

(ऋ० १०।१६९।१)

वीर का लक्षण—उत्तम वीर वह है जो शत्रुओं को दूर भगाता है और सबकी प्रशंसा अपनी ओर खींचता है। सबको उचित है कि वे उत्तम वीरों की ही प्रशंसा करें। (ऋ० ६।४५।६)

सूत कातना—सूत कातकर, उसे रंगकर, उसकी गाँठों को दूर करके, उसका कपड़ा बुनो—यह तेजस्वियों का मार्ग है। (ऋ० १२।५२।६)

एक मनुष्य ताना फैलावे दूसरा बाना खोले। इस तरह हम इस अच्छे मैदान में बुनायी करें। ये खूटियाँ हैं जो बुनने के स्थान में लगायी हैं, ये सुन्दर पलियाँ हैं जो बाने के मतलब की हैं। (ऋ० १०।१३०।२)

राजा—राजा गमनशील राष्ट्रों का स्वामी है इसलिए इसके पास सब प्रकार का क्षात्र तेज रहे।

राज-समिति—हे राजन् ! तू दृढ़तापूर्वक शत्रुओं का नाश कर। राज्य भर के श्रेष्ठ जन मिलकर तेरी स्थिरता के लिए समिति बनावें।

शरीर दाह—हे जीव ! तेरे प्राण विहीन मृत देह की सद्गति करने के लिए इस गार्हपत्य और आह्वनीय आग को तेरे देह में लगाता हूँ। इन दोनों अग्नियों द्वारा तू परलोक की श्रेष्ठ गति को प्राप्त हो। (अ० १८।२।५६)

सुराज्य—उदार और दूरदर्शी सज्जन मिलकर सुराज्य की व्यवस्था करें। (ऋ० ५।६६।६)

राज्याभिषेक के समय उपदेश—हे राजा ! तेरा आह्वान है। तू आ, स्थिर रह, चंचल न हो, सब प्रजा तुझे चाहे और तुझसे राष्ट्र की हानि न हो। (ऋ० १०।१७३।१)

राजा के योग्य गुण—व्रती, सत्यधारी, तेजस्वी, और सुकर्मा ही राजा होना चाहिए। (ऋ० ८।२५।८)

मूर्ख—कोई कोई पुरुष सभाओं में अग्र भाग और सब कामों में प्रतिष्ठा पाने का कपट रखते हैं, परन्तु वे दुग्धरहित गाय के समान केवल छल-कपट युक्त होते हैं और अपनी मिथ्या विद्वत्ता दिखाकर मूढ़ प्रजा को ठगते हैं।

(ऋ० १०।१९८।५)

पुरुष से स्त्री श्रेष्ठ—यह प्रसिद्ध है कि बहुत-सी पतिव्रता स्त्रियाँ पुरुष से अधिक धर्म में दृढ़ और प्रशंसनीय होती हैं।

स्त्री को यज्ञ का अधिकार—हे विद्वान स्त्री पुरुषो! जो स्त्री-पुरुष एक मन होकर यज्ञ करते हैं, वे ईश्वर के निकट पहुँचते हैं और ईश्वर के आश्रम में रहते वे सुखी होते हैं। (ऋ० ८।३१।५)

मांसाहारी को दण्ड—जो दुष्ट मनुष्य या घोड़े या अन्य पशु के मांस को खाकर अपना पोषण करता है जो अहिंसनीय गाय के दूध को हरता है—उसका सिर काट लिया जाये। (ऋ० १०।१७।१६)

जीवात्मा-परमात्मा—अभिन्न जो भिन्न की तरह या दो पक्षियों की तरह एक ही वृक्ष पर साथ रहते हैं, उनमें एक फल खाता है—दूसरा नहीं खाता।

(ऋ० १।१६४।२०)

सृष्टि रचना—उस समय यह स्थूल जगत् न था। न तन्मात्रा तब ही थी। न परमाणु युक्त आकाश था। उस समय कहाँ, क्या, किससे ढका हुआ था? और किसके आश्रय में था। (ऋ० १०।१२८।१)

न मृत्यु थी, न अमरत्व था न रात-दिन थे। तब वही एक अपनी शक्ति में प्राण रूप था। उसके भिन्न कोई न था। (ऋ० १०।१८६।२)

तब अन्धकार-युक्त मूल प्रकृति थी और यह सब जगत् अज्ञेय अवस्था में गतिमय प्रवाह-स्वरूप था। तब शून्यता से व्यापक प्रकृति ढकी हुई थी। तब उष्णता से एक पदार्थ बना। (१०।११९।३)

तब मन की एक शक्ति थी—उस पर संकल्प हुआ। उससे जगत् बना, सत् असत चेतन और जड़ आत्मा और अनात्मा इनमें परस्पर सम्बन्ध है। यह ज्ञानियों ने जाना। (१०।१२९।४)

तीनों (जीव, ब्रह्म, और प्रकृति) के मिलन से एक प्रकाश बना।

(१०।१८९।५)

यह घर प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला, पत्नी के रहने योग्य, सुखदायक, हवा और प्रकाश से युक्त होगा। (अ० ३।१२)

मातृ भूमि—सत्य, बुद्धि, न्याय, शक्ति, दक्षता, तप, ज्ञान, और यश ये आठ गुण हमारी उस मातृभूमि की धारण की रक्षा करें जो हमें चिरकाल से पालन करने वाली है। (अ० १२।१)

जिसमें नदी, जलाशय आदि बहुत हैं, खूब खेती होती है जो जीवित मनुष्यों की चहल-पहल से भरी हुई है, वह मातृभूमि हमारी रक्षा करे। (अ० १२।१)

विधवा का पुनर्विवाह—हे पुरुष ! यह वैवाहिक अवस्था को स्वीकार करने की इच्छा रखने वाली स्त्री सनातन धर्म का पालन करती हुई तेरे पास आती है। इसे सन्तान और धन दे। (अ० १८।३।१)

हे स्त्री ! तू इस मृतप्रायः पति के पास पड़ी है, यहाँ से उठकर जीवित मनुष्यों के पास आ। तेरे पाणिग्रहण करने वाले पति के साथ इतना ही पत्नीत्व सम्बन्ध था। (अ० १८।३।१)

मृत पति से सम्बन्ध छुड़ाकर जीवित तरुणी स्त्री का विवाह किया गया है, ऐसा देखा है। जो गाढ़ अँधेरे शोक से आच्छादित थी, उस अलग पड़ी स्त्री को मैंने ग्रहण किया है। (अ० १८।३।४)

पत्नी कर्म—ये तमाम सुशोभित स्त्रियाँ आ गई हैं, हे स्त्री तू उठकर खड़ी हो, बल प्राप्त कर, उत्तम पत्नी बनकर रह। उत्तम सन्तान वाली होकर रह। यह गृह यज्ञ तेरे पास आ गया है। इसलिए घड़ा ले और घर का काम कर। (अ० ११।१।५)

शुद्ध, गौरवर्ण, पवित्र, निर्मल और पूज्य बनकर अपने गृह-कृत्य में दत्तचित्त हो।

गोली मारना—सीसे के लिए वरुण का आदेश है अग्नि भी उसमें है। इन्द्र ने वह सीसा मुझे दिया है। वह डाकुओं का नाश करने वाला है। (अ० १।१६।२)

यह सीसा डाकुओं को हटाता है और शत्रुओं को हटाता है। पिशाचादि क्रूर जातियों को मैं इसी से जीतता हूँ। (अ० १।१६।३)

यदि हमारे गौ या घोड़े की हिंसा करेगा तो तुझको सीसे की गोलियों से हम वेध डालेंगे। अब हमारे वीरों का कोई नाश न कर सकेगा। (अ० १।१६।४)

युद्ध—हे शूर ! बाण तुम्हारे बाहु और धनुष तुम्हारे पराक्रम हैं। तलवार और परशु आदि शस्त्र सब शत्रुओं पर प्रगट कर दो। (अ० ११।९ (११) १)

हे मित्रो ! उठो और योग्य रीति से तैयार हो जाओ और अपने मित्र पक्ष के मनुष्यों को सुरक्षित करो। (अ० ११।९।२)

हे वीरो ! उठो ! पकड़ने और बांधने के तमाम उपायों का संग्रह करके शत्रु पर चढ़ाई का प्रारम्भ करो, धावा बोल दो। (अ० ११।९।३)

हे शूरो ! तुम्हारा सेनापति भागने वाले शत्रुओं के मुखियों को चुन-चुन-कर मारे। इन में से कोई बचने न पावे। (अ० ११।९ (१८) ८)

शत्रुओं के दिल दहल जायें, प्राण उखड़ जाएँ, मुंह सूख जायें, परन्तु हमें विजय प्राप्त हो। (अ० ११।९ (११) २)

जो धैर्यशाली हैं, जो धावा बोलने वाले हैं, जो प्रचण्ड वीर हैं, जो धुएँ के अस्त्र का उपयोग करते हैं, जो शत्रुओं का छेदन-भेदन कर डालते हैं, उन सबकी सेना तैयार करो। (अ० ११।६।२२)

हे सैनिक मैं जानता हूँ कि रक्त-पताकाओं के उड़ाने वाले आप ही विजय करेंगे। (अ० ११।१० (१८) २)

कवच और बिना कवच वाले, झिलमिल वाले शत्रु ये मरे पड़े हैं और कुत्ते उन्हें खा रहे हैं। (अ० ११।१०(१२) २४)

धूमास्त्र—हे मरुत गण! शत्रुओं की यह जो सेना हम पर चारों ओर से बढ़ती चली आती है, उसे प्रबल धूम्रास्त्र से छिन्न-भिन्न कर डालो।

(अ० ३।२।५)

क्षय की सूर्य चिकित्सा—जिस क्षय से अंग शिथिल हो जाते हैं, उस यक्ष्मा (तपेदिक) का तमाम विष जो पाँव, जानु-श्रेणी, पेट, कमर, मस्तक, कपाल, हृदय आदि अवयवों में रहता है, सूर्य की किरणों से नष्ट हो जाता है।

(अ० ६।८।८ (१३)

हे क्षय रोग! तू अपने भाई कफ और बहन खाँसी के साथ तथा भतीजी खाज के साथ किसी मरने वाले के पास जा। (अ० ५।२२।१२)

डरे मत! तू मरेगा नहीं, तुझे दीर्घ जीवन देता हूँ। तेरे अंगों से ज्वर को निकाले डालता हूँ और क्षय रोग को तेरे अंगों से दूर करता हूँ।

(अ० ५।३०।८)

मुलहटी के गुण—यह मुलहटी मीठी है और मच्छरों का नाश करती है। तथा टेढ़ेपन की बढ़िया दवा है। (अ० ११५६।२)

रोहणी के गुण—रोहणी टूटी हड्डी को भर देती है इससे माँस-मज्जा भी जुड़ जाते हैं। (अ० ४।२२)

यदि कटारी से अंग कट गया हो, या पत्थर से कुचल गया हो, तो वह अंग एक दूसरे से ऐसा जुड़ जाता है जैसे उत्तम कारीगर रथ के अंगों को जोड़ देता है।

(अ० ४।१२।७)

पीपल—पीपल उन्माद और गहरे घाव की उत्तम दवा है। देवता लोगों का कथन है कि यह औषध दीर्घ जीवन भी देती है। (अ० ६।१०६।१)

पृष्टिपर्णी—यह उग्र औषध रोग जन्तुओं का नाश करती है।

(अ० २।२५।१)

श्यामा—यह वनस्पति शरीर के रंग रूप को ठीक करती है। अनि श्वेत-कुष्ट को नष्ट करती है। (अ० २।२४।४)

दशमूल—दशमूल जड़ी संधिरोग को आराम करती है। (अ० २।७।१)

अपामार्ग—भूख-प्यास कम होना, इन्द्रियों की क्षीणता, सन्तान न होना आदि अपामार्ग से आराम होते हैं। (अ० ४।१७।६)

कीटाणु—जो कीटाणु काली वगल वाले हैं, और काले रंग वाले हैं, काली भुजा और वर्णवाले हैं तथा सब वर्ण वाले हैं उनका नाश करो।

(अ० ५।२३।५)

ये जीवन नष्ट करने वाले रोग-जन्तु नीची जगह और अँधेरे में रहते हैं।

(अ० २।२५।५)

तेज पीड़ा देने वाले, कँपाने वाले, तेज जहर वाले ये ऐसे जन्तु हैं जो आँख से दीखते भी हैं और नहीं भी दीखते हैं। (अ० ५।२३।६)

दीखने और न दीखने वाले, भूमि पर रेंगने वाले, कपोल में होने वाले क्रिमियों का मैं नाश करता हूँ। (अ० २।३१।२)

आँतों में रहने वाले, सिर के, पसलियों के कृमियों का नाश करता हूँ।

(अ० २।३२।४)

ये तीन सिर वाले, तीन कूवड़ वाले, चितकवरे हैं इन्हें नष्ट करना चाहिए।

(अ० ५।२३।६)

उदय होता और अस्त होता सूर्य क्रिमियों का नाश करता है।

(अ० ३।२।१)

तेरी आँख, नाक, कान, ठोड़ी, मस्तिष्क और जिह्वा से, तथा गले की नालियों से, अस्थि संधि से, हँसली की हड्डियों से, रीढ़ से, हृदय से, क्लोम फेफड़े से, पित्ते से, पसलियों से, गुर्दों से, तिल्ली से, जिगर से, सब रोग-बीजों को मैं निकालता हूँ। (अ० २।३३।१।२।३)

रंग चिकित्सा—तेरा पीलापन (पान्डुरोग) तथा हृदय की जलन लाल रंग में सूर्य की किरण छानकर शरीर पर डालने से दूर हो सकती है।

(अ० १।२२।१)

दीर्घायु की प्राप्ति के लिए तुझे लाल रंगों से चारों ओर से तुझे ढांपता हूँ।

(अ० १।२२।२)

लाल रंग में सूर्य की किरण छानकर शरीर पर डालने तथा लाल रंग की गाय का दूध पीने से दीर्घायु प्राप्त होती है। (अ० १।१२।३)

मूत्र रोग की दवा—शरकण्डा मूत्र के वन्ध को खोलकर अधिक मूत्र लाता है, यह हम जानते हैं।

मूत्र के लिए सलाई लगाना—तेरे मूत्रद्वार को मैं खोलता हूँ, जैसे तालाव के वन्ध को खोलने से पानी टूट जाता है वैसे ही तेरा मूत्र वाहर आवेगा।

(अ० १।३।७)

कुष्ट चिकित्सा—रजनी वनस्पति—जो काली सफेद तथा मटिया रंग की है, सफेद कोढ़ को ठीक कर देती है।

ब्राह्मण का अपमान—उग्रोराजा मन्य मानो ब्राह्मण यो जिघित्सति,
परातत्सिच्यते राष्ट्र ब्राह्मणो यत्र जीयते।
(अ० ५।१९।६)

तद्वै राष्ट्रमाश्रयति नाव भिन्नामिवोदकम्।
ब्रह्मण यत्र हिंसति तद्राष्ट्र हन्ति दच्छुना॥ (२।१९।८)

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलच वाक्चेन्द्रियच श्रीश्च धर्मश्च॥
ब्रह्म चक्षत्र च राष्ट्र च विशश्च त्विषिश्च यशश्च द्रविणच॥
आयुश्च रूपच नामच कीर्तिश्च प्राणश्चपानश्च चक्षुश्च श्रोत्रच।
पयश्च रसश्चान्ने चान्नाद्ये चर्तंचऽसत्य चेष्टच पूर्तंच प्रजाश्च पशवश्च॥
तानि सर्वाणि, अपक्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मण ज्ञामिमस्य॥
(अ० १२।५।७।८।९।१०।११)

मुण्डन—यह मुण्ड नाई छुरा लेकर आ गया है। वह जल्दी गर्म पानी लेकर आवे और मुण्डन करे। (अ० ६।७८।१)

बालों को काटे छुरा, बालों को जल मे भिजावे। इसी से बालक दीर्घायु प्राप्त करे। (अ० ६।६९।२)

उपनयन—जिस आचार्य ने हमारे यह मेखला बाँधी है उसके उत्तम शासन म हम विचरते हैं। वही हमे पार लगावे और बन्धन से मुक्त करे।
(अ० ६।१३३।१)

इस मेखला को धारण करके हम श्रद्धा, तप, तथा आप्त वचन पर मति, मेधा धारण करेंगे। हम ज्ञान और तप प्राप्त होगा। (अ० ६।१३३।४)

वस्त्र बुनना—भिन्न भिन्न रग रूप वाली दो स्त्रियाँ क्रम से छ खूँटियों वाले ताने के पास आती हैं और उनमे से एक सूत को खींचती है। दूसरी रखती है। उनम से कोई भी खराब काम नही करती। (अ० १०।१।४३)

यह जो कपड़े के छोर पर किनारियाँ हैं। और ये जो ताने-बाने हैं सो सब पत्नियों द्वारा बुने हुए हैं। यह सब हमारे लिए सुख कारक है।
(अ० १४।२।५१)

मनस्वी लोग सीसे के यन्त्र से ताना फैलाकर मन से वस्त्र बुनते हैं।
(अ० १९।८)

राज्य-व्यवस्था—सृष्टि के प्रारम्भ मे केवल एक राजा से रहित प्रजाशक्ति ही थी। इस राजविहीन अवस्था को देखकर सब भयभीत हो गए और सोचने लगे कि क्या यही दशा सदैव रहेगी।

यह प्रजाशक्ति उत्क्रान्त हो गयी, और गृहपति में परिणत हो गयी, अर्थात् जो अलग-अलग मनुष्य थे उनके व्यवस्थित कुटुम्ब बन गए।

यह भी प्रजाशक्ति उत्क्रान्त हो गयी और सभा के रूप में परिणत हुई। सभा में जो प्रविष्ट होता वह सभ्य कहलाता था।

वह भी प्रजा शक्ति उत्क्रान्त हो गयी और तब समिति (चुनाव सभा) बनाई। उसके सदस्य सामित्य, कहलाये।

वह भी प्रजा शक्ति उत्क्रान्त हो गयी और आमन्त्रण (मन्त्रिमंडल) में परिणत हुई। इसके सभ्य मन्त्री कहाये।

(अ० ८।१०, १।२।१।८।९।१०।११।१२।१३)

फिर राजा बनाया गया, वह सबको रंजन (प्रसन्न) रखता था इसलिए राजा नाम पड़ा। (अ० १५।९।३)

वह प्रजाओं के अनुकूल आचरण करता रहा। उसके पास सभा, समिति, सेना और खजाना भी हो गया। (अ० १५।९।३)

जात कर्म—सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री अपने अंगों को भली-भाँति कोमल बनावे, और हम उसके लिए प्रसूति-गृह की व्यवस्था करें। हे जच्चा (सुपणे !) प्रसन्न हो। (१।११।३)

हे स्त्री ! मैं तेरे गर्भ-मार्ग और योनि को तथा योनि के पास वाली नाड़ियों को फैलाती हूँ, इससे गर्भ सरलता से बाहर आवेगा। फिर मैं जरायु से कोमल बालक और माता को अलग करूँगा। (अ० १०।११।६)

अन्न-प्राशन—हे बालक ! तेरे लिए जौ और चावल कल्याणकारी और बलभागी हों तथा मधुर स्वाद वाले हों। ये क्षय को नहीं होने देते।

(अ० ८।२।१८)

हे पुष्ट जाँघों वाली बुद्धिमती ! गर्भ को ठीक-ठीक धारण कर। पुष्टि दाता का रज-वीर्य तेरे गर्भ को यथावत् पुष्ट करे। (अ० ५।२५।३)

प्राण और अपान तेरे गर्भ को पुष्ट करें, सत्पुरुष और विद्वान् तेरे गर्भ को पुष्ट करें। इन्द्र और अग्नि तेरे गर्भ को पुष्ट करें। (अ० ६।१७।४)

राजा वरुण जिस दिव्य औषधि को जानता है उस गर्भ-कारण-औषधि को तू पी। (५।२५।६)

पुंसवन—हे स्त्री ! जिस कारण तू बाँझ हो गयी है उस कारण को हम तुझ में से नष्ट करते हैं। (अ० ३।२३।१)

हे स्त्री ! मैं तेरा पुंसवन कर्म करता हूँ जिससे तेरा गर्भ योनि में आ जावे।

(अ० ३।२३।५)

पुंसवान क्रिया गया। शमी (छोकर) और अश्वत्थ (पीपल) दिया गया। अब इसे पुत्र प्राप्त होगा। (अ० ६।११।१)

सौभाग्य के लिए तेरा हाथ पकड़ता हूँ। मुझ पति के साथ बुढ़ापे तक रह। प्रतिष्ठित और नम्र पुरुषों ने तुझे मुझे दिया है, केवल गृह-कृत्यों के लिए।
(अ० १४-१-५)

हम सीधे उस मार्ग पर चलेंगे जिसमें वीरत्व को दाग न लगे और धन प्राप्ति भी हो।
(अ० १४-२-८)

हे प्रिय दृष्टि वाली! पति की रक्षिका, सुखदायिनी, कार्य-निपुणा, सेवा करने वाली, नियमों का पालन करने वाली, वीर पुत्र उत्पन्न करने वाली, देवरों से स्नेह रखने वाली तू हो।

गर्भाधान—पुत्रकामा स्त्री ने जिस पति को धारण किया है, उससे ईश्वर की कृपा से पुत्र प्राप्त होगा।
(अ० ६।८१।३)

पुरुष जननेन्द्रिय गर्भ में वीर्य का धारण करने वाली है। यह इन्द्रिय मेरुदण्ड मस्तिष्क और अंग से इकट्ठे किये वीर्य को बाण में पंख की तरह योनि में फेंकता है।

कन्यादान—हे वर! यह वधू तेरे कुल की रक्षा करने वाली है, इसे तेरे लिए दान करता हूँ। यह सदा माता-पितादिकों में रहे और अपनी बुद्धि से उत्तम विचारों को उत्पन्न करे।
(अ० १।१४।२)

पत्नी-धर्म—ये सब सौभाग्यमान स्त्रियाँ आ गयी हैं। स्त्री तू उठ, बल प्राप्त कर, पति के साथ उत्तम पत्नी बनकर और पुत्रवती होकर रह। यज्ञ कर और घड़ा लेकर जल भर।
(अ० १२।१।१४)

यहाँ ही तुम दोनों रहो। अलग मत हो। पुत्र और नातियों के साथ खेलते हुए अपने उत्तम घर में दीर्घ काल तक आनन्द प्राप्त करो। (अ० १४।१।२२)

जिस प्रकार बलवान समुद्र ने नदियों का साम्राज्य उत्पन्न किया है, इसी प्रकार तू पति के घर जाकर सम्राट् की पत्नी बन। (अ० १४०।१।४३)

अपने श्वसुर, देवर, ननद और सासू के साथ महारानी होकर रहे।
(अ० १४।१।४४)

आठवाँ अध्याय

१. ब्राह्मण

ब्राह्मण ग्रन्थ भारतीय इतिहास के मूल स्रोत हैं। कृष्ण यजुर्वेद की काष्ठक-मैत्रायणीय, कपिष्ठल और तैत्तिरीय शाखाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रकाश प्राचीन इतिहास पर डालती हैं। इन संहिताओं में प्राचीन देवासुर संग्रामों के छोटे-बड़े वर्णन हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी ऐतिहासिक देवासुर संग्राम वर्णित है। कालक्रम की दृष्टि से ब्राह्मणों को इस प्रकार रखा जा सकता है--

(१) ताण्ड्य ब्राह्मण—अति प्राचीन हैं।

(२) दिवाकीर्त्या ब्राह्मण—प्राचीन हैं।

(३) ऐतरेय ब्राह्मण—इसमें नग्नजित् गांधार का वर्णन है।

(४) शांखायन और कौशीतकि ब्राह्मण—ऋग्वेद का ब्राह्मण है।

(५) कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय और काठ्ठक ब्राह्मण। सामवेदीय जैमिनि और ताण्ड्य ब्राह्मण।

(६) शुक्ल यजुर्वेद का वाजसनेयी ब्राह्मण। इसके अवान्तर माध्यन्दिन शतपथ और काण्व शतपथ और कात्यायन शतपथ हैं।

(७) गोपथ ब्राह्मण।

प्रथम पाँच ब्राह्मण लगभग एक ही काल में बने हैं। इनके प्रवक्ता व्यास हैं।[1] ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचन ५० वर्ष वाद हुआ है। वाजसनेयी ब्राह्मण इसके कुछ वाद का है। गोपथ सबके वाद का।

ब्राह्मण प्रथम वेदांग है। अब ये ७० की संख्या में मिलते हैं। कहा जाता है—अनेक लुप्त हो गये हैं। कृष्ण यजुर्वेद में मूल के आगे उसकी व्याख्या भी दी गयी हैं, जो गूढ़ अर्थो को प्रकट करने के लिए हैं। ये व्याख्याएँ भिन्न-भिन्न धर्मा-

---

१. यो विद्या च्चतुरोवेदान् सांगोपनिषदो द्विजः।
पुराणं चेन्न संविद्यान्न स स्याद् सुविचक्षणः। (व्यास)

शाखों की हैं। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण हैं। ये ब्राह्मण एक-दूसरे से अनेक बातों में मिलते हैं, ऐतरेय के अन्तिम दो अध्याय कौशीतकी में नहीं हैं। कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय और शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण है। सामवेद के ताण्ड्य व पंचविंश ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण और छान्दोग्य हैं। अथर्व का ब्राह्मण गोपथ है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में गंगा की घाटी में रहने वालों कुरु विदेह-पांचाल और कौशलों का अच्छा वर्णन है। ब्राह्मणों से ब्राह्मणों में जो नई जाति पुरोहितों की बन गई थी, उसका महत्त्व प्रकट होता है। उपनिषदों के उदय तक लोग ब्राह्मण ग्रन्थों को अपौरुषेय मानते रहे। ब्राह्मण विस्तृत प्राचीन गद्य में लिखे गये हैं। ब्राह्मणों में यज्ञाडम्बरों, आचारों और यज्ञ विधियों का वर्णन है। यज्ञों से सम्बन्धित छोटी बात भी विस्तार से बताई गयी है। ब्राह्मणों में पंजाब जैसे भूल-सा गया है।

शतपथ बहुत बड़ा ग्रन्थ है। इसके रचयिता याज्ञवल्क्य हैं। परन्तु यह ग्रन्थ एक सम्प्रदाय की परम्परा से बना प्रतीत होता है, जो भिन्न-भिन्न समय में बना। यजुर्वेद के प्रथम के १८ अध्याय प्राचीन कहे जाते हैं और इस ब्राह्मण के ६ काण्ड जिनमें १८ अध्यायों की व्याख्या है, सबसे पुराने हैं। शेष ५ काण्ड प्रथम ६ काण्डों के पीछे के समय के हैं। अथर्व का गोपथ ब्राह्मण आधुनिक प्रतीत होता है। इसमें विविध विषयों का वर्णन है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक ऐतिहासिक संकेत हैं, परन्तु उनका पूर्ण विवरण पुराणों के साथ अध्ययन करने से मिलता है। व्यास ने कहा है कि जो कोई सांगोपांग वेदों को तो पढ़े, परन्तु पुराणों का अध्ययन न करे—वह विद्वान नहीं हो सकता।[1] इसी प्रकार केवल पुराणों के आधार पर बिना ब्राह्मण ग्रन्थों की सहायता के कोई मत स्थिर नहीं हो सकता। आज तक भारतीय या अभारतीय इतिहास लेखकों ने पुराणों के आधार पर इतिहास विवेचन किया है, उनमें से किसी ने भी ब्राह्मण वाक्यों से उसकी जाँच नहीं की। अतः उनके ऐतिहासिक आधारों में सत्यता की कमी रह गयी।

ऋषि दयानन्द के प्रादुर्भाव से प्रथम गत ४ हजार वर्षों से, जब से वेदों को मन्त्रपूरक स्वीकार किया गया, ब्राह्मण ग्रन्थों को प्रायः सभी प्राचीन हिन्दू वैदिक विद्वानों ने वेदों का ही पद दिया है। इन विद्वानों में शबर, पितृभुनि, शंकर, कुमारिल, विश्वरूप, मेधातिथि, कर्क, वाचस्पति, मिश्र, रामानुज, उव्वट और सायण आदि सभी बड़े-बड़े आचार्य आ गये। उन्नीसवीं शताब्दि के अन्त में ऋषि दयानन्द ने साहसपूर्वक यह घोषणा की कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। फिर धीरे-धीरे यूरोपीय विद्वानों ने वैदिक अनुसंधान की ओर ध्यान दिया और अब

---

१ यो वेदान् साङ्गोपनिषदो ... (महाभारत)

तो प्राय: सभी पक्षपात-शून्य विद्वान् इस बात को स्वीकार करते हैं। वास्तव में वैदिक साहित्य भी इस बात को प्रमाणित करता है कि ब्राह्मण वास्तव में वेद नहीं हैं। अथर्ववेद के प्रकरण में हम ऐसे बहुत प्रमाण उपनिषद् आदि के तथा स्वयं ब्राह्मणों के भी दे आये हैं। उनके सिवा गोपथ ब्राह्मण का (पूर्व भाग २-१०) निम्न वाक्य इस बात को और भी स्पष्ट करता है।

"एवमि मे सर्वे वेदा निर्मिता: सकल्पा: स रहस्या: स ब्राह्मणा: सोप निषत्का: सेतिहासा: सान्वाख्याना: स पुराणा: स स्वरा: स संस्कारा: स निरुक्ता: सानुशासना: सानुमार्जना: स वाक्योवाक्या: ।"

अर्थात्—इस प्रकार ये समस्त वेद-कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद् इतिहास अन्वाख्यान, पुराण, स्वर ग्रन्थ, संस्कार ग्रन्थ, निरुक्त, अनुशासन, अनुमार्जन और वाक्योवाक्य सहित बनाये गये।

इनके सिवा अष्टाध्यायी में पाणिनि भी ऐसा ही बताते हैं। यथा—

(१) दृष्टंसाम ४।२।७
(२) तेन प्रोक्तम् ४।३।१०१
(३) पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु, ४।३।१०५
(४) उपज्ञाते ४।३।११५
(५) कृते ग्रन्थे ४।३।११६

अर्थात्—

(१) मन्त्र दृष्ट हैं।
(२) शेष प्रोक्त हैं।
(३) कल्प और ब्राह्मण प्रोक्त हैं।
(४) वेद स्फूर्ति से प्रकट हुए हैं।
(५) साधारण ग्रन्थ रचे गये हैं।

मीमांसा सूत्र (१२।३।१७) में भी ब्राह्मण ग्रन्थों को संहिता से पृथक् माना गया है। सुनिए—

"मन्त्रोपदेशो वा न भाषिकस्य प्रायोपपत्तेर्भाषिक श्रुति: ।" अर्थात् भाषिक श्रुति नहीं हो सकते।

इसी के भाष्य पर शबर स्वामी लिखते हैं—

"भाषा स्वरो ब्राह्मणे प्रवृत्त:"

अर्थात्—ब्राह्मणों में भाषा स्वर का प्रयोग किया गया है। उपर्युक्त प्रमाणों के सिवा महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी विद्वान् ने ब्राह्मण ग्रन्थों के ऋषि आदि की अनुक्रमणि नहीं सुनी। संहिताओं की ऋषि-अनुक्रमणि होने पर भी शाखा नाम से व्यवहृत होने वाली ब्राह्मण भाग संयुक्त-संहिताओं की अनुक्रमणिकाओं में भी ब्राह्मण भागों के ऋषि नहीं दिये गये। केवल प्रजापति को ही ब्राह्मणों का ऋषि

कहकर इस विषय को छोड दिया है।

वास्तव म यदि इस बात पर विचार किया जाय कि वेदो की सज्ञा किस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थो को दी गयी तो यह स्पष्ट होता है कि पुरोहित-सम्प्रदाय (जो वेदो को यज्ञपूरक बनाकर उनके द्वारा बडी भारी आजीविका कर रहा था) का वेदो को कण्ठ रखना व्यवसाय था। अत वह वेदो की अपनी मनोनीत व्याख्या ब्राह्मणो से कराना चाहता था, इसलिए उसने ब्राह्मणो को ऐसा महत्त्व दिया। काशी म जब श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती से ऋषि दयानन्द का शास्त्रार्थ हुआ तब यही किया गया कि ब्राह्मण ग्रन्थो का एक पन्ना वेद कहकर उपस्थित किया गया।

ब्राह्मण वास्तव मे वेदो को यज्ञपूरक प्रमाणित करने के लिए निर्माण किये गये हैं। उनम यद्यपि वेदो की व्याख्या है—पर वे न तो वेदो के इतिहास ही हैं और न उनम वेदा की व्याख्या ही है। वे केवल वेदो को यज्ञपूरक प्रमाणित करने वाले ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थो के भयानक प्रभाव के कारण और महीधर जैसे व्यक्ति का वेदभाष्य पर कुरुचिपूर्ण भाष्य करने के कारण ही पुरोहितो का यजमानो पर प्रबल अधिकार हो गया। यजमान की स्त्री, धन और सम्पत्ति सभी पर उनकी सत्ता थी। मध्यकाल के हिन्दू जीवन मे यज्ञो और वेदा के नाम पर व्यभिचार का ताण्डव नृत्य इतनी भीषणता से होना कि भरी सभा मे राज महिषी को घोडे से सहवास कराना पडे, एक असाधारण पतन है। इतिहास बताता है कि इस भयानक कर्म स कितनी रमणी रत्नो को प्राण और लाज गँवानी पडी। हिंसा का ऐसा एकछत्र राज्य हुआ कि सहस्रावधि पशुओ का वध यज्ञ के नाम पर चिरकाल तक होता रहा।

सभी ग्रन्था का प्रधान विषय यज्ञाडम्बर है जो उनकी आगे लिखी जाने वाली विषय सूची स स्पष्ट हागा। प्रत्येक वेद के ब्राह्मणो मे पृथक पृथक विशेषता है। ऋग्वेद के ब्राह्मणा मे यज्ञविषयक उन्ही कर्तव्यो का वर्णन प्रधान रूप स किया गया है, जो होता (ऋचाओ का पाठ करने वाले) को करने पडते हैं, सामवेद के ब्राह्मणा म मुख्य रूप म उद्गाता (सामवेद को जानने वाले) के कर्तव्यो का वर्णन किया गया है और यजुर्वेद के ब्राह्मणो मे मुख्य रूप से अध्वर्यु (वास्तविक यज्ञ करने वाले) के कर्तव्यो का निर्देश किया गया है।

यहाँ हम प्रत्येक ब्राह्मण के विषय म विस्तार से बताते हैं—

(१) ऋग्वेद के ब्राह्मणों में से ऐतरेय ब्राह्मण सबमे अधिक महत्त्वशाली है। यह ४० अध्याय अथवा पाँच-पाँच अध्यायो की आठ पंचिकाओ मे विभक्त है। इसके अन्त के दस अध्याय बाद की रचना प्रतीत होते हैं, क्योकि एक तो ग्रन्थ के विषय से भी ऐसा ही प्रतीत होता है, दूसरे इसी विषय का पूर्ण वर्णन करने वाले शांखायन ब्राह्मण म उस विषय पर कुछ भी नही लिखा। इसमे भी प्रथम पाँच पंचिकाओ की अपेक्षा बाद की तीन पंचिकाएँ नवीन प्रतीत होती हैं, क्योकि

उनमें नये-नये लकारों का प्रयोग किया गया है, जबकि पहला अंश विशुद्ध प्राचीन ब्राह्मण ढंग का है। इस ब्राह्मण में अधिकतर सोमयाग का वर्णन किया गया है, इसके एक से सोलहवें अध्याय तक अग्निष्टोमयोग का वर्णन किया गया है, जो एक दिन में ही समाप्त हो जाता है। फिर अध्याय १७ से १८ तक गवामयन योग का वर्णन किया गया है। जो ३६० दिन तक किया जाता है। फिर अध्याय १६ से २४ तक द्वादशाह अर्थात् वारह दिन के यज्ञ का वर्णन किया गया है। फिर अध्याय २५ से ३२ तक अग्निहोत्र का वर्णन किया गया है। अन्त में अध्याय ३३ से ४० तक राजसूययज्ञ का वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह सबसे प्राचीन ब्राह्मण आरम्भ से अन्त तक यज्ञ के वर्णन से भरा हुआ है। यद्यपि प्रसंग वश इसमें बीच-बीच में कथानक, ऐतिह्य और कुछ वेदमंत्रों की व्याख्या भी आयी है।

(२) ऋग्वेद के दूसरे ब्राह्मण कौषीतकी अथवा शांखायन में तीस अध्याय हैं। इसके प्रथम छः अध्यायों में भोजन-सम्बन्धी यज्ञों का वर्णन है, जिसमें अग्न्याधान, अग्निहोत्र, द्वितीयाचन्द्र याग, (दर्श याग) पौर्णमास याग, और चातुर्मास्य याग का वर्णन किया गया है। शेष अध्यायों में ७ से अन्त के ३०वें अध्याय तक ऐतरेय ब्राह्मण के वर्णन से मिलता-जुलता सोमयाग का वर्णन है। यद्यपि कौषीतकी ब्राह्मण ऐतरेय की प्रथम पाँच पंचिकाओं की अपेक्षा नवीन है तथापि यह ग्रन्थ केवल एक ही लेखक की रचना प्रतीत होता है। ऐतरेय ब्राह्मण इतरा के पुत्र महिदास ऐतरेय का बनाया हुआ कहा जाता है। कौषीतकी में कौषीतक ऋषि का विशेष आदर प्रकट किया गया है और उनके मत का समर्थन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों के आचार्यों के दो भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय रहे होंगे जो अपनी-अपनी पद्धतियों से काम लेते होंगे।

(३) इन ब्राह्मणों में भौगोलिक विषय पर बहुत कम प्रकाश डाला गया है। भारतीय वंशों के वर्णन करने के ढंग से यह पता अच्छी तरह लग जाता है कि ऐतरेय ब्राह्मण की रचना कुरु-पंचाल देशों में हुई होगी, जिनमें वैदिक यज्ञों ने बड़ी भारी उन्नति की थी और तभी संभवतः ऋग्वेद के मन्त्र भी संहिता रूप में एकत्रित किये गये होंगे। कौषीतकी ब्राह्मण से पता चलता है कि उत्तरी भारत में भाषा का अध्ययन विशेष रूप से किया जाता था और वहाँ से आये हुए विद्यार्थियों को भाषा-विषयक ज्ञान में प्रमाणिक समझा जाता था।

हम पीछे कह आये हैं कि ब्राह्मणों में आख्यान भी हैं, जिनमें से प्रसिद्ध सबसे शुनः शेप आख्यान है। यह ऐतरेय ब्राह्मण के ३३वें अध्याय में है।

ऐतरेय ब्राह्मण से ही ऐतरेय आरण्यक का भी सम्बन्ध है। इसमें १८ अध्याय हैं। अनिश्चित रूप से पाँच भागों में बँटे हुए हैं। अन्त के दो अध्यायों की रचना सूत्रों के ढंग की है, अतः उनकी गणना सूत्रों में ही की जानी चाहिए। इसके

प्रथम भाग में सामयाग का वर्णन है। द्वितीय भाग के प्रथम तीन अध्यायों में दार्शनिक विचार हैं, उसमें प्राण और पुरुष नामधारी संसारी जीव के विकास का वर्णन है। यह वर्णन उपनिषदों के ढंग पर है और कौषीतकी उपनिषद् में इसका अनुकरण ही किया गया है। दूसरे भाग के शेष अध्यायों में ऐतरेय उपनिषद् है। अन्त के भागों में संहिता-क्रम और पद पाठों का वर्णन किया गया है।

कौषीतकी ब्राह्मण से कौषीतकी आरण्यक का सम्बन्ध है। इसमें पंद्रह अध्याय हैं। इनमें से प्रथम दो अध्यायों का वही विषय है जो ऐतरेय आरण्यक के प्रथम और पंचम भाग का है। इसके अतिरिक्त सातवें और आठवें अध्यायों का विषय ऐतरेय आरण्यक के तीसरे भाग से मिलता-जुलता है। बीच के चार अध्यायों (३-६) में कौषीतकी उपनिषद् है।

(४) सामवेद के ब्राह्मणों में जैमिनीय तवलकार ब्राह्मण सबसे प्राचीन है। यह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। संभवत इसके पाँच भाग हैं। इसमें से प्रथम तीन में यज्ञ के भिन्न-भिन्न अंगों पर प्रकाश डाला गया है। चौथे भाग का नाम उपनिषद् ब्राह्मण है, यह आरण्यक के ढंग पर लिखा गया है। इसमें दो ऋषियों की सूक्तियाँ, तथा एक भाग प्राण की उत्पत्ति के विषय में और एक सावित्री के विषय में है, शेष में केन उपनिषद् हैं। इसके पाँचवें भाग का नाम आर्षेय ब्राह्मण है। इसमें सामवेद के रचयिताओं की गणना है।

(५) सामवेद का दूसरा ब्राह्मण ताण्ड्य महाब्राह्मण है, इसके पंचविंश-ब्राह्मण और प्रौढ-ब्राह्मण नाम भी हैं। इसमें मुख्य रूप से सोमयाग का वर्णन है जो छोटे-से-छोटे सामयाग से लेकर सौ दिन अथवा कई वर्षों तक होने वाले सोमयागों का वर्णन है। बहुत से आख्यानों के अतिरिक्त इसमें सरस्वती और दृषद्वती के तटों पर होने वाले यज्ञों का बहुत सूक्ष्म वर्णन किया गया है। यद्यपि इसको कुरुक्षेत्र विदित है तथापि अन्य भौगोलिक विषयों से इसकी उत्पत्ति पूर्व की ओर की समझी जाती है। इसके यज्ञों में से व्रात्य-स्तोम विशेष महत्वशाली है क्योंकि इसको करने से अब्राह्मण आर्य ब्राह्मणत्व में प्रवेश कर सकते हैं।

(६) षड्विंश ब्राह्मण नामक स्वतन्त्र ब्राह्मण है किन्तु वास्तव में ताण्ड्य महाब्राह्मण में ही एक और अध्याय लगाकर इसको बना दिया गया है। इसके अन्तिम अध्याय का नाम अद्भुत ब्राह्मण है। इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के विघ्नों को रोकने के विचित्र उपाय हैं।

(७) सामवेद की ताण्ड्य शाखा का दूसरा ब्राह्मण छान्दोग्य ब्राह्मण है, इसमें पुत्रजन्म, विवाह अथवा देवताओं की प्रार्थना आदि की रीतियाँ हैं। प्रथम दो प्रपाठकों में इन विषयों को देकर शेष आठ प्रपाठकों में छान्दोग्य उपनिषद् है।

इसके अतिरिक्त अन्य ब्राह्मण इतने छोटे हैं कि उनको ब्राह्मण कहना ही नहीं चाहिए—

सामविधान ब्राह्मण—इसमें सब प्रकार के मंत्रों से कार्य लेने के उपाय बतलाये गये हैं।

देवताध्याय या दैवत ब्राह्मण—इसमें सामवेद के भिन्न-भिन्न प्रकार के मन्त्रों के देवताओं का वर्णन है।

वंश ब्राह्मण—इसमें सामवेद के अध्यापकों की वंशावली है।

संहितोपनिषद्—इसमें ऐतरेय आरण्यक के तीसरे भाग के समान वेदों के पाठ करने का ढंग बतलाया गया है।

(८) कृष्ण यजुर्वेद के गद्य भाग ही वास्तव में कठ और मैत्रायणीय शाखाओं के ब्राह्मण हैं।

तैत्तिरीय शाखा का तैत्तिरीय ब्राह्मण अत्यन्त प्राचीन है, इसके तीन खंड हैं, इसमें कुछ उन यज्ञों का वर्णन है जो संहिताओं में भी छूट गये हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के साथ-साथ तैत्तिरीय आरण्यक भी है। इसके दस खण्डों में से सातवें से नौवें तक में तैत्तिरीय उपनिषद् और दसवें खंड में महानारायण उपनिषद् अथवा याज्ञिकी उपनिषद् है। इन चार खण्डों के अतिरिक्त इस ब्राह्मण या आरण्यक का शेष भाग विषय में संहिता से मिलता-जुलता है।

ब्राह्मण के तीसरे भाग के अन्त के तीन खंड और आरण्यक के प्रथम दो खंड वास्तव में कठ शाखा के थे, यद्यपि उन्होंने इनको सुरक्षित नहीं रखा। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।२ में नचिकेता का उपाख्यान है, जिसके आधार पर काठक या कठोपनिषद की रचना की गयी है।

यद्यपि मैत्रायणी संहिता का कोई स्वतन्त्र ब्राह्मण नहीं है, तथापि उनका चौथा भाग बिलकुल ब्राह्मण ढंग का है। इसी में मैत्रायण अथवा मैत्रायणीय का मैत्री उपनिषद् भी है।

(९) शुक्ल यजुर्वेद का सबसे प्रसिद्ध और महत्वशाली ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण है। सौ अध्यायों में लिखा जाने के कारण से ही इसका नाम शतपथ पड़ा है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में ऋग्वेद के पश्चात् इसी का भारी महत्व है। इसकी दो शाखाएँ मिलती हैं। जिनमें से माध्यन्दिनी शाखा वाले को प्रोफेसर वेबर ने, और काण्व शाखा वाले को प्रोफेसर एगलिंग ने सम्पादित किया है। माध्यन्दिनी शाखा के १०० अध्यायों को चौदह और काण्व शाखा के १०० अध्यायों को सत्रह काण्डों में विभक्त किया गया है। माध्यन्दिनी शाखा के पहले नौ काण्ड वास्तव में वाजसनेही संहिता के पहले अठारह अध्यायों की विस्तृत टीका है, और यही इस ब्राह्मण का सबसे प्राचीन भाग है। बारहवें खंड के 'मध्यम' कहे जाने से प्रकट होता है कि अन्त के पाँच खंड (या संभवतः केवल दसवें से तेरहवें तक) ब्राह्मण का एक स्वतन्त्र भाग समझा जाता था।

प्रथम से पंचम कांड तक परस्पर में घनिष्ट सम्बन्ध है, उनमें याज्ञवल्क्य का—

जिसको चौदहवें कांड के अन्त में सम्पूर्ण शतपथ ब्राह्मण का रचयिता कहा गया है—बार-बार वर्णन आता है और उसी को सबसे बड़ा प्रमाण पुरुष माना है। इसमें पूर्वीय लोगों के अतिरिक्त अन्य किसी का वर्णन नहीं आता। इसके विरुद्ध छठे से नौवें कांड तक के 'अग्निचयन' के वर्णन में याज्ञवल्क्य का नाम एक बार भी नहीं आता और उसके स्थान में एक दूसरे आचार्य शांडिल्य को प्रामाणिक तथा 'अग्निरहस्य' का चलाने वाला माना गया है, जिसका वर्णन ग्यारहवें से तेरहवें कांड तक है। शांडिल्य के अतिरिक्त इसमें गान्धारों, साल्वों और केकयों के नाम भी आते हैं, जो पश्चिमोत्तर प्रान्तों के वासी थे। इसी कांड में कई एक अनुक्रमणिकाओं के अतिरिक्त कई एक ऐसी बातों का वर्णन है, जिनका ब्राह्मणों से कुछ सम्बन्ध नहीं। उदाहरणार्थ कांड ग्यारह के पांचवें और चौथे अध्यायों में 'उपनयन' अध्याय पांचवें से आठवें तक 'स्वाध्याय' और कांड तेरह के आठवें अध्याय में 'अन्त्येष्टि संस्कार' और मृतक के स्तम्भ खड़ा करने की विधियों का वर्णन है। तेरहवें खंड में ही 'अश्वमेध यज्ञ' 'पुरुषमेध यज्ञ' और 'सर्पमेध यज्ञ' का वर्णन किया गया है। अन्त का अर्थात् चौदहवां खंड आरण्यक है, इसमें प्रवर्ग्य संस्कार का वर्णन है और इसके अन्त के ६ अध्यायों में बृहदारण्यक उपनिषद् है।

शतपथ ब्राह्मण के भौगोलिक वर्णनों से प्रकट होता है कि कुरु, पांचाल की भूमि उस समय भी ब्राह्मण सभ्यता का केन्द्र बन रही थी। इसमें कुरुराज जनमेजय और पांचाल आरुणि का स्पष्टतः उल्लेख किया गया है। इससे यह भी प्रतीत होता है ब्राह्मण मत उस समय मध्यदेश के पूर्वीय देशों में, राजधानी अयोध्या सहित कोशल देश में और राजधानी मिथिला सहित विदेह देश में फैल गया था। शतपथ ब्राह्मण के बाद के कांडों में यहीं होने वाले बड़े बड़े शास्त्रार्थों का उल्लेख किया गया है। वीर आरुणि के शिष्य याज्ञवल्क्य को इस ब्राह्मण में अध्यात्म शास्त्र पर (अध्याय छै से नौ तक छोड़कर) बड़ा भारी प्रमाण माना गया है। इस ब्राह्मण के कई एक अंशों से इस बात की संभावना प्रकट होती है कि याज्ञवल्क्य विदेह का निवासी था। याज्ञवल्क्य को इस प्रकार प्रधानता दी जाने से प्रकट होता है शतपथ ब्राह्मण की रचना पूर्वीय देशों में हुई थी।

शतपथ ब्राह्मण में थोड़ा संकेत उस समय का भी किया है, जब विदेह में ब्राह्मण धर्म नहीं आया था। प्रथम कांड की एक आख्यायिका से आर्य लोगों के पूर्वीय देशों में तीन बार जाने का पता चलता है। विदेहों के पूर्व की ओर बढ़ने का कुछ अस्पष्ट सा हाल नीचे उद्धृत किये हुए शतपथ ब्राह्मण के वाक्यों में मिलता है—

"माधव विदघ के मुंह में अग्नि वैश्वानर थी। उसके कुल का पुरोहित ऋषि गोतम राहूगण था। जब यह उससे बोलता था तो माधव इस भय से कोई उत्तर

नहीं देता था कि कहीं अग्नि उसके मुँह से गिर न पड़े।" (१०)

"फिर भी उसने उत्तर नहीं दिया। तब पुरोहित ने कहा, हे घृतस्न हम तेरा आह्वान करते हैं। (ऋग्वेद म० ५ सू० २६ ऋ० २) उसका इतना कहना था कि घृत का नाम सुनते ही अग्नि वैश्वानर राजा के मुँह से निकल पड़ी। वह उसे रोक न सका। वह उसके मुँह से निकलकर इस भूमि पर गिर पड़ी।" (१३)

"माधव विदेघ उस समय सरस्वती नदी पर था। वहाँ से वह (अग्नि) इस पृथ्वी को जलाते हुए पूर्व की ओर बढ़ी और ज्यों-ज्यों वह जलाती हुई बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों गौतम राहु गण और विदेघ माधव उसके पीछे-पीछे चले जाते थे। उसने इन सब नदियों को जला डाला (सुखा डाला)। अब वह नदी जो सदानीर (गंडक) कहलाती है उत्तरी (हिमालय) पर्वत से बहती है। इस नदी को उसने नहीं जलाया। पूर्व काल में ब्राह्मणों ने इस नदी को यही सोचकर पार नहीं किया, क्योंकि अग्नि वैश्यानर ने उसे नहीं जलाया था।" (१४)

"परन्तु इस समय उसके पूर्व में बहुत से ब्राह्मण हैं। उस समय उस (सदानीर) के पूर्व की भूमि बहुत करके जोती-बोई नहीं जाती थी और बड़ी दल-दली थी क्योंकि अग्नि वैश्वानर ने उसे नहीं चक्खा था।" (१५)

"परन्तु इस समय वह बहुत बोई हुई है क्योंकि ब्राह्मणों ने उसमें होमादि करके उसे अग्नि से चखवाया है। अभी भी गरमी में वह नदी उमड़ उठती है। वह इतनी ठंडी है क्योंकि अग्नि और वैश्वानर ने उसे नहीं जलाया।" (१६)

"माधव विदेघ ने तब अग्नि से पूछा कि मैं कहाँ रहूँ ? उसने उत्तर दिया कि तेरा निवास इस नदी के पूर्व में हो। अब तक भी यह नदी कौशलों और विदेहों की सीमा है क्योंकि ये माधव की संतति है।" (१७)

(शतपथ ब्राह्मण १-४-१)

ऊपर के वाक्यों में हम लोगों को कल्पित कथा के रूप में अधिवासियों के सरस्वती के तट से गंडक तक धीरे-धीरे बढ़ने का वृत्तान्त मिलता है। यह नदी दोनों राज्यों की सीमा थी। कौशल लोग उसके पश्चिम में रहते थे और विदेह लोग उसके पूरब में।

इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में हम मसीह से लगभग १००० वर्ष पूर्व के भारतीय उस इतिहास का दिग्दर्शन करते हैं, जिसमें दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम भारत की ओर आर्यों ने विस्तार किया था। यथा—

"तब पूरब दिशा में वासवों ने सारे संसार का राज्य पाने के लिए ३१ दिन तक इन्हीं तीनों ऋक् और यजु की ऋचाओं और उन गम्भीर शब्दों से जिनका वर्णन अभी किया जा चुका है, उस (इन्द्र) का प्रतिष्ठापन किया। इसीलिए पूर्वी जातियों के सब राजाओं को देवताओं के लिए इस आदर्श के अनुसार संसार के महाराजा की भांति राजतिलक दिया जाता है और वे सम्राट कहलाते हैं।"

"तब दक्षिण देश मे रुद्र लोगो ने सुख भोग प्राप्त करने के लिए इन्द्र को २१ दिन तक इन तीनों ऋचो अर्थात् यजुष् और उन गम्भीर शब्दो से (जिसका उल्लेख अभी हो चुका है) प्रतिष्ठापन किया। इसीलिए दक्षिण देश के जीवों के राजाओं को सुख भोग के लिए राजतिलक दिये जाते हैं और वे भोज अर्थात् भोग करते हैं।"

'तब पश्चिम देश मे देवी आदित्यों ने स्वतन्त्र राज्य पाने के लिए उसका उन तीनो ऋचा अर्थात् यजुष् की ऋचाओ और उन गम्भीर शब्दो से प्रतिष्ठापन किया। इसीलिए पश्चिम देशो के नीच्यो और अपाच्यो के सब राजे स्वतन्त्र राज्य करते हैं और स्वराट् अर्थात् स्वतन्त्री राजा कहलाते हैं।"

'तब उत्तरी देश मे विश्व देवो ने प्रख्यात शासन के लिए उसका उन्ही तीनो ऋचाओ से प्रतिष्ठापन किया। इसीलिए हिमालय के उस ओर के उत्तरी देशो से सब लोग—जैसे उत्तर कुरु लोग, उत्तर माद्र लोग, बिना राजा के बसने के लिए स्थिर किये गये और वे विराज अर्थात् बिना राजा के कहलाते हैं।"

"तब मध्य देश मे जो कि एक दृढ स्थापित स्थान है, साध्यो और अपत्यो ने राज्य के लिए इन्द्र का २१ दिन तक प्रतिष्ठापन किया। इसीलिए कुरु, पाचालो तथा वसो और उसीनरो के राजाओ को राजतिलक दिया जाता है और वे राजा कहलाते हैं।"

वास्तव मे शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेही शाखा ने ही यज्ञो का बडा भारी प्रचार किया, जो इन पूर्व के देशो मे बहुत बढ गया था। शतपथ ब्राह्मण मे अध्वर्यु की गलतियाँ बार-बार निकाली गयी हैं, जो चरक शाखा का पुरोहित होता है। कृष्ण यजुर्वेद की तीन शाखाओ—कठ, कपिष्ठल और मैत्रायणीय को चरक शाखा कहते हैं।

शतपथ ब्राह्मण मे अर्हत, श्रमण और प्रतिबुद्ध शब्द आते हैं। ऋषियो की वशावलियो मे गौतम का नाम विशेष रूप से आता है।

सांख्य दर्शन के आरम्भिक सिद्धान्तो का भी कुछ वर्णन मिलता है, और सांख्य के प्रसिद्ध आचार्य आसुरी का नाम तो कई एक स्थानो पर आता है।

कुरुराज जनमेजय का वर्णन यहाँ पहले-पहल ही आता है। पाडवो का वर्णन कुछ न होते हुए भी अर्जुन का वर्णन किया गया है विदह के राजजनक तो इसके मुख्य आश्रयदाता हैं। किन्तु विदेह की गद्दी के सभी राजाओ का नाम जनक होने से यह निश्चय करना कठिन है कि यह जनक सीता के पिता ही थे। अवश्य ही ये जनक कोई महाभारतकालीन जनक रहे होंगे।

कालिदास के नाटको के दोनो कथानक भी इसमे मिलते हैं। पुरुरवा और उर्वशी के प्रेम और वियोग की कथा, जिसका ऋग्वेद मे रूपक मिल गया है, यहाँ विस्तृत रूप मे वर्णन की गयी है। दुष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र भरत का

वर्णन भी इसमें किया गया है, जिनके उद्धरण इसी अध्याय में आगे बताये गये हैं।

जल-प्रलय की उस प्रसिद्ध कथा का भी इसमें वर्णन है जिसका कुछ वर्णन अथर्ववेद में है और जिसका महाभारत, जिन्द अवस्ता तथा बाइबिल में वर्णन किया गया है। इसमें बतलाया गया है कि किस प्रकार मनु को एक छोटी-सी मछली मिल गयी, जिसने अपनी सहायता से मनु को आने वाले जल-प्रलय से रक्षा करने का वचन दिया। मछली के उपदेश के अनुसार एक जहाज बनवाकर मनु, जल-प्रलय के समय उसमें बैठ गये और वही मछली उस जहाज को उत्तरी पर्वत पर ले गयी, जिसके सींग से उसने अपना जहाज बाँध दिया था। फिर अपनी पुत्री के द्वारा मनु ने मनुष्य जाति की उत्पत्ति की थी।

शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार के बहुत से आख्यान और कथानक आये हैं। इसकी रचना से पता लगता है कि यह ब्राह्मण के पिछले भाग में बना है। इसकी भाषा अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक उन्नत, सुविधाजनक और स्पष्ट है। यज्ञों का वर्णन भी इसका सर्वथा विशेष पद्धति पर है। अध्यात्म विषय में भी इसमें एकत्ववाद पर अधिक जोर दिया गया है, जबकि इसका उपनिषद् भी वैदिक दर्शन शास्त्रों का उत्कृष्ट ग्रन्थ माना गया है।

(१०) अथर्ववेद का सम्बन्ध गोपथ ब्राह्मण से है। पर उसका उस संहिता से कोई प्रकट सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। यह ब्राह्मण बिलकुल अर्वाचीन प्रतीत होता है। लेख भी मिश्रित है। इस ब्राह्मण के दो भाग हैं। पूर्वार्द्ध में पाँच अध्याय हैं और उत्तरार्द्ध में छः अध्याय हैं। दो भाग बहुत बाद की रचनाएँ हैं, क्योंकि वह वैतान सूत्र के पश्चात् बने हैं और उनमें कोई अथर्वण आख्यायिका भी नहीं है। पूर्वार्द्ध में उतना अंश ही मौलिक है, जिसका किसी यज्ञ या संस्कार से सम्बन्ध नहीं है, अन्यथा बाकी सब शतपथ ब्राह्मण के ग्यारहवें और बारहवें कांड से और कुछ अंश ऐतरेय ब्राह्मण से लिए गये हैं। इस ब्राह्मण का मुख्य उद्देश्य अथर्ववेद और चौथे पुरोहित का महत्व बढ़ाना है। शिव के वर्णन, अथर्ववेद के बीसों कांडों के वर्णन और परिष्कृत व्याकरण के नियमों के कारण इसको बहुत बाद की रचना समझा जाता है। उत्तरार्द्ध बिलकुल ब्राह्मण के ढंग का है। उसमें वैतान श्रोतसूत्र के ढंग पर यज्ञों का वर्णन किया गया है। इस सूत्र का और ब्राह्मणों का सम्बन्ध उलटा हो गया है। क्योंकि सूत्रों का आधार ब्राह्मण होने के स्थान में यहाँ ब्राह्मण का आधार सूत्र हो गया है। इसका दो-तिहाई प्रचीन ग्रन्थों से लिया गया है। ऐतरेय और कौपीतकी ब्राह्मणों के विषय को मुख्य रूप से लिया गया है। मैत्रायणी और तैत्तरीय संहिताओं के भी कुछ अंश लिए गये हैं। थोड़े से अंश शतपथ और पंचविंश ब्राह्मण से भी लिए गये हैं।

अब यह देखना है कि ब्राह्मणों की कुल संख्या कितनी है। ब्राह्मणों की कुल

संख्या २५ है, जिनमें १५ प्रकाशित हो चुके हैं। दो अप्रकाशित हैं; परन्तु प्राप्त होते हैं। १८ ब्राह्मण ऐसे हैं जिनका साहित्य में पता चलता है; परन्तु प्राप्त नहीं हैं। ये १८ अप्राप्य ब्राह्मण इस प्रकार हैं—

(१) चरक ब्राह्मण (यजुर्वेदीय) विश्वरूपाचार्य कृत बालक्रीडा टीका में उद्धृत, भाग प्रथम पृ० ४८, ८०। भाग द्वितीय पृ० ८६। भाग २ पृ० १७ पर लिखा है—

'तथा अग्निषोमीय ब्राह्मणे चरकाणाम्'

यह याजुष् चरक शाखा का प्रधान ब्राह्मण था। इसके आरण्यक का एक प्राचीन हस्तलेख लाहौर पुस्तकालय में है। यह अधिकांश में सप्त प्रपाठात्मक मैत्र्युपनिषद् में मिलता है।

(२) श्वेताश्वतर ब्राह्मण—(यजुर्वेदीय) बालक्रीडा टीका भाग १, पृ० ८ पर उद्धृत श्वेताश्वतरोपनिषद् इसी के आरण्यक का भाग प्रतीत होता है।

(३) काठक ब्राह्मण—(यजुर्वेदीय) तैत्तिरीय ब्राह्मण के कुछ अन्तिम भागों को भी कठ या काठक ब्राह्मण कहते हैं, परन्तु यह काठक ब्राह्मण उससे भिन्न है। यह चरकों के द्वादश अवान्तर विभागों में से एक है। इसके आरण्यक का कुछ हस्तलिखित रूप में योरोप के पुस्तकालयों में विद्यमान है। श्रीनगर काश्मीर के एक ब्राह्मण का कहना है कि इसका हस्तलेख मिल सकता है। एफ० ओ० श्रेडर सम्पादित 'माइनर उपनिषद्स' प्रथम भाग पृ० ३१-४२ तक जो कठश्रुत्युपनिषद् छपा है, वह इसी ब्राह्मण का कोई अन्तिम भाग अथवा खिल प्रतीत होता है। इसके वचनों को यतिधर्मसंग्रह में विश्वेश्वर सरस्वती, आनन्दाश्रम पूना के संस्करण (सन् १९०९) के पृ० २२ पं० २६ पृ० ७६ पं० ९ आदि पर काठक ब्राह्मण के नाम से भी उद्धृत करता है।

(४) मैत्रायणी ब्राह्मण—(यजुर्वेदीय) बौधायन श्रौतसूत्र ३०,८ में उद्धृत। नासिक के वृद्ध-से-वृद्ध मैत्रायणी शाखा के अध्येता ब्राह्मणों ने कहा था कि उन्हें इसके अस्तित्व का कोई ज्ञान नहीं रहा। उनके कथनानुसार उनकी संहिता में ही ब्राह्मण सम्मिलित है परन्तु पूर्वोक्त बौधायन श्रौतसूत्र का प्रमाण मुद्रित ग्रन्थ में नहीं मिला, इसलिए ब्राह्मण पृथक् ही रहा होगा। मैत्रायणी उपनिषद् का अस्तित्व भी इस ब्राह्मण का होना बता रहा है, फिर भी पूरा निर्णय होने के लिए मैत्रायणीय संहिता का पुनः छपना आवश्यक है। बड़ौदा के सूचीपत्र (सन् १९२५) सं० ७९ में कहा गया है कि उनका हस्तलेख, मुद्रित मै० सं० से कुछ भिन्न है। बालक्रीडा भाग २ पृ० २७ पं० ३ पर एक श्रुति उद्धृत है, उसी श्रुति को विश्वेश्वर यतिधर्म संग्रह पृ० ७६ पर मैत्रायणी श्रुति के नाम से उद्धृत करता है।

(५) भाल्लवि ब्राह्मण, बृहद्देवता ५ २३ भाषिक सूत्र ३. १५ नारद

शिक्षा १. १३. महाभाष्य ४. २. १०४. में इसका मत व नाम का उल्लेख है।

(६) जावाल ब्राह्मण, (यजुर्वेदीय) जावाल श्रुति का एक लम्बा उद्धरण वालक्रीड़ा भाग २, पृ० ६४, ६५ पर उद्धृत है। यह सम्भवतः ब्राह्मण का पाठ होगा। बृहज्जाबालोपनिषद् नवीन है, परन्तु जावाल उपनिषद् प्राचीन प्रतीत होता है। इस शाखा का ग्रह्य-सूत्र (जावालिग्रह्य) गौतम धर्मसूत्र मस्करी भाष्य के पृ० २६७, ३८६ पर उद्धृत है।

(७) पैङ्गी ब्राह्मण—इसका ही दूसरा नाम पैङ्ग्य ब्राह्मण या पैङ्गायलि ब्राह्मण भी है। यह आपस्तम्ब श्रौतसूत्र ५, १८. ८, ५. २६. ४ में उद्धृत है। आचार्य शंकर स्वामी भी इसे शारीरिक सूत्र भाष्य में उद्धृत करते हैं। पैङ्गी कृत्य का उल्लेख महाभाष्य ४. २. ६६ में कहा गया है।

(८) शाट्यायन ब्राह्मण—(सामवेदीय ?) आपस्तम्ब श्रौतसूत्र १०, १२-१३, १४। २१, १६०४, १८, पुष्पसूत्र ८.८.१८४ में उद्धृत है। सायण अपने ऋग्वेद भाष्य और ताण्ड्य ब्राह्मण भाष्य में इसे बहुत उद्धृत करता है। इसी का कल्प बालक्रीड़ा भाग १, पृ० ३८ पर उद्धृत है।

(९) कंकति ब्राह्मण—'आपस्तम्ब श्रौतसूत्र १४-२०-४ पर उद्धृत है। महाभाष्य ४.२.६६ कीलहार्न सं० पृ० २८६ पं० १२ कांकताः प्रयोग है, इससे भी कंकति शाखा के अस्तित्व का पता लगता है।

(१०) सौलभ ब्राह्मण—महाभाष्य ४.२.६६, ४.३.१०५ पर इसका उल्लेख है।

(११) कालबवि ब्राह्मण—(सामवेदीय) आपस्तम्ब श्रौत २०.९.९ पर उद्धृत है। पुष्पसूत्र प्रपाठक ८-८-१८४ पर भी यह उद्धृत है।

(१२) शैलालि ब्राह्मण—आपस्तम्ब श्रौत ६.४.७ पर उद्धृत है।

(१३) कौशकी ब्राह्मण—गोभिल गृह्य सूत्र ३.२.५ पर उद्धृत है, किन्तु सम्भव है कि यह धर्मस्कन्ध ब्रा०, अन्तर्यामी ब्रा०, दिवाकी से ब्रा०, धिष्ण्य ब्रा०, शिशुमार ब्रा० आदि के समान यह भी किसी ब्रा० का भाग हो।

(१४) खाण्डिकेय ब्राह्मण—(यजुर्वेदीय) भाषिक सूत्र १.२६ पर उद्धृत है।

(१५) औखेय ब्राह्मण—(यजुर्वेदीय) भाषिक सूत्र ३-१६ पर उद्धृत है।

(१६) हरिद्रविक ब्राह्मण।

(१७) तुम्बरु ब्राह्मण।

(१८) आरुणेय ब्राह्मण—ये अन्तिम तीनों ब्राह्मण महाभाष्य ४.३.१०४ पर उल्लिखित हैं।

२. संकलन काल

बृहदारण्यक ४।६।३ तथा ६।५।४ के वंश ब्राह्मणों के अनुसार ब्राह्मण वाक्यों का आदि प्रवचनकर्ता ब्रह्मा माना गया है। प्रजापति, मन्वादि महर्षियों का नाम भी ब्राह्मण वाक्यों के प्रवचनकर्ताओं में लिया जाता है। कई एक ब्राह्मण अंशों के प्राचीन होने पर भी यह निश्चय करना कठिन है कि उनका वास्तविक काल क्या था। हाँ, यह कहा जा सकता है कि इन सबका संकलन महाभारत काल में कृष्ण द्वैपायन, वेदव्यास तथा उनके शिष्य प्रशिष्यों ने किया था। शतपथ आदि ब्राह्मणों में अनेक स्थलों पर उन ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पाये जाते हैं जो महाभारत काल के कुछ ही पहले के थे, यथा—

(१) एतेन हैतेन भरतो दौःषन्तिरीजे' *

तदेतद् गाथयाभिगीतम्—

अष्टासप्तर्ति भरतो दौःषन्तिर्यमुनामनु,

गंगायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतं्हयान् ॥इति॥ ११॥

शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे "॥१३॥

महदद्य भरतस्य न पूर्वे नापरे जना.।

दिवं मर्त्य इव बाहुभ्यां नोदापु पञ्चमानवा ॥इति॥ "१४"

शतपथ १३ ५ ४

तथा च—

ऐतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण

दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच,

...... तदप्येते श्लोका अभिगीता।

हिरण्येन परीवृतान् कृष्णान् शुक्लदतो मृगान्,

मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्वानि सप्त च॥

भरतस्यैष दौष्यन्तेरग्निः साचिगुणे चित

यस्मिन्त्सहस्रं ब्राह्मणा बद्वशो गावि भेजिरे॥

अष्टासप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु,

गंगायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशत ह्यान्॥

त्रयस्त्रिंशच्छतं राजाऽश्वान् बध्वाय मेध्यान्,

दौष्यन्तिरत्यगाद्राज्ञो मायां मायावत्तरः॥

महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जना,

दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापु पञ्च मानवा ॥इति॥

ऐतरेय ब्राह्मण ८-२३

इन गाथाओं, यज्ञगाथाओं, तथा श्लोकों में वर्तमान दौष्यन्ति भरत और

शकुन्तला नाम स्पष्ट महाभारत काल से कुछ ही पहले होने वाले व्यक्तियों के हैं, अतएव इन सब ब्राह्मणों को महाभारत काल का मानना ही युक्तिसंगत है।

(२) ब्राह्मण ग्रन्थों के महाभारतकालीन होने में स्वयं महाभारत भी साक्षी है। महाभारत आदि पर्व अध्याय ६४ में लिखा है—

ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च तथानुग्रहकाङ्क्षया,
विन्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद्व्यास इति स्मृत: ।।१३०।।

तथा च—

वेदानाध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्,
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ।।१३१।।
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च,
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिता: ।।१३२।।

अर्थात्—वेदव्यास के सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल ये चार शिष्य थे। इन्हीं चारों को उन्होंने वेदादि ग्रन्थ पढ़ाये। यह व्यास पाराशर्य व्यास के अतिरिक्त अन्य नहीं थे, इसका प्रमाण भी महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३३५ में है—

विविक्ते पर्वततरे पाराशर्यो महातपा:,
वेदानध्यापयामास व्यास: शिष्यान् महातपा: ।।२६।।
सुमन्तुं च महाभागं वैशम्पायनमेव च,
जैमिनिं च महाप्राज्ञं पैलं चापि तपस्विनम् ।।२७।।

वैशम्पायन को ही चरक कहते हैं, काशिकावृत्ति ४।३।१०४ में लिखा है—

वैशम्पायनान्तेवासिनो नव…
चरक इति वैशम्पायनस्याख्या,
तत् संबंधेन सर्वे तदन्तेवासिनश्चरका इत्युच्यन्ते,

पुन: महाभाष्य ४.३.१०४ पर पतञ्जलि मुनि ने लिखा है—

वैशम्पायनान्तेवासी कठः, कठान्तेवासी खाडायन: ।
वैशम्पायनान्तेवासी कलापी,

यह शिष्य परम्परा निम्नलिखित प्रकार से सुस्पष्ट हो जायगी।

इनमें से १-३ प्राच्य ; ४-६ उदीच्य और ७-९ माध्यम हैं। देखिये महाभाष्य ८।२।१३८ और काशिकावृत्ति ४।३।१०४। पूर्वोक्त नामों में से—

(१) हारिद्रविण,

(२) तौम्बुरविण,

(३) आरुणिन,

ये तीनों महाभाष्य ४।३।१०४ में ब्राह्मण ग्रन्थ प्रवचनकर्ता कहे गये हैं। अतः यह निर्विवाद है कि साम्प्रतिक सब ब्राह्मण ग्रन्थ महाभारत काल में ही सगृहीत हुए।

(२) याज्ञवल्क्य भी महाभारतकालीन ही है। महाभारत सभापर्व, अध्याय ४ में लिखा है—

> दत्तो दाल्भ्य स्थूलशिरा कृष्णद्वैपायन शुक
> सुमन्तुर्जैमिनि पैलो व्यासशिष्यास्तथा वयम् ॥१७॥
> तित्तिरिर्याज्ञवल्क्यश्च ससुतो रोमहर्षण ।

अर्थात् ये सब बड़े बड़े ऋषि महाराज युधिष्ठिर की सभा को सुशोभित कर रहे थे।

शतपथ ब्राह्मण याज्ञवल्क्य प्रोक्त है, इस विषय में काशिकावृत्ति ४।३।१०५ में लिखा है—

> ब्राह्मणेषु तावत्-भाल्लविन, शाट्यायनिन ऐतरेयिण,
> • पुराणप्रोक्तेष्विति किम्, याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि•••
> याज्ञवल्क्यादयोऽचिरकाला इत्याख्यानेषुवार्ता,

जयादित्य का यह लेख महाभाष्य के विरुद्ध है। जयादित्य के सन्देह का कारण कोई प्राचीन 'आख्यान' है परन्तु उससे जयादित्य का अभिप्राय नहीं सिद्ध होता। ब्राह्मण ग्रन्थों के अवान्तर भागों को भी ब्राह्मण कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनेक अवान्तर ब्राह्मण अत्यन्त प्राचीन हैं। उनकी अपेक्षा याज्ञवल्क्य प्रोक्त ब्राह्मण नवीन है। आख्यानान्तर्गत लेख का अभिप्राय समग्र शतपथ ब्राह्मण से नहीं प्रत्युत उसके अवान्तर ब्राह्मणों से है। शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन तो तभी हुआ था जब कि भाल्लवि शाट्यायन और ऐतरेय आदि ब्राह्मणों का प्रवचन हुआ था। इनमें से ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचन कर्ता महिदास, सुमन्तु आदि से कुछ प्राचीन है।[1] याज्ञवल्क्य इन्हीं का सहकारी है, अतः याज्ञवल्क्य और तत्प्रोक्त शतपथ ब्राह्मण भी महाभारतकालीन ही हैं।

यहाँ यह सन्देह नहीं किया जा सकता कि महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३१५ श्लोक ३ ४ तथा अध्याय ३२३ के श्लोक २२-२३ के अनुसार याज्ञवल्क्य का सम्वाद देवराति जनक से हुआ था, न कि वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग

---

१ देखिए—आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।४।४

७१ श्लोक ६ के अनुसार सीता के पिता से। क्योंकि दैवराति जनक अनेक हो सकते हैं। महाभारत काल में भी एक प्रसिद्ध जनक था, और उसी का वैयासकि शुक के साथ संवाद हुआ था। दैवराति जनक वही या उससे कुछ ही पूर्वकालीन हो सकता है, क्योंकि महाभारत में इसी प्रकरण की समाप्ति पर भीष्म कहते हैं कि याज्ञवल्क्य और दैवराति जनक के सम्वाद का तथ्य उन्होंने स्वयं दैवराति जनक के प्राप्त किया था।

भीष्म उवाच—

एतन्मयाऽप्तं जनकात् पुरस्तात्
तेनापि चाप्तं नृप याज्ञवल्क्यात्,
ज्ञातं विशिष्टं न तथा हि यज्ञा
ज्ञानेन दुर्गं तरते न यज्ञैः ॥१०६॥

शान्तिपर्व अध्याय ३२३

शान्तिपर्व के उपदेश के समय भीष्मजी की आयु २०० वर्ष से कुछ कम ही थी। इस गणनानुसार दैवराति जनक महाभारत-युद्ध से १५० वर्ष के अन्दर-अन्दर ही हो सकते हैं। अतएव शतपथ ब्राह्मण भी महाभारत काल में ही 'प्रोक्त' हुआ समझना चाहिए।

(४) शतपथ ब्राह्मण और उसका प्रवचनकर्ता याज्ञवल्क्य महाभारतकालीन ही हैं, इसकी शतपथ ब्राह्मण भी साक्षी देता है, यथा—

अथ पृषदाज्यं तदुह चरकाध्वर्यवः पृषदाज्यमेवाग्रेऽभि—
धारयन्ति प्राणः पृषदाज्यमिति वदन्तस्तदुह याज्ञवल्क्यं चरका—
ध्वर्युदनुव्याजहार। शतपथ ३।८।२।२४

ताउह चरकाः, नानैव मन्त्राभ्यां जुह्वति प्राणोदानौ,
वाऽस्यैतौ नानावीर्यौ प्राणोदानौ कुर्म इति वदन्तस्तदु तथा न कुर्यात्।
शतपथ ४।१।२।१६

यदि तं चरकेभ्यो वा यतो वानुब्रवीत्। श० ४।२।४।१
तदु ह चरकध्वर्यवो विगृह्णन्ति। शतपथ ४।२।३।१५
प्राजापत्यं चरका आलभन्ते। शतपथ ६।२।२।१
इति ह स्माह माहित्थर्य चरकाः प्राजापत्ये पशावाहुरिति।
शतपथ ६-१-१-१०

तदु ह चरकाध्वर्यवः। शतपथ ८।१।३।७

इत्यादि स्थलों में जो 'चरक' अथवा 'चरकाध्वर्यु' कहे गये हैं, वे सब वैशम्पायन शिष्य हैं। वायुपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ६२ में भी इसी को पुष्ट किया गया है—

ब्रह्महत्या तु यैश्चीर्णा चरणाच्चरका स्मृता,
वैशम्पायनशिष्यास्ते चरका समुदाहृता ॥२३॥

और यह हम पहले ही बतला चुके हैं कि चरक वैशम्पायन महाभारत कालीन था, अत उसका या उसके शिष्यो का उल्लेख करने वाला ग्रन्थ महाभारत काल से पहले का नही हो सकता।

(५) याज्ञवल्क्य और शतपथ ब्राह्मण के महाभारत कालीन होने मे एक और प्रमाण भी है—

महाराज जनक की सभा मे याज्ञवल्क्य का ऋषियो के साथ जो महान् सवाद हुआ था, उसका वर्णन शतपथ काण्ड ११-१४ मे है। ऋषियो मे एक विदग्ध शाकल्य ११।४।६०३ था, याज्ञवल्क्य के एक प्रश्न का उत्तर न देने से उसका मूर्धा गिर गया १४।५।७।२८। यह शाकल्य ऋग्वेद का प्रसिद्ध ऋषि हुआ है, यही पदकारा म भी सर्वश्रेष्ठ था। इसका पूरा नाम देवमित्र शाकल्य था। ब्राह्मवाह गुन याज्ञवल्क्य (वायुपुराण पूर्वार्द्ध ६०।४१) के साथ इसका जो वाद हुआ था, उसका उल्लेख वायुपुराण अध्याय ६०, श्लोक ३२-६० मे भी है। वायुपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ६० के अनुसार इस देवमित्र शाकल्य (विदग्ध) के पूर्वोत्तर कुछ ऋग्वेदीय आचार्यों की गुरुपरम्परा का चित्र निम्नलिखित है—
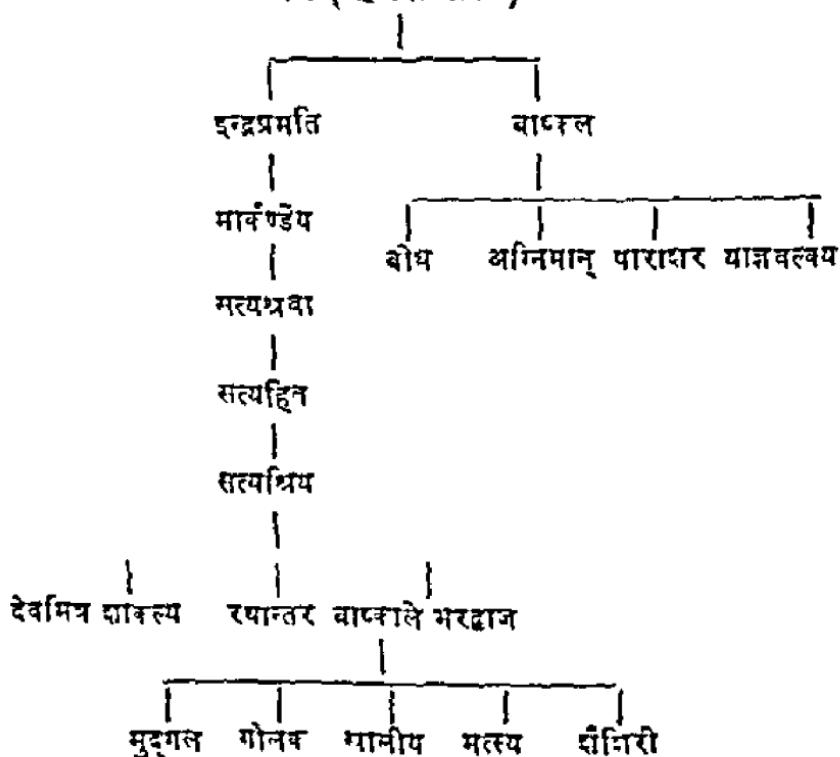
ताण्ड्य, दैवत्, षड्विंश, मन्त्र, ब्राह्मण, संहितोपनिषद्, आर्षेयवंश, समविधान, जैमिनी उपनिषद्, तलवकार, शास्त्रायन और कालबवि आदि अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ बन गये।

धीरे-धीरे वेद का वास्तविक महत्व महत्व नष्ट हुआ और स्वार्थियों ने यज्ञ के नाम पर भयानक हिंसा और व्यभिचार सम्बन्धी पाप करने शुरू कर दिये। हजारों वर्ष तक ये रोमांचकारी कार्य होते रहे—अन्त में जैन और बौद्ध धर्म का उदय हुआ। ये दोनों ही धर्म ब्राह्मण तथा उनके हिंसामय यज्ञों के विरुद्ध क्रान्ति के परिणाम थे। इन दोनों धर्मो ने वैदिक धर्म पर इतने जोर का आघात किया कि ब्राह्मणों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी। उन्होंने वेदांगों का निर्माण किया। शिक्षा और कल्प बनाये। बौद्धों की देखादेखी कल्प-साहित्य प्रायः सूत्रों में ही बनाया। इसके चार विभाग किये गये—श्रौत सूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्वसूत्र। एक-एक प्रकार के सूत्रों को अनेक-अनेक आचार्यो ने लिखा, जिनमें से बहुत से ग्रन्थ अद्यावधि उपलब्ध हैं।

श्रौतसूत्रों में यज्ञों के विधान की विधियों का वर्णन किया गया, गृह्यसूत्रों में गर्भाधानादि १८ गृह्य संस्कारों का वर्णन किया गया, धर्मसूत्रों में दैनिक जीवन व्यतीत करने, उत्तम लोक की प्राप्ति और पुण्य पाप के नियमों का वर्णन किया गया, तथा शुल्वसूत्रों में यज्ञशाला आदि बनाने की विधियों का वर्णन किया गया।

तीसरे वेदांग व्याकरण में लौकिक और वैदिक संस्कृत भाषाओं के नियमों का वर्णन, चौथे वेदांग में निघण्टु में वैदिक कोष का वर्णन, (निरुक्त इसी निघण्टु की टीका है) पांचवें वेदांग छन्द में लौकिक और वैदिक छन्दों का वर्णन तथा छटें वेदांग ज्योतिष में यज्ञों के समय के योग्य तारा, नक्षत्र आदि का वर्णन है।

(३) गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग १।५ से भी यही सिद्ध होता है।

"यान् मन्त्रानपश्यत स आथर्वणो वेदोऽभवत्।"

(४ ब्राह्मण ग्रन्थों में जहाँ वेदों की उत्पत्ति लिखी है वहाँ ब्राह्मणों की उत्पत्ति का नाम भी नहीं है, जिससे प्रगट होता है कि ब्राह्मण वेद नहीं हैं। उदाहरणार्थ—

"...... स एतानि त्रीणि ज्योतींष्यभ्यतप्यत सोऽग्नेरेवर्चोऽसृजत वायोर्यजूंष्यादित्यात् सामानि, स एतांत्रयीं विद्यामभ्यतप्यत।...। अथैतस्या एव त्रय्यै विद्यायै तेजोरसं प्रावृहत्, एतषामेव वेदानां भिषज्यायै स भूरित्यृचां प्रावृहत्...।

कौषीतकी ब्रा० ६।१०

"स इमानि त्रीणि ज्योतींष्यभितताप, तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्ने ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ॥३॥

स इमांस्त्रीन् वेदानभितताप तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदात्...॥४॥ शतपथ ११।५।८"

स एतामिस्तरा देवता अभ्यतपत्, तासां तप्यमानानां रसान् प्रावृहत्, अग्ने-ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात् ॥२॥

स एतान्त्रयीं विद्यामभ्यतपत्, तस्यास्तप्यमानाया रसान् प्रावृहत् भूरि-त्यृग्भ्य ॥३॥ छान्दोग्य उ० ४।१७

अतएव इनसे भी यही सिद्ध होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ सहिताओं के साथ-साथ प्रगट नहीं हुए।

(५) शतपथ ब्राह्मण १४।६।२०।६ में स्पष्ट रूप से वेदों से उपनिषदों को पृथक् माना है—

'ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराण विद्या उपनिषद. श्लोक सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि वाचैव सम्राट् प्रजायन्ते।"

लगभग ऐसा ही पाठ शतपथ ६४।५।४।१० में भी आता है। यहाँ सूत्र के आदि के समान उपनिषदों को भी वेदों से पृथक् माना है, अतएव जब ब्राह्मण ग्रन्थ स्वय ही ब्राह्मणों के भाग उपनिषद् को वेद नहीं मानते तो ब्राह्मण स्वय किस प्रकार वेद हो सकते हैं।

पाणिनीय सूत्र—

शौनकादिभ्यश्छन्दसि ४।३।१०६

से हम जानते हैं कि शौनक किसी शाखा या ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता है। सम्भवत यह शाखा आथर्वणों की थी, आश्वलायन शौनक का शिष्य था। शौनक शिष्य होने से ही आश्वलायन अपने श्रौतसूत्र या गृह्यसूत्र के अन्त में—नम शौनकाय नम शौनकाय लिखता है।

शाखाप्रवर्तक होने से शौनक व्यास का समीपवर्ती है, अतएव महिदास ऐतरेय भी *कृष्ण द्वैपायन व्यास से निकट ही रही है, इस महिदास ऐतरेय का प्रवचन* होने से ऐतरेय ब्राह्मण महाभारत-कालीन है। और इसी महिदास का उल्लेख करने से छान्दोग्य उपनिषद् का ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन है। उपनिषद् भाग कुछ पीछे का भी हो सकता है, क्योंकि याज्ञवल्क्यादि ऋषियों ने एक दिन में ही तो सारा ब्राह्मण नहीं कह दिया था, इसके प्रवचन में कई-कई वर्ष लगे होंगे। इससे प्रतीत होता है कि ताण्ड्य आदि ऋषि जब छान्दोग्य आदि उपनिषदों को अभी कह रहे होंगे तो महिदास ऐतरेय का देहान्त हो चुका होगा। महिदास इन दूसरे ऋषियों की अपेक्षा कुछ कम ही जीवित रहे होंगे।

जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मण ४।२।११ के निम्नलिखित वाक्य की भी यही सगति है—

एतद्ध तद्विद्वान् ब्राह्मण उवाच महिदास ऐतरेय ।······।स ह षोडशशत वर्षाणि जिजीव।

ऐतरेय आरण्यक ऐतरेय ब्राह्मण का ही अन्तिम भाग है, उसमें भी महिदास

ऐतरेय का नाम आया है—

एतद्ध स्वमै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः ।२।१।८

जिससे हमारे पूर्व कथन की पुष्टि होती है।

यहाँ यह बात विशेप रूप से ध्यान में रखने की है कि प्राचीन ग्रन्थकार अपना नाम उपरोक्त प्रकार से भी ग्रन्थ में दे दिया करते थे। शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य ने, कामसूत्रों में वातस्यायन ने और वेदान्त सूत्रों में बादरायण ने इसी प्रकार अपने नाम का प्रयोग किया है। खोजने पर और भी सैंकड़ों उदाहरण ऐसे मिल सकते हैं।

यहाँ एक बात और भी स्मरण रखने की है कि महिदास ऐतरेय की अवस्था 'षोडशं वर्षशतं' एक सौ सोलह वर्ष थी न कि सोलहसौ वर्ष, क्योंकि शंकर आदि ने भी इसका यही अर्थ लिया है और यही अर्थ संभवत भी प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त छान्दोग्य के इस प्रकरण में पुरुष को यज्ञस्त्य मानकर उसकी सवनों से तुलना की है। तीनों सवनों के कुल वर्ष भी २४+४४+४८=११६ ही होते हैं, अतः महिदास ऐतरेय की आयु ११६ वर्ष ही थी।

(१०) सामविधान ब्राह्मण ३।९।३ में एक वंश कहा है, वह निम्नलिखित प्रकार से है—

(१) प्रजापति
|
(२) बृहस्पति
|
(३) नारद
|
(४) विश्वक्सेन
|
(५) व्यास पाराशर्य
|
(६) जैमिनि
|
(७) पौष्पिण्ड्य
|
(८) पाराशर्यायण
|
(९) बादरायण
|

(१०) ताण्डि
|
(११) शाट्यायनि

इन्हीं अन्तिम दो व्यक्तियों ने ताण्ड्य और शाट्यायन ब्राह्मणों का प्रवचन किया था। ये आचार्य पाराशर्य व्यास से कुछ ही पीछे के हैं, अत इनके कहे हुए ब्राह्मण ग्रन्थ भी महाभारतकालीन ही हैं। सम्भवत शतपथ ६।१।२।२५ में—

'अथ ह स्माह ताण्ड्य.'

जिस ताण्ड्य का कथन है, वह इसी का सम्बन्धी है।

इस प्रकार अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों का प्रवचन महाभारत काल में ही हुआ है। अब जब हम इस बात पर विचार करते है कि वैदिक सूक्तों और ब्राह्मणों की लम्बी अनादि अनन्त थोथी बातों में क्या तारतम्य है तो हमारे सामने तत्कालीन समाज की वस्तुस्थिति सम्मुख आ जाती है। यह वह काल था, जब आर्य लोग जो केवल आकाश, सूर्य और प्रभात को देखकर उन पर मोहित होते थे, विस्तृत जाति और जनपद निर्माण कर चुके थे—प्रजापति, राज्य और नागरिकता के सभी स्थूल उपकरण निर्माण कर चुके थे—तब वे केवल वृष्टि के देवता इन्द्र की अथवा प्रभात की देवी उषा की स्तुति सीधे-सीधे ढग से कैसे करते रहते ? उनमें अब आडम्बर और रूढियों के साथ-साथ प्रमाद और सांसारिकता बढ गयी थी। अब सायकाल के अर्घ्य से लेकर बड़े-बड़े विधान के राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान होता था जो वर्षों में समाप्त होता था। यज्ञों के नियम, छोटी-छोटी बातों का गुरुत्व, और उद्देश्य तुच्छ रीतियाँ अब मनुष्यों के उन स्वच्छ हृदयों में जिनमें कभी केवल वेदों की विशुद्ध भावना थी—उसी प्रकार मिल गयी थी जैसे वर्षा के निर्मल जल धरती में पड़ने पर धूल मिल जाती है। इसलिए ब्राह्मणों की लिखने की प्रणाली में बड़ा अन्तर उत्पन्न हो गया।

योरोप के साहित्य का इतिहास भी तो ऐसी ही साक्षी देता है ? क्या योरोप में मध्यकाल के इतिहास और कल्पित कथाएँ उसी प्रणाली पर नहीं बनायी गयीं जिस प्रणाली में चौदहवीं शताब्दि और पन्द्रहवीं शताब्दि में ग्रन्थों का निर्माण हुआ था ? क्या ह्यूम और गिबन ने मध्यकाल की शैली का अनुसरण नहीं किया, स्काट ने ही क्या मध्यकाल की शैली का अनुसरण किया ? इनके वर्णित विषय तो एक ही थे।

यह स्पष्ट है कि महारानी एलिजाबेथ के शासन काल और शेक्सपियर और बेकन के साहित्य के बाद मध्यकाल के योरोपियन साहित्य प्रणाली में लिखना असम्भव था। स्पष्ट था कि लोगों की बुद्धि का विकास हुआ था। वर्तमान तर्कशास्त्र उत्पन्न हो रहा था—वाणिज्य-व्यापार शिल्प और समुद्रीय

यातायात में क्रान्ति हो रही थी—यही तो योरोपीय साहित्य के सृष्टि परिवर्तन का इतिहास है। ऋग्वेद के सूक्तों में केवल पंजाब का उल्लेख है—सभी यज्ञों, सामाजिक संस्कारों और यज्ञों का स्थान केवल सिन्धु तट है। या उसकी शाखा सरस्वती।

परन्तु ब्राह्मणों में आधुनिक दिल्ली के आसपास प्रबल कुरुओं का, आधुनिक कन्नौज के आसपास के देश में प्रबल पांचालों का, 'उत्तराखंड' में विदेहों का, अवध में कौशलों का तथा आधुनिक बनारस के आसपास काशिओं का उल्लेख मिलता है। इन्होंने बड़े-बड़े आडम्बरों से यज्ञों को किया और उनका प्रचार किया। इनमें अजातशत्रु, जनक, जनमेजय, जैसे प्रतापी राजा हुए। ब्राह्मणों में हम इन्हीं की सभ्यता और इन्हीं का उल्लेख पाते हैं। पंजाब मानो भूल गया था। दक्षिण अभी ज्ञात न था। या उसे लोग जंगली मनुष्यों तथा पशुओं की भूमि समझते थे। परन्तु अन्त में तो सूत्र ग्रन्थों में तो हमें दक्षिण के बड़े-बड़े राज्यों का वर्णन मिलता है।

आरण्यक ब्राह्मणों के पीछे का साहित्य है। और इन्हें ब्राह्मणों के अन्तिम अंश समझे जा सकते हैं। सायण ने लिखा है कि उन्हें इसलिए आरण्यक कहा गया था कि वे वन में पढ़े जाते थे और ब्राह्मण उन यज्ञों में प्रयोग किये जाते थे, जिन्हें गृहस्थ किया करते थे।

इन आरण्यकों का महत्व इसलिए है कि वे प्रसिद्ध धार्मिक विचारों के विशेष भंडार हैं जो उपनिपद् कहलाये। ब्राह्मण ग्रन्थों के पीछे कपिल और बुद्ध के प्रौढ़ विचारों का प्रचार होने पर फिर ब्राह्मणों की थोथी-निरर्थक और बेहूदी बकवाद जीवित रहना असम्भव था। उस समय भारतवासियों के हृदयों में एक नया प्रोत्साहन हो रहा था। विन्ध्याचल के आगे एक नयी भूमि का पता लग रहा था, यह दक्षिण पथ था। महात्मा अगस्त्य आर्यो को यह पथ दिखा चुके थे। उत्साह भक्ति और विवेचना से परिपूर्ण उपनिषद् लिखे जा रहे थे, जो ब्राह्मणों के प्रबल विरोधी थे। कपिल ने, जो प्रकाण्ड दार्शनिक और तत्त्वदर्शी महासत्व था, अपने प्रगाढ़ पाण्डित्य से भारतवर्ष भर में हलचल मचा दी थी और महान् बुद्ध अपने दुःखवाद की समस्या को उच्च आत्मवाद के रूप में—उस ब्राह्मण धर्म और उसके पाप से ऊबी और प्यासी जनता को प्रदान करने लगे थे।

फलतः ब्राह्मणों का लोप हुआ। विस्तृत और अर्थ विहीन नियमों को लोगों ने ठुकरा दिया। तब फिर से सभी धर्म और समाज के नियम संक्षेप से लिखे गये। संक्षेप में लिखना—उन विस्तृत ब्राह्मणों से ऊबे हुए मनुष्यों के लिए एक कला बन गयी। फलतः गूढ़ दार्शनिक विषयों का निर्माण हुआ। इस प्रकार ब्राह्मणों के आडम्बरमय ताल पर सूत्र ग्रन्थों के विवेकमय काल ने बड़ी विजय प्राप्त की।

३. ब्राह्मण काल में सामाजिक जीवन

उपनिषदों और कहीं-कहीं ब्राह्मणों से भी यह प्रकट होता है कि इस समय ब्राह्मणों और क्षत्रियों में श्रेष्ठता की स्पर्धा चल रही थी। ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के यज्ञविधानों में फँसे थे— तब क्षत्रियों ने उपनिषद् का मूलतत्व ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया था। यह ब्रह्मज्ञान ब्राह्मणों को नहीं बताया जाता था, आवश्यकता पड़ने पर छिपाया जाता था। ऐसे मनोरंजक उदाहरण हम नीचे पेश करते हैं—

विदेह जनक की भेंट कुछ ऐसे ब्राह्मणों से हुई जो कि अभी आये थे। ये श्वेतकेतु आरुणेय, सोमशुष्म सत्ययज्ञ और याज्ञवल्क्य थे। उसने पूछा—"क्या तुम अग्निहोत्र की विधि जानते हो?"

तीनों ब्राह्मणों ने अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुसार उत्तर दिये परन्तु किसी के उत्तर ठीक न थे। याज्ञवल्क्य का उत्तर यथार्थ बात के निकट था परन्तु वह पूर्ण न था। जनक ने उनसे यही कहा और रथ में बैठकर चल दिया।

ब्राह्मणों ने कहा—"इस राजन्य ने हम लोगों का अपमान किया है।" याज्ञवल्क्य रथ पर चढ़कर राजा के पीछे गया और शंका निवारण की। (शतपथ ११।४।५) अब स जनक ब्राह्मण समझा गया। (शत ब्रा० ११।६।२१)

श्वेतकेतु आरुणेय पांचालों की एक राजसभा में गया। प्रवाहन क्षत्रिय ने उससे पाँच प्रश्न किये, पर वह एक का भी उत्तर न दे सका। तब राजा ने उसे मूर्ख कहकर भगा दिया—वह पिता के पास आया और कहा—"पिता! उस राजन्य ने मुझसे पाँच प्रश्न किये, और मैं एक का भी उत्तर न दे सका।" उसके पिता गौतम ने कहा—"पुत्र! यह ब्रह्मविद्या हम ब्राह्मणों को प्रकट नहीं है।"

दूसरे दिन गौतम राजा के पास गया और शिष्य की तरह समिधा लेकर सम्मुख बैठा। राजा ने कहा— हे गौतम! यह ज्ञान तुमसे प्रथम और किसी भी ब्राह्मण ने नहीं प्राप्त किया था, इसलिए ब्राह्मणों में सबसे प्रथम तुम्हीं को मैं यह ज्ञान प्रदान करता हूँ।"

और तब गौतम ने उस वह ज्ञान दिया। यह विद्या केवल क्षत्रियों ही की थी।

(छान्दोग्य उप० ५।३)

इसी उपनिषद् में एक दूसरे स्थान पर इसी प्रवाहन ने दो घमण्डी ब्राह्मणों को निरुत्तर करके उन्हें आत्मा का ज्ञान बताया था। शतपथ ब्राह्मण (१०।६।१।१) में और छान्दोग्य उप० (५।२) में एक ही कथा है—वह इस प्रकार है कि पाँच ब्राह्मण गृहस्थों और वेदान्तियों में इस बात की जिज्ञासा हुई कि 'आत्मा क्या है? ईश्वर क्या है?' वे उद्दालक आरुणी के पास गये। आरुणी को भी इस विषय में सन्देह था? इसलिए वह अश्वपति कैकय राजा के पास उन्हें ले गया। जिसने उन्हें सादर ठहराया। वे दूसरे दिन हाथ में समिधाएँ लिए हुए

राजा के सन्मुख शिष्य की भाँति गये और उसने वह ज्ञान प्रदान किया।

कौशीतकी उपनिषद् (१।१) में लिखा है कि उद्दालक आरुणी और उसका पुत्र श्वेतकेतु दोनों हाथ में समिधाएँ लिए हुए चित्रगांगायनी राजा के पास गये और समाधान किया।

कौशीतकी उपनिषद् (४) में प्रसिद्ध विद्वान् गार्ग्यवालाकि और काशियों के विद्वान राजा अजातशत्रु के वाद-विवाद के विषय में एक प्रसिद्ध कथा लिखी है। इस घमण्डी ब्राह्मण ने राजा को ललकारा परन्तु शास्त्रार्थ में हार गया। तब अजातशत्रु ने कहा—हे वालाकि तुम केवल इतना ही ज्ञान रखते हो ? उसने कहा केवल इतना ही। तब अजातशत्रु ने कहा—तुमने मुझे व्यर्थ ही यह कहकर ललकारा कि—क्या मैं तुम्हें ईश्वर का ज्ञान दूँ। हे वालाकि, वह जो सब वस्तुओं का कर्त्ता है जिनका तुमने वर्णन किया—वह जिसकी यह सब माया है केवल उसी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

तब वालाकि अपने हाथ में ईंधन लेकर यह कहता हुआ आया 'क्या मैं आपके निकट शिष्य की भाँति आऊँ ?' तब अजातशत्रु ने उसे उपदेश दिया।

यह कथा तथा श्वेतकेतु आरुणेय और प्रवाहन की कथा भी वृहदारण्यक उपनिषद् में दी गयी है।

इनके सिवा उपनिषदों में ऐसे अनगिनत वाक्य हैं जो इस बात को प्रमाणित करते हैं कि क्षत्रिय सच्चे धर्म ज्ञान के सिखाने वाले थे।

वैदिक काल की समाप्ति होने तक आर्यों ने बड़े-बड़े राज्य स्थापित कर लिए थे—इस बात का पिछले अध्यायों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता लग जायेगा। गंगा और जमुना के द्वावे में आर्यों के बस जाने के उपरान्त ४।५ सौ वर्षों तक न तो इन्हें युद्ध करने पड़े, न कोई विकट यात्रा करनी पड़ी। फलतः वे कृषि-शिल्प और विनियम में लगे और कई सुगठित राज्यों की नींव डाल सके—जो सर्वथा शान्त और आदर्श राज्य थे। एक राजा ने अपने राज्य की सुव्यवस्था का वर्णन इस ढंग से किया है—

'मेरे राज्य में कोई चोर, कंजूस, शरावी, अग्निहोत्र न करने वाला, मूर्ख या व्यभिचारी स्त्री-पुरुष नहीं है।' (छान्दोग्य उ० ५।२) ऐसे शब्द कहना किसी भी राजा के लिए अति महत्वपूर्ण थे। परन्तु जब हम देखते हैं कि ये राजा लोग उच्च कोटि के अध्यात्म तत्व के ज्ञाता गुरु और विद्वानों में अपना समस्त समय व्यतीत करने वाले थे—तब हमें इस विषय में सन्देह नहीं रह जाता कि उस समय की प्रजा की दशा ऐसी ही होगी, जैसा कि अश्वपति कैकय का वाक्य घोषित करता है।

इस प्रकार वैदेशिक युद्धों और संघर्षों से दूर रहकर आर्यों ने जहाँ ऐसे व्यवस्थित और सुन्दर राज्य बनाये वहाँ उन्होंने एक दोष भी उत्पन्न किया—

वह यह कि उनमें जातीय कट्टरता और सकीर्णता उत्पन्न हो गयी। यज्ञ कराना एक पैतृक व्यवसाय हो गया और पीछे से वही एक जाति या वर्ण के रूप में बदल गया। धार्मिक रीतियों का आडम्बर बहुत अधिक बढ़ गया था। पुरोहितों के कृत्यों को राजा लोग स्पर्धा से करते थे—स्पर्धा से दान देते थे—इसलिए उनका मान सर्व साधारण में खूब हो गया था। वे बेटी-व्यवहार परस्पर करने लगे थे, अन्य कुल की कन्या कृपापूर्वक ले लेते थे पर देते नहीं थे। यही दशा राजाओं की हुई। उन्होंने भी अपना एक वर्ण सुगठित कर लिया और और बेटी-व्यवहार में वही नियम प्रचलित कर दिया। विदेह कोशल आदि के राजा—राज्य-सत्ता, और गहन ब्रह्मज्ञान के कारण प्रजा की दृष्टि में देवतुल्य माने जा रहे थे। ऐसी दशा में उनकी कन्याएं मांगने का साहस कौन करता? परन्तु ब्राह्मण धन और सम्मान में उनकी बराबरी के व्यक्ति थे। उनके साथ बेटी-व्यवहार उनका प्रथम अबाध रूप से चलता रहा, पीछे ब्राह्मणों ने जब क्षत्रियों पर प्रधानता प्राप्त की तब उन्होंने क्षत्रियों को कन्याएँ देना बन्द कर दिया।

यह बात तो स्पष्ट होती है कि इस काल में जो वर्णभेद हुआ वह व्यवसाय प्रधान हुआ। व्यवसायों की भिन्नता ही उसका कारण थी। वायुपुराण में लिखा है कि—आदि या कृत युग में जाति-भेद नहीं था और इसके उपरान्त ब्रह्मा ने मनुष्य के कार्य के अनुसार उनमें भेद किया। "उनमें से जो लोग शासन करने योग्य थे और लड़ाई-भिड़ाई के काम में उद्यत थे उन्हें औरों की रक्षा करने के कारण उसने क्षत्री बनाया। वे निःस्वार्थी लोग जो उनके साथ रहते थे, सत्य बोलते थे, और वेदों का उच्चारण भली-भाँति करते थे ब्राह्मण हुए। जो लोग पहले दुर्बल थे, किसानों का काम करते थे, भूमि जोतते थे, और उद्यमी थे; वे वैश्य अर्थात् कर्षक और जीविका उत्पन्न करने वाले हुए। जो लोग सफाई करने वाले थे और नौकरी करते थे और जिनमें बहुत ही कम बल या पराक्रम था वे शूद्र कहलाये।" इस ही ऐसा वर्णन अन्य पुराणों में पाये जाते हैं।

रामायण अपने आधुनिक रूप में बहुत पीछे के काल में बनायी गयी थी। जैसा कि हम ऊपर दिखला चुके हैं। उत्तरकाण्ड के १४वें अध्याय में लिखा है कि कृत युग में केवल ब्राह्मण लोग ही तपस्या करते थे, त्रेता युग में क्षत्री लोग उत्पन्न हुए और तब आधुनिक चार जातियाँ बनीं। इस कथा की भाषा का ऐतिहासिक भाषा में उल्था कर डालने से इसका यह अर्थ होता है कि वैदिक युग में हिन्दू आर्य लोग सयुक्त थे और हिन्दुओं के कृत्य करते थे, परन्तु ऐतिहासिक काव्य काल में धर्माध्यक्ष और राजा लोग पृथक होकर पृथक पृथक जाति के हो गये और जन साधारण भी वैश्यों और शूद्रों की नीचस्थ जातियों में बँट गये।

हम यह भी देख चुके हैं कि महाभारत भी अपने आधुनिक रूप में बहुत पीछे के समय का ग्रन्थ है। परन्तु उसमें भी जाति की उत्पत्ति में प्रत्यक्ष और यथार्थ

वर्णन पाये जाते हैं। शान्ति पर्व के १८८वें अध्याय में लिखा है कि "लाल अंग वाले द्विज लोग जो सुख भोग में आसक्त, क्रोधी और साहसी थे और अपनी यज्ञादि की क्रिया को भूल गये थे, वे क्षत्रिय वर्ण में हो गये। पीले रंग के द्विज लोग जो गौओं और खेती बारी से अपनी जीविका पालते थे और अपनी धार्मिक क्रियाओं को नहीं करते थे वे वैश्य वर्ण में हो गये। काले द्विज लोग जो अपवित्र, दुष्ट, झूठे और लालची थे और जो हर प्रकार के काम करके अपना पेट भरते थे, शूद्र वर्ण के हुए। इस प्रकार द्विज लोग अपने-अपने कर्मों के अनुसार पृथक होकर भिन्न-भिन्न जातियों में बँट गये।"

इन वाक्यों के तथा ऐसे ही दूसरे वाक्यों के लिखने वाले निःसन्देह इस कथा को जानते थे कि चारों जातियों की उत्पत्ति ब्रह्मा की देह के चार भागों से हुई है। परन्तु उन लोगों ने इसे स्वीकार न करके इसे कवि का अलंकारमय वर्णन समझा है। जैसी कि वह यथार्थ में है भी। वे बराबर इस बात को लिखते हैं कि पहले-पहल जातियाँ नहीं थीं। वे बहुत ही स्पष्ट तथा न्याय-संगत अनुमान करते हैं कि काम-काज और व्यवसाय के भेद के कारण पीछे से जाति-भेद हुआ। अब हम इस प्रसंग को छोड़कर इस बात पर थोड़ा विचार करेंगे कि ऐतिहासिक काव्य काल में जाति-भेद किस प्रकार था।

हम ऊपर कह चुके हैं पहिले-पहल जाति भेद गंगा के तटों के प्रांतवासियों ही में हुआ। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि इस रीति के बुरे फल तब तक दिखायी नहीं दिये और न तब तक दिखायी दे ही सकते थे, जब तक कि हिन्दू लोगों के स्वतन्त्र जाति होने का अन्त नहीं हो गया। ऐतिहासिक काव्य काल में भी लोग ठीक ब्राह्मणों, क्षत्रियों की नाईं धर्म-विषयक ज्ञान और विद्या सीखने के अधिकारी समझे जाते थे और ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों में किसी-किसी अवस्था में परस्पर विवाह भी हो सकता था। इसलिए प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास पढ़ने वाले इस जातिभेद की रीति के आरम्भ होने के लिए चाहे कितना ही अफसोस क्यों न करें, पर उन्हें याद रखना चाहिए कि इस रीति के बुरे फल भारतवर्ष में मुसलमानों के आने के पहले दिखायी नहीं पड़े थे।

श्वेत यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय में कई व्यवसायों के नाम मिलते हैं जिससे कि उस समय के समाज का पता लगता है—जिस समय इस अध्याय का संग्रह किया गया था। यह बात तो स्पष्ट है कि इसमें जो नाम दिये हैं वे पृथक-पृथक व्यवसायों के नाम हैं, पृथक-पृथक जातियों के नहीं हैं। जैसे २० और २२ कण्डिका में भिन्न-भिन्न प्रकार के चोरों का उल्लेख है, और २६वीं में घुड़सवारों, सारथियों और पैदल सिपाहियों का। इसी प्रकार, २७ वीं कण्डिका में जो बढ़ईयों, रथ बनाने वालों, कुम्हारों और लुहारों का उल्लेख है, वे भी भिन्न-भिन्न कार्य करने वाले हैं—कुछ भिन्न जातियाँ नहीं हैं। उसी कण्डिका में निपाद और दूसरे-

दूसरे लोगो का भी वर्णन है। यह स्पष्ट है कि ये लोग यहाँ की आदि देशवासिनी जातियों में से थे और आजकल की भांति उस समय के हिन्दू समाज में सबसे नीचे थे।

इसी ग्रन्थ के ३०वें अध्याय में यह नामावली बहुत बढाकर दी है। हम पहले दिखला चुके हैं कि यह अध्याय बहुत पीछे के समय का है और वास्तव में उपोद्घात है। पर इसमें भी बहुत से ऐसे नाम मिलते हैं जो केवल व्यवसाय प्रगट करते हैं और बहुत से ऐसे हैं जो निःसन्देह आदिवासियो के हैं। उसमें इसका तो कहीं प्रमाण ही नहीं मिलता कि वैश्य लोग कई जातियो में बँटे थे। उसमें नाचने वाले वक्ताओ, और सभासदो के नाम, रथ बनाने वालो, बढईयो, कुम्हारो, जवाहिरियो, खेतिहरो, तीर बनाने वालो और धनुष बनाने वालो के नाम, बौने, कुबडे, अन्धे और बहिरे लोगो के, वैद्य और ज्योतिषियो के, हाथी-घोडे और पशु रखने वालो के, नौकर द्वारपाल, रसोइयो और लकडिहारो के, चित्रकार और नामादि खोदने वालो के, धोबी, रगरेज और नाइयो के, विद्वान् मनुष्य, घमण्डी मनुष्य और कई प्रकार की स्त्रियो के, चमार, मछुआहे, व्याध और बहलिया के, सोनार और व्यापारी और कई तरह के रोगियो के, नकली बाल बनाने वाला, कवि और कई प्रकार के गवैयो के नाम मिलते हैं। यह स्पष्ट है कि ये सब नाम जातियो के नही हैं। इसके सिवाय मागध, सूत, भमिल, मृगयु, स्वनिन, दुर्मेह आदि जो नाम आये हैं वे स्पष्टत. आदिवासियो के नाम हैं जो आर्य समाज की छाया में रहते थे। यहाँ पर हमे केवल इतना ही और कहना है कि करीब-करीब यही नामावली तैत्तिरीय ब्राह्मण मे भी दी है।

ऊपर की नामावली से जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं, उस समय के समाज और व्यवसाय का कुछ हाल जाना जाता है; पर इस नामावली मे और जाति से कोई सम्बन्ध नही है। ऐतिहासिक काव्य काल मे और इसके पीछे भी मुसलमानो के यहाँ आने के समय तक बराबर आर्यों मे से अधिकतया लोग वैश्य थे, यद्यपि वे कई प्रकार का व्यवसाय करते थे। वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रिय यही तीन मिलकर आर्य जाति बनाते थे और वे इस जाति के सब स्वत्व के और पैतृक विद्या और धर्म सीखने के अधिकारी थे। केवल पराजित आदिवासी ही जो शूद्र जाति के थे, आर्यों के स्वत्वो मे अलग रक्खे गये थे।

पुराने समय की जाति-रीति और आजकल की जाति-रीति मे यही मुख्य भेद है। पुराने समय म जाति ने ब्राह्मणो को कुछ विशेष अधिकार और क्षत्रियो को भी कुछ विशेष अधिकार दिया था। पर आर्यों को कदापि बाँटकर अलग अलग नहीं कर दिया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, और साधारण लोग यद्यपि अपना पृथक-पृथक पैतृक व्यवसाय करते थे पर वे सब अपने को एक ही जाति का समझते थे, एक ही धर्म की शिक्षा पाते थे। एक ही पाठशाला मे पढ़ने जाते थे। उन सबका एक ही

साहित्य और कहावतें थीं, सब साथ ही मिलकर खाते-पीते थे, सब प्रकार से आपस में मेल-मिलाप रखते थे और एक-दूसरे से विवाह भी करते थे और अपने को पराजित आदिवासियों से भिन्न 'आर्यजाति' का कहने में अपना बड़ा गौरव समझते थे। पर आजकल जाति ने वैश्य आर्यों को सैंकड़ों सम्प्रदायों में पृथक-पृथक कर दिया है। इन सम्प्रदायों ने जाति-भेद बहुत ही बढ़ा दिया है, उनमें परस्पर विवाह और दूसरे सामाजिक हेलमेल को रोक दिया है, सब लोगों में धर्म, ज्ञान और साहित्य का अभाव कर दिया है। उन्हें वास्तव में शूद्र बना दिया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐसे बहुत वाक्य मिलते हैं जिनसे जान पड़ता है कि पहले समय में जाति-भेद ऐसा कड़ा नहीं था, जैसाकि पीछे के समय में हो गया। उदाहरण के लिए ऐतरेय ब्राह्मण (६०-२६) में एक अपूर्व वाक्य मिलता है—"जब कोई क्षत्रिय किसी यज्ञमें किसी ब्राह्मण का भाग खा लेता है तो उसकी सन्तान ब्राह्मणों के गुण वाली होती है जो दान लेने में तत्पर, सोम की प्यासी और भोजन की भूखी होती है और अपनी इच्छा के अनुसार सब जगह घूमा करती है। तथा दूसरी या तीसरी पीढ़ी में वह पूरी तरह ब्राह्मण होने के योग्य हो जाती है।"

"जब वह वैश्य का भाग खा लेता है तो उसके वैश्य के गुण वाली सन्तान होगी जो दूसरे राजा को कर देगी। और दूसरी वा तीसरी पीढ़ी में वे लोग वैश्य जाति के होने के योग्य हो जाते हैं।"

"जब वह शूद्र का भाग ले लेता है तो उसकी सन्तान में शूद्र के गुण होंगे, उन्हें तीनों उच्च जातियों की सेवा करनी होगी और वे अपने मालिकों की इच्छानुसार निकाल दिये जावेंगे और पीटे जावेंगे। और दूसरी वा तीसरी पीढ़ी में वे शूद्रों की गति पाने के योग्य हो जाते हैं।"

हम पिछले अध्याय में दिखला चुके हैं कि विदेह के राजा जनक ने याज्ञवल्क्य को ऐसा ज्ञान दिया कि जो इसके पहले ब्राह्मण लोग नहीं जानते थे, और तब से वह ब्राह्मण समझे जाने लगे। (शतपथ ब्राह्मण ११,६,२,१)। ऐतरेय ब्राह्मण (२,१९) में इलूषा के पुत्र कवष का वृत्तान्त दिया है, जिसमें उसे और ऋषियों को यह कहकर सत्र से निकाल दिया था कि "एक धूर्त दासी का पुत्र, जोकि ब्राह्मण नहीं है, हम लोगों में कैसे रहकर दीक्षित होगा।" परन्तु कवष देवताओं को जानता था और देवता लोग कवष को जानते थे और इसलिए वह ऋषियों की श्रेणी में हो गया। इसी प्रकार से छान्दोग्य उपनिषद् (४,४) में सत्यकाम जबाल की सुन्दर कथा में यह बात दिखलायी गयी है कि उन काल में सच्चे और विद्वान् लोगों ही का सबसे अधिक आदर किया जाता था और वे ही सबसे ऊँची जाति के समझे जाते थे। यह कथा अपनी सरलता और काव्य में ऐसी मनोहर है कि हम उसको यहाँ लिख देना उचित समझते हैं—

(१) जबाल के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता को बुलाकर पूछा कि "हे

माता, मैं ब्रह्मचारी हुआ चाहता हूँ। मैं किस वंश का हूँ।"

(२) उसने उससे कहा, 'पुत्र, मैं नहीं जानती कि तू किस वंश का है, क्योंकि युवावस्था में जब मुझे भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के यहां दासी का काम करना पड़ता था, उस समय मैंने तुझे गर्भ में धारण किया था। मैं यह नहीं जानती कि तू किस वंश का है। मेरा नाम जबाल है, तू सत्यकाम है, इसलिए यह कह कि मैं सत्यकाम जबालि हूँ।

(३) वह गौतम हरिद्रुमत के पास गया और उससे बोला, "महाज्ञानी, मैं आपके पास ब्रह्मचारी हुआ चाहता हूँ। महाज्ञानी, क्या मैं आपके पास आ सकता हूँ?"

(४) उसने उससे कहा 'मित्र तू किस वंश का है?' उसने उत्तर दिया, 'महाशय, मैं यह नहीं जानता कि मैं किस वंश का हूँ। मैंने अपनी माता से पूछा था, उसने उत्तर दिया कि "युवावस्था में जब मुझे बहुधा दासी का काम करना पड़ता था उस समय मैंने तुझे गर्भ में धारण किया था। मैं यह नहीं जानती कि तू किस वंश का है। मेरा नाम जबाला है, तू सत्यकाम है, इसलिए महाशय भिन्न व्यक्तियों के यहां मैं सत्यकाम जबालि हूँ"।'

(५) उसने कहा, "सच्चे ब्राह्मण के सिवाय और कोई इस प्रकार से नहीं बोलेगा। मित्र जाओ ईंधन ले आओ मैं तुझे दीक्षा दूंगा। तुम सत्य से नहीं टले।"

इसलिए यह सत्य प्रिय युवा दीक्षित किया गया और उस समय की रीति के अनुसार अपने गुरु के पशु चराने के लिए जाया करता था। कुछ समय में उसने प्रकृति और पशुओं से भी उन बड़ी बड़ी बातों को सीखा जोकि ये लोग सीखनहार हृदय वाले मनुष्यों को सिखलाते हैं। वह जिस झुण्ड को चराता था उसके बैल से, जिस अग्नि को जलाता उससे, और सन्ध्या समय जब वह अपनी गौओं को बाड़े में बन्द करने और सन्ध्या की अग्नि में लकड़ी डालने के पीछे उसके पास बैठता था, तो उसके पास जो राजहंस और अन्य पक्षी उड़ते थे उनसे भी बातें सीखता था। तब यह युवा शिष्य अपने गुरु के पास गया और उसने उससे तुरन्त पूछा, "मित्र तुम में ऐसा तेज है जैसे कि तुम ब्रह्म को जानते हो। तुम्हें किसने शिक्षा दी है?' युवा शिष्य ने उत्तर दिया "मनुष्य ने नहीं।"

जो बात युवा शिष्य ने सीखी थी वह यद्यपि उस समय के मनगढ़त शब्दों में छिपी हुई थी पर वह सत्य थी कि चारों दिशा, पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग और समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और जीवों की इन्द्रियां तथा मन, सारांश यह कि सारा विश्व ही ब्रह्म अर्थात् ईश्वर है।

उपनिषदों की ऐसी शिक्षा है और यह शिक्षा इसी प्रकार की कल्पित कथाओं में वर्णित है जैसा कि हम आगे चलकर दिखलावेंगे। जब कोई विद्वान ब्राह्मणों के नियमों, विधानों के अशोचक और निरर्थक पृष्ठों को उलटता है तो उसे उस

सत्यकाम जवालि जैसी कथाएँ, जोकि मानुषी भावना, करुणा और उच्चतम सुचरित की शिक्षाओं से भरी है, धीरज देती और खुश करती है। पर इस कथा को यहाँ पर लिखने में हमारा ताप्पर्य यह दिखलाने का है कि जिस समय ऐसी कथाएँ बनी थीं उस समय तक जातिभेद के नियम इतने कड़े नहीं हो गये थे। इस कथा से हमको यह मालूम होता है कि दासी का लड़का जोकि अपने पिता को भी नहीं जानता था, केवल सच्चाई के कारण ब्रह्मचारी हो गया, प्रकृति तथा उस समय के पण्डित लोग उसे जो कुछ सिखला सकते थे उन सब बातों को उसने सीखा और अन्त में उस समय के सबसे बड़े धर्मशिक्षकों में हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय की जाति प्रथाओं में बड़ी ही स्वतन्त्रता थी। पीछे के समय की प्रथा की भांति उस समय रुकावटें नहीं थीं कि जब ब्राह्मणों को छोड़कर और किसी जाति को धर्म का ज्ञान ही नहीं दिया जाता था, वह ज्ञान जो जाति का मानसिक भोजन और जाति के जीवन का जीव है।

यज्ञोपवीत का प्रचार ऐतिहासिक काव्य काल ही से हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में (२,४,२) में लिखा है कि जब सब लोग प्रजापति के यहाँ आये तो देवता और पितृ लोग भी यज्ञोपवीत पहने हुए आये। कौशीतकी उपनिषद् (२-१) में लिखा है कि सबको जीतने वाला कौशीतिकी यज्ञोपवीत पहनकर उदय होते हुए सूर्य की पूजा करता है।

इस प्राचीन काल में यज्ञोपवीत को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों ही पहनते थे, लेकिन केवल यज्ञ करते समय। परन्तु जिस प्राचीन समय का हम वर्णन कर रहे हैं, उस समय हिन्दू लोग सभ्य और शिष्ट हो गये थे और उन्होंने अपने घर के तथा सामाजिक काम करने के लिए सूक्ष्म नियम तक बना लिए थे। राजाओं की सभा विद्या का स्थान थी और उसमें सब जाति के विद्वान् और बुद्धिमान लोग बुलाये जाते थे, उनका आदर-सम्मान किया जाता था और इनाम दिया जाता था। विद्वान् अधिकारी लोग न्याय करते थे, और जीवन के सब काम नियम के अनुसार किये जाते थे। सुदृढ़ दीवारों और सुन्दर मकानों के नगर बहुतायत से हो गये थे, जिनमें न्यायधीश, दंड देने वाले और नगररक्षक लोग रहते थे। खेती की उन्नति की जाती थी और राज्याधिकारी लोगों का काम कर उगाहने और खेतिहारों के हित की ओर ध्यान देने का था।

विदेहों, काशियों और कुरु पांचालों की भांति सभ्य और विद्वान् राजाओं की सभायें उस समय में विद्या की मुख्य जगह थीं। ऐसी सभाओं में यज्ञ करने और विद्या की उन्नति करने के लिए विद्वान् पंडित लोग रखे जाते थे और बहुत-से ब्राह्मण ग्रन्थ जो कि हम लोगों को आजकल प्राप्त हैं, उन्हीं सम्प्रदायों के बनाये हुए हैं जिनकी नींव इन पंडितों ने डाली थी। बड़े-बड़े अवसरों पर विद्वान् लोग बड़े-बड़े दूर के नगरों और गांवों से आते थे और शास्त्रार्थ केवल क्रिया संस्कार

के ही विषय में नहीं होता था, वरन् ऐसे-ऐसे विषयों पर भी जैसे कि मनुष्य का मन, मरने के पीछे आत्मा का उद्देश्य, स्थान, आने वाली दुनियाँ, देवता, पितृ और भिन्न-भिन्न तरह के जीवों के विषय में, और सर्वव्यापी ईश्वर के विषय में जिसे हम सब चीजों में देखते हैं।

पर विद्या का स्थान सिर्फ सभा ही नहीं थी। विद्या की उन्नति के लिए परिषद् अर्थात् ब्राह्मणों के विद्यालय थे, इन परिषदों में दूर-दूर से युवा विद्यार्थी विद्या सीखने जाते थे। बृहदारण्यक उप-निषद्(६, २) में इसी प्रकार से लिखा है कि श्वेतकेतु विद्या सीखने के लिए पांचालों की परिषद् में गया। प्रोफेसर मेक्समूलर ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में ऐसे वाक्य उद्धृत किये हैं जिनसे जान पड़ता है कि इसके ग्रन्थकारों के अनुसार परिषद् में २१ ब्राह्मण होने चाहिए जो दर्शन, वेदान्त, और स्मृति-शास्त्रों को भलीभाँति जानते हों। पर उन्होंने यह दिखलाया है कि ये नियम पीछे के समय की स्मृति की पुस्तकों में दिये हैं और ये ऐतिहासिक काव्य काल में परिषदों का वर्णन नहीं करते। पराशर कहता है कि किसी गाँव के चार या तीन योग्य ब्राह्मण भी जो वेद जानते हों और होमाग्नि रखते हों, परिषद् बना सकते हैं।

मैक्समूलर कहता है—

इन परिषदों के अतिरिक्त अकेले एक-एक शिक्षक भी पाठशालायें स्थापित करते थे जिनकी तुलना योरोप के प्राइवेट स्कूलों से दी जा सकती है और इनमें देश के भिन्न-भिन्न भागों से बहुधा बहुत से विद्यार्थी लोग इकट्ठे हो जाते थे। ये विद्यार्थी रहने के समय तक दास की नाईं गुरु की सेवा करते थे और बारह वर्ष बाद पूर्ण शिक्षा प्राप्त करके गुरु को उचित दक्षिणा देकर अपने घर अपने लालायित सम्बन्धियों के पास लौट जाते थे। उन विद्वान् ब्राह्मण लोगों के पास भी जो वृद्धावस्था में संसार से पृथक् होकर वनों में जा बसते थे, बहुधा विद्यार्थी लोग इकट्ठे हो जाते थे और उस समय की अधिकतर कल्पनाएँ इन्हीं वन में रहने वाले विरक्त साधु और विद्वान् महात्माओं की है। इस तरह से हिन्दू लोगों में विद्या और ज्ञान की जितनी प्रतिष्ठा थी उतनी कदाचित् किसी दूसरी जाति में प्राचीन अथवा नवीन समय में भी नहीं हुई। हिन्दुओं के धर्म के अनुसार अच्छे काम व धर्म की क्रियाओं के करने से केवल उनको उचित फल और जीवन में सुख ही मिलता है, पर ईश्वर में मिलकर एक हो जाना, यह केवल सच्चे ज्ञान ही से प्राप्त हो सकता है।

'जब विद्यार्थी लोग इस तरह से किसी परिषद् में अथवा गुरु से उसकी परम्परागत विद्या सीख लेते थे तो वे अपने घर आकर विवाह करते थे और गृहस्थ होकर रहने लगते थे। विवाह के साथ ही साथ उनकी गृहस्थी के धर्म भी आरम्भ होते थे और गृहस्थ का पहला धर्म यह था कि वह किसी शुभ नक्षत्र में

होमाग्नि को जल दे, सवेरे और सन्ध्या के समय अग्नि को दूध चढ़ाया करे, दूसरे धर्म के और गृहस्थ के कृत्य किया करे, और सबसे वढ़-चढ़कर यह कि अतिथियों का सत्कार किया करे। हिन्दुओं के कर्त्तव्य का सार नीचे लिखे गये वाक्यों में समझा गया है—

"सत्य वोलो ! अपना कर्त्तव्य करो ! वेदों का पढ़ना मत भूलो ! अपने गुरु को उचित दक्षिणा देने के वाद वच्चों के जीवन का नाश न करो ! सत्य से मत टलो ! कर्त्तव्य से मत टलो ! हितकारी वातों की उपेक्षा मत करो ! वड़ाई में आलस्य मत करो ! वेद के पढ़ने-पढ़ाने में आलस्य मत करो !"

"देवताओं और पितरों के कामों को मत भूलो ! अपनी माता को देवता की नाईं मानो ! अपने पिता को देवता की नाई मानो ! अपने गुरु को देवता की नाई मानो ! जो काम निष्कलंक हैं उन्हीं के करने में चित्त लगाओ, दूसरों में नहीं। जो-जो अच्छे काम हम लोगों ने किये हैं उन्हें तुम भी करो !"

(तैत्तिरीय उपनिषद् १, २)

धनवानों का धन सोना, चाँदी और जवाहिर, गाड़ी-घोड़ा, गाय-खच्चर और दास, घर और उपजाऊ खेत और हाथी भी होता था। (छान्दोग्य उपनिपद् ५, १३, १७, १९, १०, २४; शतपथ ब्राह्मण ३, २, ४८; तैत्तिरीय उपनिषद् २, व १२ आदि)

छान्दोग्य उपनिपद् के निम्नलिखित वाक्य से उस समय की कुछ धातुओं का पता लगता है—

"जिस तरह कोई सोने को लवण (सोहागे) से जोड़ता है, चाँदी को सोने से, टीन को चाँदी से, जस्ते को टीन से, लोहे को जस्ते से, काठ को लोहे अथवा चमड़े से।" (४, १७, ७)

ऐतरेय ब्राह्मण (८, २२) में लिखा है कि "अत्रि के पुत्र ने दस हजार हाथियों और दस हजार दासियों को दान दिया था जो कि गले में आभूपणों से अच्छी तरह से सज्जित थीं और सव दिशाओं से लायी गयी थीं।" पर यह वात स्पष्टत: वहुत वढ़ा-चढ़ाकर लिखी गयी है।

प्रसिद्ध नगर हस्तिनापुर, काम्पिल्य, अयोध्या तथा मिथिला के निवासियों के तीन हजार वर्ष पहले के सामाजिक जीवन का वैभवशाली वर्णन प्राप्त होता है। उस समय नगर दीवारों से घिरे रहते थे, उनमें सुन्दर-सुन्दर भवन होते थे और गलियाँ होती थीं। वे आजकल के मकानों और सड़कों के समान नहीं होते थे, वरन् उस प्राचीन समय में सम्भवत: वहुत ही अच्छे होते थे। राजा का महल सदा नगर के वीच में होता था जहाँ कोलाहल युक्त सर्दार, असभ्य सिपाही, पवित्र साधु-सन्त और विद्वान् पुरोहित प्राय: आया-जाया करते थे। वड़े-वड़े अवसरों पर लोग राजमहल के निकट इकट्ठे होते थे, राजा को चाहते

थे, मानते थे, और उसकी पूजा करते थे और राजभक्ति से बढ़कर और किसी बात को नहीं मानते थे। सोना, चांदी और जवाहिर, गाड़ी-घोड़ा, खच्चर और दास लोग और नगर के आसपास के खेत ही गृहस्थो और नगरवासियो का धन और सम्पत्ति थे। उन लोगो मे सब प्रतिष्ठित घरानो मे पवित्र अग्नि रहती थी। वे अतिथियो का सत्कार करते थे, देश के कानून के अनुसार रहते थे, ब्राह्मणो की सहायता से बलि इत्यादि देते थे और विद्या का सम्मान करते थे। प्रत्येक आर्य बालक छोटेपन से ही पाठशाला मे भेजा जाता था। ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य सब एक ही साथ पढ़ते थे और एक ही पाठ और एक ही धर्म की शिक्षा पाते थे। फिर घर आकर विवाह करते थे और गृहस्थों की नाईं रहने लगते थे। पुरोहित तथा योद्धा लोग भी जन साधारण के एक अंग ही थे, जन साधारण के साथ परस्पर विवाह आदि करते थे और जन साधारण के साथ खाते-पीते थे। अनेक प्रकार के कारीगर सभ्य समाज की विविध आवश्यकताओं को पूरा करते थे और अपने पुश्तैनी व्यवसाय को पीढ़ी-दर-पीढ़ी करते थे, परन्तु वे लोग पृथक् पृथक् होकर भिन्न-भिन्न जातियो में नही बँट गये थे। खेतिहर लोग अपने पशु तथा हल आदि लेकर अपने-अपने गाँवो मे रहते थे और भारतवर्ष की पुरानी प्रथा के अनुसार प्रत्येक गाँव का प्रबन्ध और निपटारा उस गाँव की पंचायत द्वारा होता था। इस प्राचीन जीवन का वर्णन बहुत बढ़ाया जा सकता है पर सम्भवत पाठक लोग इसकी स्वयं ही कल्पना कर लेंगे। हम अब प्राचीन समाज के इस साधारण वर्णन को छोड़कर इस बात की जाँच करेंगे कि उस समाज की स्त्रियो की कैसी स्थिति थी।

यह तो हम दिखला ही चुके हैं कि प्राचीन भारतवर्ष में स्त्रियों का बिलकुल परदा नही था। चार हजार वर्ष हुए कि हिन्दू सभ्यता के आदि से ही हिन्दू स्त्रियों का समाज मे प्रतिष्ठित स्थान था। वे पैतृक सम्पत्ति पाती थी और सम्पत्ति की मालिक होती थी, वे यज्ञ और धर्मों के काम में सम्मिलित होती थीं, वे बड़े-बड़े अवसरो पर बड़ी-बड़ी सभाओं मे जाती थी, वे खुल्लम खुल्ला आम जगहों मे जाती थी, वे बहुधा उस समय के शास्त्र और विद्या मे विशेष योग्यता पाती थी और राजनीति तथा शासन म भी उनका उचित अधिकार था। यद्यपि वे मनुष्यों के समाज म इतनी स्वाधीनता से नही सम्मिलित होती थी जितना कि आजकल योरोप की स्त्रियाँ करती हैं, पर फिर भी उन्हें पूरे-पूरे परदे और कैद में रखना हिन्दू लोगो का नियम नही था।

ब्राह्मण ग्रन्थों से बहुत से ऐसे-ऐसे वाक्य उद्धृत किये जा सकते हैं जिनसे जान पड़ेगा कि स्त्रियो की उस समय बड़ी प्रतिष्ठा थी, पर हम यहाँ केवल एक या दो ऐसे वाक्य उद्धृत करेंगे। इनमे से पहला वाक्य, जिस दिन याज्ञवल्क्य घर-बार छोड़कर वन में गये उस सन्ध्या को याज्ञवल्क्य और उनकी स्त्री की

प्रसिद्ध बातचीत है।

(१) जब याज्ञवल्क्य दूसरी वृत्ति धारण करने वाला था तो उसने कहा, "मैत्रेयी, मैं अपने इस घर से सच-सच जा रहा हूँ। इसलिए मैं तुझमें और कात्यायनी में सब बात ठीक कर दूं।"

(२) मैत्रेयी ने कहा, "मेरे स्वामी, यदि यह धन से भरी हुई सब पृथ्वी ही मेरी होती तो कहिए कि क्या मैं उससे अमर हो जाती।" याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, "नहीं, तेरा जीवन धनी लोगों के जीवन की नाईं होता। पर धन से अमर हो जाने की कोई आशा नहीं है।"

(३) तब मैत्रेयी ने कहा, "मैं उस वस्तु को लेकर क्या करूं कि जिससे मैं अमर-सी नहीं हो सकती! मेरे स्वामी, आप अमर होने के विषय में जो कुछ जानते हो सो मुझसे कहिये।"

(४) याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, "तू मुझे सचमुच प्यारी है, तू प्यारे वाक्य कहती है। आ, यहाँ बैठ, मैं तुझे इस बात को बताऊँगा। जो कुछ मैं कहता हूँ उसे सुन—"

और तब उसने उसे यह ज्ञान दिया जो कि बारम्बार उपनिषदों में बहुत जोर देकर वर्णन किया गया है कि सर्वव्यापी ईश्वर पति में, स्त्री में, पुत्रों में, धन में, ब्राह्मणों और क्षत्रियों में और सारे संसार में, देवों में, सब जीवों में, सारांश यह है कि सारे विश्व ही में है। मैत्रेयी ने, जो कि बुद्धिमती, गुणवती और विद्वान् स्त्री थी, इस बड़े सिद्धान्त को स्वीकार किया और समझा। वह इसका महत्त्व संसार की सब सम्पत्ति से अधिक मानती थी।

"विदेहों के राजा जनक के यहाँ पण्डितों की एक बड़ी सभा थी। जनक विदेह ने एक यज्ञ किया जिसमें (अश्वमेध के) याज्ञिकों को बहुत-सी दक्षिणा दी गयी। उसमें कुरुओं और पांचालों के ब्राह्मण आये थे और जनक यह जानना चाहते थे कि उनमें से कौन अधिक पढ़े हैं। अतएव उन्होंने हजार गौओं को दिखाया और प्रत्येक के सींघों में (सोने के) दस पद बाँधे।"

तब जनक ने उन सबों से कहा, "पूज्य ब्राह्मणों, आप लोगों में जो सबसे बुद्धिमान हो वह इन गौओं को हांके।" इस पर उन ब्राह्मणों का साहस न हुआ, पर याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य से कहा, "प्रिय, इन्हें हांक ले जाओ।" शिष्य ने कहा, "राजन की जय!" और गायें हांक ले गया।

इस पर ब्राह्मणों ने बड़ा क्रोध किया और वे घमण्डी याज्ञवल्क्य से प्रश्न पर प्रश्न पूछने लगे। पर याज्ञवल्क्य अकेले उन सबका मुकाबला करने योग्य थे। होत्री अस्वल, जारत्करव आरत भाग, भुज्यु लाह्यायनि, उपस्त चाक्रायन, केहाल कौशनितकय उद्दालक आरुनि, तथा अन्य लोग याज्ञवल्क्य से प्रश्न पर प्रश्न करने लगे, पर याज्ञवल्क्य किसी बात में कम नहीं निकला और सब पंडित एक-एक

करके शान्त हो गये ।

इस बड़ी सभा में एक व्यक्ति और था जो उस समय की विद्या और पाण्डित्य में परिपूर्ण था। वह व्यक्ति एक स्त्री थी। यह एक ऐसी अपूर्व बात है जिससे उस समय के रहन सहन का पता लगता है। गार्गी सभा में खड़ी हुई और बोली, 'हे याज्ञवल्क्य, जिस प्रकार से काशी अथवा विदेहों के किसी योद्धा का पुत्र अपने ढीले धनुष में डोरी लगाकर और अपने हाथ में दो नोकीले शत्रु को बेधन वाले तीर लेकर युद्ध करने खड़ा होता था, उसी प्रकार मैं भी दो प्रश्नों को लेकर तुमसे लड़ने के लिए खड़ी हुई हूँ। मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दो।"

प्रश्न किये गये और इनका उत्तर भी दिया गया और गार्गी वाचक्नवी चुप हो गयी।

हिन्दू स्त्रियाँ अपने पति की बुद्धिविषयक साथिनी, इस जीवन में उनकी प्यारी सहायक और उनके धर्म विषय कामों की अभिन्न भागिनी समझी जाती थी और इसी के अनुसार उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान भी था। वे सम्पत्ति और वपौती की भी मालिक होती थी, जिससे प्रगट होता है कि उनका कैसा आदर था।

बहुत सी दूसरी प्राचीन जातियों की नाईं हिन्दुओं में भी बहुभार्यता प्रचलित थी। क्योंकि एक मनुष्य के कई स्त्रियाँ होती हैं, पर एक के एक साथ ही कई पति नही होते। (ऐतरेय ब्राह्मण ३, २३)

ऐतरेय ब्राह्मण (१,८,३,६) में एक अद्भुत वाक्य है जिसमे तीन या चार पीढ़ी तक आत्मीय सम्बन्धियों में विवाह करने की मनाही है, "इसलिए भोगने वाले (पति) और भोगने वाली (स्त्री) दोनों एक ही मनुष्य से उत्पन्न होते हैं। क्योंकि सम्बन्धी यह कहते हुए हँसी-खुशी मे इकट्ठे रहते हैं कि तीसरी या चौथी पीढ़ी में हम लोग फिर सम्मिलित होंगे।"

नवाँ अध्याय

१. आरण्यक

आरण्यक ब्राह्मणों के बाद बने हैं। वे ब्राह्मणों के अन्तिम भाग हैं। समय के कथानुसार वे इसलिए आरण्यक कहाते हैं कि वे अरण्य में पढ़े जाते थे, पर ब्राह्मणों का उपयोग गृहस्थ यज्ञों में करते थे।

ऋग्वेद के कौशीतकी आरण्यक और ऐतरेय आरण्यक हैं, जिनमें से ऐतरेय आरण्यक महिदास ऐतरेय ने बनाया था। कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय आरण्यक हैं, शतपथ का अन्तिम अध्याय भी उसका आरण्यक कहा जाता है। सामवेद और अथर्ववेद के आरण्यक नहीं हैं।

आरण्यकों का महत्व इसलिए है कि उनमें उपनिषदों के तात्विक विचार हैं।

प्रसिद्ध और प्राचीन उपनिषदों में ऋग्वेद के ऐतरेय और कौशीतकी उपनिषद् हैं, जो इन्हीं नामों के आरण्यक भी हैं।

सामवेद के छान्दोग्य तल्वकार या केन उपनिषद्। शुक्ल यजुर्वेद के वाजसनेही (ईश) और वृहदारण्यक उपनिषद्। कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय कठ और श्वेताश्वेतर उपनिषद्। अथर्ववेद के मुण्डुक प्रश्न और माण्डूक्य उपनिषद् हैं।

प्राचीन उपनिषद् बारह हैं। शंकर ने इन्हीं का प्रमाण माना है, बाद में सैकड़ों उपनिषद् बनते गये, जिनकी संख्या २०० से भी अधिक है। उत्तरकालीन उपनिषद् जो प्रायः अथर्ववेद के उपनिषद् कहाते हैं, पौराणिक काल तक बनते रहे हैं तथा उनमें ब्रह्मज्ञान की बातें नहीं—सम्प्रदाय की बातें हैं। यहाँ तक कि एक उपनिषद् अल्ला-उपनिषद् भी बन गया।

उपनिषदों को साथ आर्यकाल की समाप्ति होती है।

ऋषि तथा ऋषि कल्पों का अवैदिक साहित्य—वैदिक ऋषियों तथा वैदिक वांग्मय के निर्माताओं ने लौकिक रचनाएँ भी की हैं, जिनका विवरण यहाँ देते हैं—

(१) उशनस-काव्य शुक्राचार्य, आथर्वण ऋषि तथा जन्दावस्ता का ऋषि दैत्य गुरु।	अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, धर्मशास्त्र आदि।
(२) अंगिरस बृहस्पति-देवगुरु, ऋषि।	व्याकरण, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र।
(३) बार्हस्पत्य भरद्वाज ऋषि।	
(४) जातुकर्ण्य ब्राह्मण कल्पसूत्र वेद।	आयुर्वेद संहिता।
(५) कृष्ण द्वैपायन व्यास वेद, संहिताओं तथा ब्राह्मणों के प्रवचन कर्ता।	महाभारत, पुराण संहिता, धर्मशास्त्र।
(६) सुमन्तु आथर्वण संहिता का प्रवक्ता	धर्मसूत्र।
(७) तित्तिरि कृष्ण यजुर्वेदीय संहिता ब्राह्मण आदि।	अनुक्रमणि और श्लोकों का कर्ता।
(८) चरक वैशम्पायन वेद-ब्राह्मण	आयुर्वेद। महाभारत का सस्कर्ता।
(९) जैमिनि-सामसंहिता ब्राह्मण और कल्प प्रवक्ता।	मीमांसा सूत्र।
(१०) शौनक छन्द प्रवक्ता।	बृहद्देवता प्रतिशाख्यकर्ता।
(११) बौधायन-कल्प सूत्रों का कर्ता।	वेदन्ता वृत्ति।[1]

२. वेदांग

वेदों और ब्राह्मणों के अतिरिक्त ४ उपवेद, ६ वेदांग और अनेक उपांग भी हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद और अथर्व का अर्थशास्त्र।

आयुर्वेद के आदि आचार्य—ब्रह्मा (वरुण), रुद्र, विवस्वान्, दक्ष, अश्विनी-कुमार, यम इन्द्र, धन्वन्तरि, च्यवन, आत्रेय, अग्निवेश, भेल, जातुकर्ण, पराशर, क्षीरपाणि, हारीत भरद्वाज और सुश्रुत थे।

धनुर्वेद के आचार्य विश्वामित्र हैं। उसमें चार प्रकार के आयुध लिखे हैं—मुक्त-अमुक्त मुक्तामुक्त और मन्त्रमुक्त।

गान्धर्व वेद के अन्तर्गत नाट्यशास्त्र है। इसके आचार्य नारद हैं। नृत्य के आचार्य महेश्वर हैं। नाट्यशास्त्र भरत मुनि ने लिखा है।

अर्थशास्त्र की शाखाएँ नीतिशास्त्र, शालिहोत्र, शिल्पशास्त्र, सूपशास्त्र आदि ६४ कलाएँ हैं। नीतिशास्त्र के रचयिता शुक्र-विदुर-कामान्दक और चाणक्य हैं।

वेदांग ६ हैं—(१) शिक्षा, (२) व्याकरण, (३) निरुक्त, (४) कल्प,

---

1 भगवद्दत्त शास्त्री

(५) ज्योतिष, (६) छन्द ।

(१) शिक्षा—शिक्षा से उच्चारण की रीति जानी जाती है ।

(२) व्याकरण—व्याकरण से शब्दों और वाक्यों के सम्यक् प्रयोग की विधि का ज्ञान होता है । पाणिनि शिक्षा और व्याकरण के सबसे श्रेष्ठ आचार्य हैं । कात्यायन और पतंजलि भी वैयाकरण थे । कहते हैं आरम्भ में इन्द्र-चन्द्र महेश और ब्रह्मा ने मिलकर अक्षर और व्याकरण के नियम बनाये ।

(३) निरुक्त—निरुक्त में वेदों में प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति एवम् अर्थ का ज्ञान होता है । यास्क इसके आचार्य हैं ।

(४) कल्प—कल्प से वेद-कर्मों के क्रम का ज्ञान होता है । कल्प की तीन शाखाएँ हैं—श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र । श्रौतसूत्र के आचार्य लात्यायन द्रव्यायन आदि हैं । आश्वलायन, गोभिल, पारस्कर आदि गृहसूत्र के आचार्य हैं । वौधायन, आपस्तम्ब—कात्यायन आदि धर्मसूत्र के ।

(५) ज्योतिष—ज्योतिष से समय ज्ञान होता है । तिथि आदि जानने की विधि निर्दिष्ट है । सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहों की गतियाँ गणित द्वारा वतायी गयी हैं । पाराशरी संहिता ज्योतिष का प्रथम ग्रन्थ है । ब्रह्मा, मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, वशिष्ठ, कश्यप, भर्ग, नारद, वृहस्पति, विवस्वान्, सोम, भृगु, मनु, च्यवन आदि ज्योतिर्विद थे ।

(६) छन्द—छन्द के आचार्य शेषनाग हैं । छन्द दो प्रकार के हैं—लौकिक और अलौकिक । वेद में अलौकिक छन्द हैं । दोनों का वर्णन पिंगल नाग ने 'छन्दो-निवृत्ति ग्रन्थ, में किया है । इसी से छन्द को पिंगल शास्त्र कहते हैं ।

मुण्डक उपनिषद् में विद्या के दो भेद किये हैं, एक परा और दूसरी अपरा । अक्षय ब्रह्मज्ञान कराने वाली विद्या को परा विद्या कहते हैं, किन्तु अपरा विद्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष हैं । छहों वेदांगों की यह सबसे प्राचीन गणना है । प्रारम्भ में न तो इनके विषय पर विशेष पुस्तकें थीं, और न विशेष शाखा ही थीं, किन्तु केवल विषय मात्र ही था, जिसका अध्ययन वेदों के साथ-ही-साथ हो जाता था । अतएव वेदांगों का आरम्भ ब्राह्मणों और आरण्यकों में भली प्रकार मिल सकता है । समय पाकर इन विषयों पर अधिक-से-अधिक उत्तम ढंग के ग्रन्थ लिखे गये और प्रत्येक वेदांग की पृथक् शाखा यद्यपि वह वेदों की सीमा में ही थी—बन गयी । छहों वेदांगों में से कल्प और ज्योतिष के अतिरिक्त चार वेदांग केवल वेदों को ठीक-ठीक उच्चारण करने और उनको समझने के लिए हैं । कल्प धार्मिक यज्ञों और ज्योतिष ठीक समय को समझाने के लिए है ।

१. शिक्षा

शिक्षा के विषय पर लिखे हुए शिक्षासूत्र लगभग कल्पसूत्रों के समान प्राचीन हैं, दोनों में केवल इतना अन्तर है कि जहाँ कल्पसूत्र ब्राह्मण ग्रन्थों के उत्तर भाग हैं वहाँ वेदांग शिक्षा का विषय वेदों की संहिताओं के निकट है।

इस वेदांग का सबसे प्राचीन वर्णन तैत्तिरीय आरण्यक (७ १) में अथवा तैत्तिरीय उपनिषद् (१ २) में मिलता है, जहाँ अक्षरों, जोर देने, शब्द के टुकड़ों की संख्या, स्वर और क्रमबद्ध पाठ में, शब्दों की मिलावट की शिक्षा के हिसाब से शिक्षा का छ अध्यायों में विभक्त किया गया है। यज्ञों के समान ही शिक्षा का भी धार्मिक आवश्यकता में ही जन्म हुआ, क्योंकि किसी यज्ञ कार्य को पूर्ण करने के लिए केवल उनको उस यज्ञ को जानना ही आवश्यक नहीं है किन्तु वेद-मन्त्रों का ठीक ठीक उच्चारण और उनका बिना गलती किये हुए पाठ करना भी आवश्यक है। इससे यह परिणाम निकलता है कि शिक्षा के ऊपर ग्रन्थ लिखे जाने के पूर्व ही वदमन्त्र शिक्षा के क्रम पर आ चुके थे, क्योंकि ऋग्वेद के मन्त्र उस रूप में नहीं मिलते जिसमें उनका आरम्भिक काल में बनाया गया था। यद्यपि सम्पादकों ने कोई भी शब्द स्वयं नहीं बदला किन्तु उसके शब्दों में विशेष उच्चारण, विशेष उतार-चढ़ाव के स्वर इत्यादि इस प्रकार डाल दिये गये कि वह ठीक-ठीक शिक्षा के ढंग पर बन गये, उदाहरणार्थ संहिता में हम पढ़ते हैं—

"त्वह्यग्ने"

किन्तु यह प्रमाणित किया जा सकता है कि प्राचीन सूत्रकारों ने इसको 'त्व हि अग्ने' कहा था। अतएव वैदिक संहिताएँ स्वयं भी शिक्षा के विद्वानों की रचनाएँ हैं, किन्तु संहिताओं में रखे हुए संहिता पाठ के अतिरिक्त 'पद पाठ' भी किया जाता है, जिसमें प्रत्येक शब्द को पृथक् पृथक् करके पढ़ा जाता है। दक्षिण में घन पाठ, जटा पाठ आदि अन्य भी अनेक पाठ प्रचलित हैं। संहिता पाठ और पद पाठ की विभिन्नता एक उदाहरण से स्पष्ट हो जावेगी। ऋग्वेद का एक मन्त्र यह है—

'अग्नि, पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत स देवाँ एह वक्षति' पद पाठ में इसको इस प्रकार कर दिया जावेगा—

'अग्नि, पूर्वेति — ऋषि भि । नूतनै । उत स देवाँ । आ । इह । वक्षति ।'

ऋग्वेद का पद पाठ करने वाला शाकल्य समझा जाता है। यह वही अध्यापक है, जिसका ऐतरेय आरण्यक में वर्णन आ चुका है।

अतएव संहिता पाठ और पद पाठ शिक्षा सम्प्रदाय के सबसे प्राचीन कार्य हैं। इस विषय के ग्रन्थों में सबसे प्राचीन ग्रन्थ प्रातिशाख्य हैं, जिनमें ऐसे नियम हैं कि उनकी सहायता से कोई भी संहितापाठ से पद पाठ बना सकता है। अतएव उनमें उच्चारण, जोर देने, शब्द के बनाने और वाक्य में के शब्द के आवश्यक

और अन्तिम अंश पर स्वर का उतार-चढ़ाव, स्वरों को लम्वा करने, सारांश कि संहिता को पूर्ण रूप से पाठ करने के ढंग पर प्रकाश डाला गया है। वेदों की प्रत्येक शाखा के पास इस प्रकार के ग्रन्थ होते थे, अतएव इस विषय का नाम प्रतिशाख्य (एक शाख के लिए पाठ्य-पुस्तक) पड़ गया। यह प्रतिशाख्य पाणिनि से प्राचीन समझे जाते हैं। संभवतः यह कहना अधिक ठीक होगा कि पाणिनि ने वर्तमान प्रतिशाख्यों का प्रयोग एक अधिक प्राचीन रूप में किया था। उदाहरणार्थ, जव कभी वह वैदिक सन्धि को लेता है वह सदा ही उनके वर्णन में अधूरा रहता है, जवकि प्रातिशाख्य विशेषकर अथर्ववेद का प्रातिशाख्य वैयाकरणों की पारिभाषिकताओं के आधीन हैं।

प्रातिशाख्य आठ हैं—(१) ऋग्वेद प्रातिशाख्य सूत्र, (२) तैत्तिरीय प्रातिशाख्य सूत्र, (३) वाजसनेय प्रातिशाख्य सूत्र, (४) प्रतिज्ञा सूत्र, (५) अथर्ववेद प्रातिशाख्य सूत्र, (६) साम प्रातिशाख्य सूत्र, (७) पुष्प सूत्र, (८) पंचविध सूत्र।

सवसे प्राचीन ऋग्वेद प्रातिशाख्य है जो शौनक का कहा जाता है। यही शौनक आश्वलायन का अध्यापक समझा जाता है। इस विस्तृत ग्रन्थ में तीन काण्ड हैं। यह प्रातिशाख्य पद्य में है। संभवतः यह किसी प्राचीन सूत्र ग्रन्थ का रूपान्तर है क्योंकि अनेक ग्रन्थों में इसको सूत्र भी कहा गया है।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य सूत्र अपने अनेक अध्यापकों के नामों के कारण रोचक वन गया है, इसमें लगभग वीस अध्यापकों का वर्णन किया गया है।

वाजसनेय प्रातिशाख्य सूत्र अपने को कात्यायन रचित वतलाता है, पूर्व आचार्यों में यह शौनक का नाम भी लेता है, इसमें आठ अध्याय हैं।

प्रतिज्ञासूत्र इस प्रातिशाख्य का उपसंहार है।

शौनक के सम्प्रदाय से सम्वन्ध रखनेवाला अथर्ववेद प्रातिशाख्य इस प्रकार के अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक व्याकरणपूर्ण है।

एक साम प्रातिशाख्य भी है। पुष्पसूत्र सामवेद के उत्तरगण का एक प्रकार का प्रातिशाख्य है, सामवेद के मन्त्रों के गायन के ऊपर एक और ग्रन्थ पंचविधसूत्र भी है।

इन प्रातिशाख्यों का महत्व दो प्रकार से है। प्रथम तो यह कि इनमें भारत में व्याकरण के अध्ययन का इतिहास छिपा हुआ है, जो कि जहाँ तक हम समझते हैं प्रातिशाख्यों के साथ ही आरम्भ होता है। दूसरे इनका महत्व इस वात में है कि यह अपने साथ में भी संहिताओं के उसी रूप में होने की गवाही देते हैं, जिसमें कि वह हमको आज मिलते हैं। ऋग्वेद प्रातिशाख्य पर विचार करने से पता चलता है कि ऋक्-प्रातिशाख्य के समय ऋग्वेद न केवल दस मण्डलों में ही विभक्त था, किन्तु उसके मन्त्रों का भी वही क्रम था जो हमको आज मिलता है।

यह प्रातिशाख्य वेदांग शिक्षा के सबसे प्राचीन रूप हैं, उनके अतिरिक्त बहुत से नवीन ग्रन्थ भी हैं, जिनका नाम शिक्षा है और जो अपने को भारद्वाज, व्यास, वशिष्ठ और याज्ञवल्क्य आदि बड़े-बड़े ऋषियों की रचना बतलाते हैं। यह ठीक उसी प्रकार प्रातिशाख्यों का अनुसरण करते हैं जिस प्रकार बाद में स्मृतियों ने धर्मसूत्रों का अनुगमन किया। इनमें से कुछ शिक्षा प्राचीन भी हैं और उनका किसी-न-किसी प्रातिशाख्य से भी सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ, व्यास शिक्षा का सम्बन्ध तैत्तिरीय प्रातिशाख्य से है, किन्तु अन्य ग्रन्थों का किसी प्रकार से भी महत्त्व नहीं है।

२. व्याकरण

पद पाठों से प्रतीत होता है कि उनके रचयिताओं ने केवल, उच्चारण और सन्धियों के सम्बन्ध में ही छानबीन नहीं की किन्तु वे व्याकरण के अनुसार शब्दों की व्युत्पत्ति करनी भी बहुत अच्छी जानते थे, क्योंकि वह समास के दोनों भागों क्रिया और उपसर्गों तथा शब्द और प्रत्ययों को पृथक् कर देते थे। वह चारों पद-जातों को पहले से ही जानते थे, यद्यपि इनका नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात सबसे पहले यास्क ने वर्णन किया है। सम्भवतः शब्दों को इस प्रकार पृथक् करने से इस शास्त्र का नाम व्याकरण पड़ा। भाषा सम्बन्धी छानबीन की साक्षी ब्राह्मणों में भी पाई जाती है, क्योंकि उनमें भी विभिन्न व्याकरण सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द मिलते हैं। उदाहरणार्थ, वर्ण (अक्षर), वृषन (पुल्लिंग), वचन और विभक्ति। आरण्यकों, उपनिषदों और सूत्रों में यह उल्लेख और भी अधिक पाये जाते हैं, किन्तु यास्क के निरुक्त से पाणिनि से पूर्व के व्याकरण का भलीभांति पता चलता है।

यास्क के पूर्व व्याकरण का अध्ययन भलीभांति हो चुका होगा, क्योंकि अपने से पूर्व बीस आचार्यों के नाम गिनाने के अतिरिक्त एक उत्तरीय और एक पूर्वीय सम्प्रदाय का उल्लेख करता है। उसके बतलाये हुए नामों में से शाकटायन, गार्ग्य और शाकल्य के नाम बहुत महत्वशाली हैं। यास्क के समय वैयाकरणों को शब्द और उसकी रचना का वर्णन ज्ञान हो गया था, वह पुरुष वाचक रूप और काल वाचक रूप चलाने के साथ ही साथ कृत् और तद्धित् प्रत्ययों को भी जान गये थे। यास्क ने शब्दों के धातुओं से बनने के सिद्धान्त पर रोचक विवाद किया है जिसका वह स्वयं भी अनुगामी है। वह कहता है कि गार्ग्य और कुछ दूसरे वैयाकरणी इस सिद्धान्त को सामान्य रूप से तो मानते हैं किन्तु वह सभी संज्ञा शब्दों को धातुओं से निकला हुआ नहीं मानते। वह उनकी युक्तियों का खण्डन करता है। पाणिनि का सारा व्याकरण भी शाकटायन की धातुओं से सभी संज्ञा शब्दों के निकलने के सिद्धान्त पर खड़ा हुआ है। पाणिनि के व्याकरण में वैदिक रूपों के सैकड़ों नियम

हैं, किन्तु यह प्रधान विषय में अपवाद रूप हैं, क्योंकि पाणिनि का प्रधान विषय संस्कृत भाषा है । वर्तमान साहित्य पाणिनि की भाषा के आधार पर ही बना है, यद्यपि पाणिनि सूत्रकाल के मध्य में हुआ है तथापि उसके समय से वेदों से आगे का समय माना जा सकता है । सबसे बड़ा प्रमाण होने के कारण पाणिनि ने अपने से पूर्व सभी आचार्यों का खण्डन किया, जिनके ग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं उनमें से केवल यास्क ही बचा है, वह भी संभवत: इस प्रकार से कि वह सीधे रूप में वैयाकरणी नहीं है क्योंकि उसका ग्रन्थ वेदांग निरुक्त है । शाकटायन के नाम का एक व्याकरण अब भी मिलता है किन्तु अभी तक किसी विद्वान् ने उसकी तुलनात्मक आलोचना से यह प्रकट नहीं किया कि इस शाकटायन के व्याकरण में सब मत विद्यमान हैं, जिनका यास्क और पाणिनि ने खण्डन या मण्डन किया है ।

३. निरुक्त

यास्क का निरुक्त वास्तव में एक वैदिकी टीका है, यह इस विषय के किसी भी ग्रन्थ से कई शताब्दी प्राचीन हैं । यह निघण्टु के आधार पर बना है, जो कि वैदिक कोष है । दन्तकथाओं में निघण्टु को भी यास्क की ही रचना माना है, किन्तु वास्तव में यास्क ने इन शब्दों के ऊपर टीका ही लिखी है । निघण्टु के शब्दकोश के विषय में यास्क कहता है कि वह प्राचीन ऋषियों का बनाया हुआ है, जिससे वेदार्थ को सुगमता से समझा जा सके । निण्घटु में शब्दों की पाँच प्रकार की सूचियाँ हैं, जो तीन काण्डों में विभक्त हैं । पहले नैघण्टुक काण्ड में तीन सूचियाँ हैं, जिनमें वैदिक शब्द विशेष अभिप्राय से एकत्रित किये गये हैं । उदाहरणार्थ पृथ्वी के २१, स्वर्ण के १५, वायु के १६, जल के १०१, जानक्रिया के १२२ नाम दिये गये हैं । दूसरा नैगम काण्ड या ऐकपदिक है, इसमें वेद के अत्यन्त कठिन शब्दों के अर्थ हैं । तीसरे दैवतकाण्ड में पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग के क्रम से देवताओं का विभाग किया गया है । सम्भवत: इस प्रकार के ग्रन्थ से वेदों के अर्थ की ओर प्रवृत्ति डाली गयी । निरुक्त जैसे ग्रन्थों का लिखा जाना वैदिक अर्थ के लिए दूसरा प्रयत्न था । यास्क के पूर्व और भी बहुत से निरुक्त थे जिनमें से अब कोई भी नहीं बचा है, यास्क का ग्रन्थ उनमें सबसे अच्छा और सबसे अन्तिम है ।

निरुक्त का प्रथम अध्याय केवल व्याकरण-सम्बन्धी सिद्धान्तों और वेदार्थ की भूमिका है, दूसरे और तीसरे अध्याय में निघण्टु के नैघण्टुक काण्ड पर टीका है, चौथे से छठे अध्याय तक निघण्टु के नैगम काण्ड पर टीका है । तथा सातवें से बारहवें तक निघण्टु के दैवत काण्ड पर टीका है । निरुक्त बड़ा रोचक ग्रन्थ है, इसकी भाषा पाणिनि से भी सरल है । यास्क का समय ईसा से पूर्व पाँचवीं शताब्दी होने से वह सूत्र काल के आरम्भ का आचार्य है ।

४. कल्प

सबसे प्राचीन कल्प सूत्र ग्रन्थ वही है जो अपने विषय में ब्राह्मण और आरण्यकों से सीधा सम्बन्ध रखते हैं। ऐतरेय आरण्यक में ऐसे बहुत से अंश हैं, जो सूत्र के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हैं और जिनका रचयिता आश्वलायन और शौनक को माना जाता है। ब्राह्मणों के विषय का सीधा सम्बन्ध कल्प से है, अतः ऋषियों का ध्यान सबसे प्रथम इसी विषय को पूर्ण करने की ओर गया। उन्होंने इस विषय के अनेक ग्रन्थ बनाकर इसका नाम कल्पसूत्र रखा।

कल्पसूत्र की तीन शाखा हैं—

श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। श्रौतयज्ञों का वर्णन करने वाले ग्रन्थ श्रौतसूत्र कहलाते हैं, गृहस्थ सम्बन्धी संस्कारों और रीतियों का वर्णन करने वाले ग्रन्थ गृह्यसूत्र कहलाते हैं, और धर्म व नियमों का वर्णन करने वाले ग्रन्थ धर्म-सूत्र कहे जाते हैं। इस विषय से सम्बन्धित एक और प्रकार का साहित्य है उसको शुल्वसूत्र कहते हैं, उनमें यज्ञशाला आदि बनाने के नियम हैं।

श्रौतसूत्र—सबसे प्राचीन श्रौतसूत्रों का रचनाकाल मसीह से पूर्व ५०० से ८०० वर्ष है।

श्रौतसूत्र १२ हैं—(१) आश्वलायन श्रौतसूत्र, (२) शांखायन श्रौतसूत्र, (३) मशक, (४) लाट्यायन, (५) द्राह्यायण, (६) जैमनीय, (७) कात्यायन, (८) बौधायन, (९) आपस्तम्ब, (१०) हिरण्यकेशी, (११) मानव, (१२) वैतान।

ऋग्वेद सम्बन्धी अभी तक दो ही श्रौतसूत्रों का पता लगा है—एक आश्व-लायन का दूसरा शांखायन का। आश्वलायन श्रौतसूत्र में १२ अध्याय हैं और शांखायन में १८ अध्याय हैं। पहले का सम्बन्ध ऐतरेय ब्राह्मण से और दूसरे का शांखायन ब्राह्मण से है। वेबर की सम्मति में आश्वलायन ब्राह्मणकाल का न होकर पाणिनि का समकालीन होना चाहिए, क्योंकि 'अयन' प्रत्यय लगाकर नाम रखने की परिपाटी ब्राह्मण काल की नहीं है, आश्वलायन ने आश्वमरथ्य और तैलकी ऋषियों का उल्लेख किया है जिनका नाम पाणिनि के अष्टाध्यायी में भी पाया जाता है। अन्त में उन्होंने अनेक ब्राह्मण परिवारों की नामावली दी है, जिनमें से मुख्य भृगु, अंगिरा, अत्रि, विश्वामित्र, कश्यप, वशिष्ठ और अगस्त्य हैं। सरस्वती पर किए गए यज्ञ का वर्णन बहुत संक्षेप से किया गया है, यही आश्वलायन ऐतरेय आरण्यक के चौथे काण्ड का रचयिता है तथा शौनक का शिष्य है।

शांखायन सूत्र इससे कुछ प्राचीन प्रतीत होते हैं, पन्द्रहवें और सोलहवें अध्यायों में तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। क्योंकि वह स्थल स्पष्ट

ब्राह्मण ढंग के बने हुए हैं तथा सहत्रवें और अठारहवें अध्याय पीछे के प्रतीत होते हैं।

आश्वलायन सूत्र और ऐतरेय ब्राह्मण दोनों ही पूर्व भारत की रचना प्रतीत होते हैं, इसके विरुद्ध शांखायनसूत्र और उसका ब्राह्मण उत्तरी गुजरात के प्रतीत होते हैं, दोनों में भी यज्ञों का क्रम प्रायः वही है। यद्यपि लगभग सभी यज्ञ राजाओं के लिए हैं, उन यज्ञों के नाम यह हैं:—

वाजपेय (ऐश्वर्य पाने का यज्ञ), राजसूय (महाराज पद पाने का यज्ञ) अश्वमेध (सम्राट् पद पाने का यज्ञ), पुरुषमेध, और सर्वमेध। शांखायन ने इन यज्ञों का विस्तृत वर्णन किया है।

सामवेद के अभी तक चार श्रौतसूत्र मिले हैं—जिनमें से एक मशक का, दूसरा लाट्यायन का, तीसरा द्राह्यायन का और चौथा जैमिनीय का।

मशकसूत्र में ग्यारह प्रपाठक हैं, जिनमें से प्रथम पाँच में एकाह यज्ञ (एक दिन में समाप्त होने वाला यज्ञ), दूसरे चार में अहीन यज्ञ (कई दिन तक होने वाले यज्ञ) और अन्त के दो में सत्रों (बारह दिन तक होने वाले यज्ञों) का वर्णन है।

लाट्यायन सूत्र कौथुमस शाखा का हैं। मशक सूत्र के समान यह सूत्र भी पूर्णरूप से पंचविंश ब्राह्मण से सम्बन्ध रखता है। इसने ब्राह्मण के बहुत से उद्धरण देकर उसके आचार्य शांडिल्य, धनंजय और शांडिल्यायन का भी उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त लाट्यायन ने बहुत से आचार्यों के नाम लिए हैं। उदाहरणार्थ उसके अपने आचार्य, आर्षेयकल्प, गौतम, सौचीवृक्षी, क्षैख्यलम्भी, कौत्स, वार्षगण्य, भाण्डितायन, लामकायन, राणायनीपुत्र, शाण्डायनी, शालकायनी आदि। इस सूत्र से प्रतीत होता है कि इसके समय में शूद्र और निषादों की परिस्थिति इतनी खराब नहीं थी जैसी बाद को हो गयी। उस समय उनको यज्ञभवन में यज्ञ भूमि के पास तक आने की अनुमति थी। लाट्यायन सूत्र में दस प्रपाठक हैं, जिनमें से प्रथम सात प्रपाठकों में सभी प्रकार के सोमभागों के साधारण नियम दिये गये हैं। आठवें प्रपाठक और नौवें प्रपाठक के कुछ भाग में एकाह यज्ञ का वर्णन है, नौवें प्रपाठक के अवशिष्ट भाग में अहीन यज्ञों का और दसवें में सत्रों का वर्णन है।

द्राह्यायण सूत्र राणायनीय शाखा है, राणायन वंश वशिष्ठ से उत्पन्न हुआ है, अतएव इस सूत्र को वशिष्ठ सूत्र भी कहते हैं, इसके विषय आदि का अभी तक विशेष पता नहीं चल सका।

शुक्ल यजुर्वेद का सम्बन्ध कात्यायन श्रौतसूत्र से है, इसके छब्बीस अध्यायों में पूर्ण रूप से शतपथ ब्राह्मण के यज्ञक्रम का अनुसरण किया गया है। इसमें बाईसवें से तेईसवें अध्याय तक में सामवेद के यज्ञों का वर्णन है। अपने परिष्कृत ढंग के

कारण यह ग्रन्थ सूत्रकाल के अन्त का प्रतीत होता है।

कात्यायन श्रौत सूत्र के प्रथम अठारह अध्याय विषय में शतपथ ब्राह्मण के प्रथम नौ काण्डों से मिलते-जुलते हैं, नौवें अध्याय में सौत्रामणि यज्ञ का और बीसवें में अश्वमेध यज्ञ का और इक्कीसवें में पुरुषमेध, सर्वमेध और पितृमेध यज्ञों का वर्णन है पच्चीसवें में प्रायश्चित्त का और छब्बीसवें में प्रवर्ग्य यज्ञ का वर्णन है। वेबर ने वैजावाद श्रौतसूत्र को भी शुक्ल यजुर्वेद का ही माना है।

कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्ध रखनेवाले कम से कम छः श्रौतसूत्र सुरक्षित हैं, किन्तु उनमें से अभी तक केवल दो ही पा सके हैं, आपस्तम्ब और हिरण्यकेशी ने पूरे कल्प-सूत्र लिखे हैं, जिनमें आपस्तम्ब के तीस अध्यायों में से चौबीस में और हिरण्यकेशी के उनतीस अध्यायों में से अठारह अध्यायों में इनके श्रौतसूत्र हैं, बौधायन और भारद्वाज के सूत्र अभी तक अप्रकाशित ही हैं। सुना है भारद्वाज गृह्यसूत्र हालैंड में किसी महिला ने सपादन करके प्रकाशित कराया है। वाधूल और वैखानस के श्रौतसूत्र भी तैत्तिरीय संहिता से ही सम्बन्ध रखते हैं, बौधायन के सबसे प्राचीन होने में कुछ भी सन्देह नहीं किया जा सकता, उसके बाद क्रम से भारद्वाज, आप-स्तम्ब और हिरण्यकेशी हुए हैं।

मैत्रायणी संहिता से मानव श्रौतसूत्र का संबंध है, संभवतः इसी मानव शाखा के धर्मसूत्र से मनुस्मृति बनी है।

अथर्ववेद का श्रौतसूत्र वैतानसूत्र है। वैतान नाम संभवतः अपने प्रथम शब्द वैतान के कारण ही पड़ गया है, यह गोपथ ब्राह्मण से सम्बन्ध रखता है यद्यपि यह कात्यायन के श्रौतसूत्र का अनुकरण करता है।

यद्यपि श्रौतसूत्र से ही यज्ञ का वास्तविक स्वरूप समझा जा सकता है किन्तु सब ग्रन्थों में सबसे अधिक एक विषय इन्हीं का है। इन यज्ञों में यजमान और पुरो-हित दो मुख्य समुदाय थे। यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण पुरोहित होते थे, जिनकी संख्या एक से सोलह तक होती थी क्रिया में यजमान बहुत कम भाग लेता था। वेदी के तीनों ओर की तीनों अग्नियों का विशेष कार्य रहता था, सबसे प्रथम अग्न्याधान किया जाता था और फिर अग्नि को समिधाओं से जलाये रखा जाता था।

श्रौतसूत्रों की संख्या चौदह है, जो सात सात कवियों में दो स्थानों पर बँटे रहते थे, प्रत्येक विभाग के साथ एक एक प्रकार के पशु की बलि का सम्बन्ध है।

गृह्यसूत्र—ब्राह्मण ग्रन्थों में गार्हस्थ्य संस्कारों का लगभग अभाव होने के कारण गृह्यसूत्रों की रचना की आवश्यकता पड़ी, अतएव स्वाभाविक रूप से ही गृह्यसूत्रों का काल श्रौतसूत्रों के पीछे का है।

गृह्यसूत्र १६ हैं—(१) आश्वलायन, (२) शांखायन, (३) कौषीतकी, (४) गोभिल (५) खादिर, (६) जैमिनीय, (७) पारस्कर, (८) आपस्तम्बीय, (९) हिरण्यकेशी, (१०) बौधायन, (११) भारद्वाज, (१२) मानव, (१३)

काठक, (१४) वैखानस, (१५) वाराह, (१६) कौशिक।

ऋग्वेद का सम्बन्ध शाङ्खायन और आश्वलायन गृह्यसूत्रों से है, पहले में और दूसरे में चार अध्याय हैं। शौनक के गृह्य सूत्र का भी कई स्थानों पर उल्लेख है किन्तु सम्भवत: अब उनका अस्तित्व ही नहीं है। शाङ्खायन गृह्यसूत्र ही से मिलता-जुलता शाम्बव्य गृह्यसूत्र है, जो कौशीतकी शाखा से सम्बन्ध रखता है। किन्तु यह अभी तक पूर्ण रूप से मिल नहीं सका है। कौशीतकी गृह्यसूत्र अवश्य ही पृथक् छपा है।

सामवेद का प्रधान गृह्यसूत्र गोभिल सूत्र है, जो गृह्यसूत्रों में सबसे प्राचीन सबसे अधिक पूर्ण, और सबसे अधिक रोचक है। इसका प्रयोग सामवेद की दोनों शाखा करती रही हैं। द्राह्ययण शाखा के खदिर गृह्यसूत्र से सामवेद की राणायनीय शाखा भी काम लेती रही है। किन्तु यह गोभिल गृह्यसूत्र का ही परिष्कृत रूप है। जैमिनीय गृह्यसूत्र भी सामवेद का ही है।

शुक्ल यजुर्वेद के गृह्य पारस्कर सूत्र हैं और कात्यायन गृह्य सूत्र हैं, पारस्कर कातीय या वाजसनेय गृह्य सूत्र भी कहते हैं। कात्यायन गृह्य सूत्र से इसका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इसका उद्धरण बार-बार उस रचयिता के नाम से हो जाता है, याज्ञवल्क्य के धर्मशास्त्र पर इसका भारी प्रभाव पड़ा है, इसमें तीन काण्ड हैं।

कृष्ण यजुर्वेद के सात गृह्यसूत्रों में से अभी तक केवल तीन ही छपे हैं। आपस्तम्ब गृह्य सूत्र आपस्तम्ब कल्पसूत्र का छब्बीस और सत्ताईसवाँ अध्याय है। हेरण्यकेशी गृह्यशूत्र हेरण्यकेशी कल्पसूत्र का १९ और बीसवाँ अध्याय है। बौधायन और भारद्वाज के गृह्यसूत्रों के विषय में कुछ भी विदित नहीं है। मानव गृह्यसूत्र का मानव श्रौतसूत्रों से इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि गृह्य में अनेक-अनेक बार श्रौत के ही अवतरणों को दोहराया गया है। यह बात बड़ी विचित्र है कि इस सूत्र का विनायक पूजन अन्य किसी सूत्रकार को विदित नहीं है। याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र में इन अंशों को फिर दिया गया है, जहाँ चार विनायकों को एक विनायक, वर्तमान गणेश का रूप दे दिया है, मानव से ही मिलता-जुलता काठक गृह्यसूत्र है। यह केवल विषय क्रम में ही नहीं मिलता, किन्तु अनेक स्थलों पर शब्द-शब्द भी मिलता है। इसका विष्णु धर्मशास्त्र से सम्बन्ध है। वैखानस गृह्य सूत्र एक विस्तृत ग्रन्थ है। इसकी रचना प्राचीन ढंग की है। वाराह गृह्य सूत्र भी मैत्रायणीय सम्प्रदाय का एक बाद का ग्रन्थ है।

अथर्ववेद का सम्बन्ध कौशिक गृह्यसूत्र से है। यह केवल गृह्यसूत्र ही नहीं है, क्योंकि गृहस्थ सम्बन्धी संस्कारों का वर्णन करने के साथ-साथ इसमें कुछ तांत्रिक और अथर्ववेद की कुछ विशेष क्रियाएँ भी हैं। इससे वैदिक भारतीय जीवन के साधारण दृश्य का पूर्ण चित्र मिल जाता है।

इन गृह्यसूत्रों में ४० संस्कारों का वर्णन है। गर्भ से लगाकर विवाह तक के

१८ संस्कार शारीरिक कहे जाते हैं और शेष बाईस एक प्रकार के यज्ञ रूप है
इनमें से आठ और संस्कार भी गृह्य संस्कार हैं—जिनमें पाँच महायज्ञ और तो
पाक यज्ञ हैं और अवशेष श्रौत संस्कारों से सम्बन्ध रखते हैं। इन कार्यों के अति-
रिक्त इनमें और भी बहुत-सी बातें हैं। वर्षा के आरम्भ में नाग को भेंट देना,
गृह्य निर्माण और नूतन गृह्य प्रवेश के संस्कार करना—इस सम्बन्ध में भूमि और
निर्माण के विस्तृत नियम दिये हुए हैं। उदाहरणार्थ, पश्चिम की ओर को द्वार
बनाने का निषेध किया गया है। लकड़ी या बाँस के मकान के बन चुकने पर पशु
की बलि का वर्णन है। पशुओं के सम्बन्ध में अन्य भी अनेक रीतियाँ वर्णित हैं।
जाति के हित के लिए साँड छोड़ा जाना, कृषि-सम्बन्धी रीतियाँ पृथक् हैं। कृषि
से उत्पन्न हुए प्रथम फल को देने के सम्बन्ध की रीति, दुःस्वप्न, अपशकुन और
रोग होने पर भी विशेष कृत्य करने बतलाये गये हैं। अन्त्येष्टि संस्कार में चिता
पर गौ या बकरी भी जलाना कहा है, श्राद्ध का वर्णन खूब विस्तार से किया गया
है, यह गृह्यसूत्रों के विषय का संक्षिप्त परिचय है।

धर्मसूत्र—सूत्र साहित्य की तीसरी शाखा धर्मसूत्र है, जिनमें दैनिक जीवन
के नियमों का वर्णन है। यह धर्मशास्त्र (कानून या Law) पर सबसे प्राचीन
आर्षग्रन्थ हैं। धर्मसूत्रों का भी वेदों की शाखाओं से सम्बन्ध है, किन्तु इस सम्बन्ध
में केवल तीन धर्मसूत्रों का ही नाम लिया जा सकता है। और वह तीनों कृष्ण
यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के हैं, किन्तु यह मानने के अनेक कारण हैं कि इस
विषय पर बने हुए अन्य ग्रन्थों का भी किसी-न-किसी वेद से कुछ सम्बन्ध आरम्भ
में अवश्य था। धर्मसूत्रों के अत्यन्त प्राचीन काल में बताये जाने का यही प्रमाण
है कि सूत्रकाल के आरम्भ में यास्क आचार्य ने जिन धार्मिक नियमों के अवतरण
दिये हैं वह सूत्रों के ढंग पर हैं, अवश्य ही उस समय दो-एक धर्मसूत्र बन चुके
होंगे।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र अभी तक सबसे अधिक सुरक्षित है, इसमें न तो प्राचीन
सम्प्रदाय वाले परिवर्तन करने पाये और न वर्तमान सम्पादकों ने ही कोई मिला-
वट की है। आपस्तम्ब कल्पसूत्र के तीस अध्यायों में से अट्ठाईस और उन्तीसवें
अध्यायों में ऐसे धर्मसूत्र हैं, जिनमें विशेष करके वैदिक विद्यार्थी के कर्त्तव्य, गृहस्थ
के कर्त्तव्य, निषिद्ध भोजन, शौचाचार, प्रायश्चित, विवाह, उत्तराधिकार और
अपराध के विषयों का वर्णन है। उत्तर प्रान्त वालों की कुछ बातों को बुरा कहने
से जाना जाता है कि इसका सम्बन्ध दक्षिण से है, जहाँ प्राचीनकाल में इस शाखा
का प्रचार था। इसकी भाषा पाणिनी से पहले की होने के कारण बुलर ने इसका
समय ईसा से ४०० वर्ष पूर्व माना है।

हिरण्यकेशी धर्मसूत्र का इस ग्रन्थ से बहुत निकट सम्बन्ध है, क्योंकि पढ़ने
पर दोनों में कुछ अधिक अन्तर प्रतीत नहीं होता। इस सम्बन्ध में यह ऐतिहा

कि आपस्तम्बों से अप्रसन्न होकर हिरण्यकेशी ने एक नयी शाखा की स्थापना कोनकन देश में की जो वर्तमान गोवा के समीप है, इस पार्थक्य का समय अधिक-से-अधिक ५०० ईस्वी हो सकता है। हिरण्यकेशी ब्राह्मण का वर्णन एक पाषाण लेख में पाया जाता है, हिरण्यकेशी कल्पसूत्र के उनतीस अध्यायों में से छब्बीसवें और सत्ताईसवें अध्यायों में यह धर्मसूत्र है।

तीसरा धर्मसूत्र बौधायन का है। इसको लिखित ग्रन्थों में धर्मशास्त्र कहा गया है, इस शाखा के कल्पसूत्र के इसका स्थान इतना निश्चय नहीं है, जैसा कि पहले दो का है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र से इसकी विषयानुक्रमणिका को मिलाने से पता चलता है कि यह उन दोनों से भी प्राचीन है। बौधायन शाखा का पता आज-कल नहीं चलाया जा सकता किन्तु यह प्रतीत होता है कि इसका सम्बन्ध दक्षिणी भारत से था, जहाँ प्रसिद्ध भाष्यकार सायण इसके मत का अनुयायी था। इस धर्मसूत्र में चारों आश्रमों के नियम, चारों वर्णों के नियम, अनेक प्रकार के यज्ञ, शौचाचार, प्रायश्चित, राजधर्म, अपराध का न्याय, साक्षी की परीक्षा, उत्तरा-धिकार के नियम, विवाह और स्त्रियों के स्थान का वर्णन किया गया है। चौथा खण्ड, जो कि पूर्ण रूप से श्लोकों में बना हुआ है संभवतः नवीन संस्करण है। तीसरे खण्ड का समय भी कुछ सन्दिग्ध है।

उपरोक्त ग्रन्थों के साथ ही गौतम धर्मशास्त्र की भी गणना की जा सकती है, यद्यपि यह किसी कल्पसूत्र का भाग नहीं है, तथापि किसी समय इसका किसी वैदिक सम्प्रदाय से अवश्य सम्बन्ध रहा होगा, क्योंकि गौतमों को सामवेद की राणायनीय शाखा की उपशाखा माना गया है। कुमारिल इस बात की पुष्टि करता है। इसके अतिरिक्त इसके छब्बीसवें खण्ड का शब्द-शब्द समविधान ब्राह्मण से लिया गया है, यद्यपि इसका नाम धर्मशास्त्र है तथापि ढंग और प्रबन्ध शैली से पूर्ण रूप से गद्यसूत्रों में बनाया गया है। इस विभाग के अन्य ग्रन्थों के समान पद्य की इसमें कहीं गन्ध तक नहीं है। इसका विभाग बिलकुल बौधायन धर्मसूत्र के समान है, इसमें बौधायन धर्मसूत्र के कुछ अंश भी लिए गये हैं, इन्हीं अनेक कारणों से बौधायन धर्मसूत्र को ईसा से ५०० वर्ष पूर्व से इधर का नहीं समझा जाता।

वैदिक काल से सम्बन्ध रखने वाला सूत्र ढंग का एक और ग्रन्थ वाशिष्ठ धर्मशास्त्र है, इसमें तीस अध्याय हैं, जिनमें अन्त के पाँच बहुत बाद के बने प्रतीत होते हैं। इस ग्रन्थ के गद्यसूत्र पद्य में रल-मिल गये हैं, बिगड़े हुए त्रिष्टुभ से बाद के मनु आदि के श्लोक के स्थान पर अनेक बार काम लिया गया है। इसमें भी आपस्तम्ब धर्मसूत्र के समान प्राचीन आठ के विरुद्ध विवाह के प्रकार ही स्वीकार किये गये हैं। कुमारिल ने लिखा है कि उसके समय में वाशिष्ठ धर्मशास्त्र का बड़ा भारी प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता था, और इसको केवल ऋग्वेदी ही पढ़ते थे,

उसका अभिप्राय इसी वर्तमान ग्रन्थ मे था—अन्य किसी से नही, क्यो कि कुमारिल के उद्धृत अंश वर्तमान छपे हुए संस्करण मे पाये जाते है। यह समझा जाता है कि यह ग्रन्थ उत्तरी भारत का है। वाशिष्ठ गौतम का उद्धरण देता है, उसके अंश मनु के एक प्राचीन सूत्र से एकत्रित किये गये है, इसके अतिरिक्त मनुस्मृति मे भी वशिष्ठ के ऐसे अंश है, जो छपे हुए ग्रन्थ म मिलते है, अतएव मनु का ग्रन्थ गौतम के बाद का है। यह संभव है कि ऋग्वेद से सम्बन्ध रखने वाले इस उत्तर के सूत्रग्रन्थ का काल ईसवी सन् से कई शताब्दी पूर्व हो।

कुछ धर्मसूत्रो के केवल अवतरण ही मिलते है, इनमे सबमे प्राचीन वह है जिनका वर्णन दूसरे धर्मसूत्रो मे आया है, इसमे सबसे अधिक रुचि मनु के सूत्र म उत्पन्न होती है, क्योकि उसका सम्बन्ध प्रसिद्ध मानवधर्म शास्त्र से है। वशिष्ठ म उसके अनेक अवतरणो मे से मनु के संस्कार पृष्ठ मे छः वैसे के वैसे ही है, यह बिखरे हुए अंश ही संभवत मानव धर्मसूत्र है, जिनके आधार पर मानव धर्मशास्त्र बनाया गया है जिसका वर्णन हम पृथक् अध्याय मे करेंगे।

शंख और लिखित (ये दोनो भाई थे) के धर्मशास्त्र के कुछ गद्य पद्यात्मक अंश मिलते है, यह तो न्याय विभाग मे सूक्ति के समान बन गये थे। इस ग्रन्थ का उद्धरण जो कि संभवत कानून के सभी विषयो का एक बड़ा भारी ग्रन्थ होगा पाराशर ने प्रमाण रूप म उपस्थित किया है। कुमारिल की सम्मति मे इसका सम्बन्ध वाजसनेय सम्प्रदाय से था।

वैखानस धर्मसूत्र, जो कि चार प्रश्नो मे लिखा गया है, ईसा की तीसरी शताब्दी से पूर्व का नही हो सकता। यह वास्तव म वह धर्मसूत्र नही है, क्योकि धार्मिक विषयो की अपेक्षा इसम गृह्यधर्म का ही विशेष वर्णन है, इसमे चारो आश्रमो और विशेषकर वानप्रस्थियो के नियम दिये गये है, क्योकि वैखानस लोग वानप्रस्थ ही होते थे। यह तैत्तिरीय सम्प्रदाय की ही एक सबसे छोटी शाखा प्रतीत होती है।

हमारे विचार म इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से धर्मसूत्र रहे होंगे, जिनका कालक्रम से अब कुछ पता नही चलता, क्योकि प्राय सभी वर्तमान स्मृतियां धर्मसूत्रो का ही श्लोक रूप म तोड़-मरोड़कर बनायी गयी है, हमने वशिष्ठ, आपस्तम्ब और बौधायन धर्मसूत्रो को इनकी स्मृतियो से मिलाकर स्वयं इस बात का अनुभव किया है।

शुल्वसूत्र धर्माचरण म सहायता देने वाला एक और प्रकार का भी सूत्र साहित्य है उसे शुल्वसूत्र कहते है।

आपस्तम्ब कल्पसूत्र का तीसवां अर्थात् अन्तिम प्रश्न आपस्तम्ब शुल्व सूत्र ...ती है। इन प्रश्नो म वेदी, यज्ञकुंड आदि की रचना के प्रकार होते है। इनमे रेखा-...णित के बड़े भारी ज्ञान का पता लगता है और वास्तव मे भारतीय गणित शास्त्र

पर यही सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसका सम्बन्ध कृष्ण-यजुर्वेद से है।

बौद्धायन शुल्वसूत्र भी कृष्ण यजुर्वेद का ही ग्रन्थ है।

शुल्क यजुर्वेद का सम्बन्ध कात्यायन शुल्वसूत्र से है।

संभवतः हिरण्यकेशी कल्पसूत्र के अट्ठाईसवें और उनतीसवें अर्थात् अन्तिम दो अध्यायों में हिरण्यकेशी शुल्वसूत्र हैं।

संभव है कि इसके अतिरिक्त भी बहुत से शुल्वसूत्र हों किन्तु उनका कुछ भी पता नहीं लग सका।

अन्य साहित्य—गृह्यसूत्रों के पश्चात् श्राद्धकल्प और पितृमेध सूत्र आते हैं, जिनमें श्राद्ध आदि के नियम हैं। वे ग्रन्थ प्रायः बाद के हैं, इस विषय के निम्नलिखित ग्रन्थ अभी तक छपे हैं—

(१) मानव श्राद्धकल्प, (२) शौनकीय श्राद्धकल्प (३) पिप्पलाद श्राद्धकल्प, के कुछ अंश, (४) कात्यायन श्राद्धकल्प, (५) गौतम श्राद्धकल्प, (६) बौधायन पितृमेध सूत्र, (७) हिरण्यकेशी पितृमेध सूत्र, (८) गौतम पितृमेध सूत्र।

इस साहित्य के पश्चात् परिशिष्ट आते हैं, जिनमें उन बातों को बड़े भारी विस्तार से लिखा गया है जो सूत्रों में संक्षेप से लिखी गयी हैं। इनमें से गोभिल गृह्यसूत्र के परिशिष्ट विशेष महत्वशाली हैं। उनमें से एक गोभिल पुत्र का गृह्य संग्रह परिशिष्ट कहलाता है और दूसरा कर्म-प्रदीप। अथर्ववेद के परिशिष्ट धार्मिक इतिहास में विशेष चित्रित हैं, क्योंकि यह सब प्रकार के मंत्र-तंत्र आदि का काम करते हैं। सबसे प्राचीन परिशिष्टों में से प्रायश्चित सूत्र भी महत्वशाली है। यह वैतान सूत्र का भाग है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) गोभिल सूत्र गृह्य संग्रह परिशिष्ट, (२) कर्मप्रदीप प्रथम भाग, (३) अथर्ववेद परिशिष्ट, (४) अथर्ववेद शान्तिकल्प, (५) अथर्व प्रायश्चित्तानि।

प्रयोग—प्रयोग विषय पर सबसे बाद के ग्रन्थ प्रयोग पद्धति और कारिकाएँ हैं। यह सभी ग्रन्थ या तो किसी विशेष वैदिक यज्ञ या संस्कार को बतलाते हैं या किसी विशेष रीति या पद्धति को बतलाते हैं। विवाह पद्धति, अन्त्येष्टि कल्प, श्राद्धकल्प आदि ग्रन्थों का नाम इस विषय में लिया जा सकता है। यद्यपि इस विषय के अधिकांश ग्रन्थ अभी तक लिखित रूप में पड़े हैं, इनमें से कुछ के भारतीय संस्करण भी निकल गये हैं।

५. ज्योतिष

'वेदांग-ज्योतिष' पद्य का एक छोटा-सा ग्रन्थ है, इसके ऋग्वेद के संस्करण में ३६ और यजुर्वेद के ४३ श्लोक हैं। यह किसी लगध नाम के विद्वान् का बनाया हुआ कहा जाता है, इसका मुख्य विषय सूर्य और चन्द्रमा का स्थान जानना और

सत्ताइस नक्षत्रों के चक्र में अमावस्या और पूर्णिमा के चन्द्रमा का स्थान जानना है। सम्भव है कि ज्योतिष पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ यही हो किन्तु इसके प्राचीन होने की साक्षी अन्य ग्रन्थों से नहीं मिलती।

६. छन्द

ब्राह्मणों में छन्द के अनेक विशृंखलित उल्लेख होने पर भी शाङ्खायन श्रौत सूत्र ७।२७ ऋग्वेद प्रातिशाख्य अन्त के तीन पटलों, और सामवेद के निदान सूत्र में न केवल छन्द का पृथक् वर्णन किया गया है किन्तु उक्थ, स्तोम और गण का भी वर्णन है। पिंगल छन्द सूत्र एक भाग में भी वैदिक छन्दों का वर्णन किया गया है, किन्तु पिंगल के छन्द सूत्र के वेदांग कहे जाने पर भी यह वेदांग नहीं कहा जाना चाहिए। क्योंकि इसमें वेदोत्तर काल के संस्कृत के छन्दों से ही विशेष नियम दिये हुए हैं।

इसके अतिरिक्त आगे लिखी हुई कात्यायन की दो अनुक्रमणिकाओं में भी एक-एक खण्ड वैदिक छन्दों के लिए दिया गया है। यह खण्ड विषय में ऋग्वेद प्राति-शाख्य के सोलहवें पटल से बिलकुल मिलते-जुलते हैं और सम्भव है कि यह प्राति-शाख्य के उस अंश से प्राचीन हो, यद्यपि प्रातिशाख्य अनुक्रमणी से प्राचीन समझा जाता है।

उपांग

उपांग अनेक हैं—पुराण—न्याय—मीमांसा और धर्मशास्त्र उपांग कहाते हैं।

पुराण १८ हैं, और उपपुराण भी १८ हैं।

न्याय के आचार्य गौतम और वैशेषिक के कणाद हैं। पुराणों में कणाद को उलूक और गौतम को अक्षपाद लिखा गया है। गौतम के न्याय पर वात्स्यायन का न्याय है और वैशेषिक पर प्रशस्तपाद का। मीमांसा का अर्थ है निर्णय। पूर्व मीमांसा जैमिनी की और उत्तर मीमांसा बादरायण की है। शबर स्वामी पूर्व मीमांसा के भाष्यकार हैं। कुमारिल भट्ट और प्रभाकर पूर्व मीमांसा के अनुयायी हैं। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, वल्लभाचार्य, विज्ञान भिक्षु, निम्बकाचार्य उत्तर मीमांसा के भाष्यकार हैं।

धर्मशास्त्र के सांख्य और योग उपभेद हैं। कपिल सांख्य के और पतञ्जलि योग के प्रणेता हैं।

वेदान्त—वेदान्त इस युग की समाप्ति पर सबसे भारी सांस्कृतिक घटना है। वेदव्यास ने सब श्रुतियों को लिपिबद्ध किया, सम्पादन किया और उनका तीन

भागों में विभाजन कर दिया। ऋग्वेद स्तुति प्रार्थना के लिए, यजुर्वेद यजन याजन के लिए और सामवेद गायन तथा पाठ शुद्धि के लिए। तीन वेद इस युग में त्रयीविद्या के नाम से भी विख्यात हुए। व्यास से प्रथम अथर्वाङ्गिरस ने भी कुछ ऐसा ही प्रयास किया था। व्यास ने उसे सम्पूर्ण किया। इसके वाद प्रत्येक वेद एक-एक शिष्य को वांट दिया, जो उस शिष्य की आनुवंशिक सम्पति की भाँति स्थिर रहा। और इन्हीं शिष्यों के वंशधरों ने इस वेद सम्पति की रक्षा आज तक ऐसे यत्न से की कि आर्यों के राज्य छिन गये, युग वदल गये, वंश नष्ट हो गये परन्तु वेद की एक मात्रा में भी उसके वाद अन्तर नहीं आया। इसके वाद वादरायण व्यास ने वेदान्त रचना की। इसी के साथ वेद काल समाप्त हुआ। वैदिक ऋषियों की समाप्ति हुई, और पुराण युग का आरम्भ हुआ। धार्मिक और सामाजिक संस्कृति का यह अभूतपूर्व क्रान्तिकर परिवर्तन था।

अनुक्रमणियाँ

वेद, ब्राह्मण और वेदांगों का वर्णन हो चुकने पर भी एक ऐसे प्रकार का वैदिक साहित्य वच रहता है, जिसको अनुक्रमणी कहते हैं। इसमें वेदमन्त्रों, वैदिक रचयिताओं, छन्दों और देवताओं की सूची इसी क्रम से दी गयी है, जिस क्रम से वह संहिताओं में मिलते हैं।

ऋग्वेद से इस प्रकार के सात ग्रन्थों का सम्वन्ध है, जो सवके सव शौनक के कहे जाते हैं। यह शौनक के ऋग्वेद प्रातिशाख्य के समान श्लोक और त्रिष्टुभ् छन्दों के मिश्रण से वने हुए हैं। एक सर्वानुक्रमणी भी है, जो कात्यायन की कहलाती है। आर्षानुक्रमणी ३०० श्लोकों का ग्रन्थ है, इसमें ऋग्वेद के ऋषियों की सूची है। इसका वर्तमान संस्करण इतना नवीन है कि वह वारहवीं शताव्दी में षड्गुरु शिष्य के टीकाकार को भी विदित था। छन्दोनुक्रमणी में ऋग्वेद के छन्दों को गिनाया गया है, यह प्रत्येक मण्डल के छन्दों के मन्त्रों की संख्या और सव छन्दों के मन्त्रों की संख्या भी वतलाती है। अनुवाकानुक्रमणी केवल ४० श्लोकों का छोटा-सा ग्रन्थ है, यह ऋग्वेद के ८५ अनुवादकों के सांकेतिक शव्द देकर प्रत्येक अनुवाक् के मन्त्रों की संख्या वतलाता है।

पादानुक्रमणी नाम की एक और भी मिश्रित छन्दों की छोटी अनुक्रमणी है। सूक्तानुक्रमणी, जो कि अव अनुपलव्ध है, प्रतीकों की अनुक्रमणी थी। संभवतः सर्वानुक्रमणी के सामने व्यर्थ हो जाने के कारण ही यह नष्ट हो गयी। देवतानुक्रमणी की यद्यपि कोई प्रति नहीं है किन्तु षड्गुरु शिष्य ने उसके दस उद्धरण किये हैं। वृहद्देवता सभी अनुक्रमणियों से वड़ा है, उसमें १२०० श्लोक ही हैं, केवल कहीं त्रिष्टुपों से काम लिया गया है। यह ऋग्वेद के अष्टकों के समान आठ अध्यायों

में विभक्त है, इसका उद्देश्य ऋग्वेद के क्रम को निहित रखते हुए प्रत्येक मन्त्र का देवता बतलाना है। किन्तु अनेक कथाओं के कारण इसका महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। यह यास्क के निरुक्त के आधार पर बना है, इसके अतिरिक्त इसके रचयिता ने यास्क, भागुरी और आश्वलायन आदि अनेक ऋषियों का उल्लेख करते हुए निदान सूत्र का भी उल्लेख किया है, इसमें कुछ ऐसी खिलाओं का भी उल्लेख किया गया है जो ऋग्वेद में नहीं है।

इनसे कुछ बाद की कात्यायन की सर्वानुक्रमणी है, यह सूत्र ढंग का बड़ा भारी ग्रन्थ है। बारह खण्डों की इसमें भूमिका है, जिनमें से नौ खण्डों में केवल वैदिक छन्दों का वर्णन है, जो वैदिक प्रातिशाख्य के वर्णन से मिलता-जुलता है। शौनक का दूसरा छन्दबद्ध ग्रन्थ ऋग्विधान है, जिसमें ऋग्वेद के मन्त्रों के पाठ से या केवल एक मन्त्र के पाठ से होने वाले आश्चर्यजनक प्रभाव का वर्णन किया गया है।

सामवेद के परिशिष्ट की दो अनुक्रमणी हैं एक आर्ष, दूसरी दैवत। जिनमें क्रम से सामवेद की नैगेय शाखा के ऋषियों और देवताओं को गिनाया गया है, उनमें यास्क, शौनक, अश्वलायन और दूसरे ऋषियों का उल्लेख किया गया है।

कृष्ण यजुर्वेद की दो अनुक्रमणी हैं, आत्रेय शाखा वाली में दो भाग हैं, जिनमें से प्रथम गद्य में तथा द्वितीय श्लोकों में है। काठकों की चारायणीय शाखा की अनुक्रमणी में भिन्न-भिन्न मन्त्रों के रचयिताओं की गणना की गयी है, कहा जाता है कि अत्रि ने इसको बनाकर लौगाक्षी को दे दी।

कात्यायन की कही जाने वाली माध्यन्दिनी शाखा (शुक्लयजुर्वेद) की अनुक्रमणी में पाँच खण्ड हैं, प्रथम चार में रचयिताओं, देवताओं और छन्दों की गणना है, पाँचवें खण्ड में छन्दों का संक्षिप्त वर्णन है, शुक्ल यजुर्वेद में और भी बहुत से परिशिष्ट हैं, जो सब कात्यायन के कहलाते हैं, इनमें से यहाँ केवल तीन का उल्लेख किया जा सकता है। निगम परिशिष्ट में शुक्ल यजुर्वेद के शब्दों का वर्णन है, प्रवराध्याय में ब्राह्मणों के कुछ वंशों का वर्णन है, जिससे विवाह आदि में उनका विचार किया जा सके, चरणव्यूह में विभिन्न वैदिक सम्प्रदायों का वर्णन है, यह ग्रन्थ बहुत बाद का बना हुआ है।

अथर्ववेद के परिशिष्टों में भी एक चरणव्यूह मिलता है; अथर्ववेद में ७० परिशिष्ट हैं।

दसवाँ अध्याय

१. वैदिक संस्कृति का प्रभाव

प्राचीन आर्य अग्निपूजक थे। वेद के अग्नि सूक्तों में बैबिलोनियम देव 'य' 'दमुत्सि' आदि का मिश्रण मिलता है।

मोहनजोदड़ो और हरप्पा के नगरावशेषों में मन्दिर समझी जाने वाली इमारतों के ध्वंस मिले हैं। परन्तु इनमें कोई देवमूर्ति नहीं है। एक स्थान पर लिंग के आकार का स्तम्भ अवश्य मिला है। पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि दास लोग लिंग पूजन करते थे। पर उनका एक पूजक-स्थान तो होता ही था। इन्द्र ने मण्डप बनाकर यज्ञ प्रथा जारी की थी। शतपथ में एक स्थान पर कहा गया है कि 'यज्ञ विष्णु था, और वह बामन (बौना) था। धीरे-धीरे वह बढ़ता चला गया।'[1] पुराणों में वामन अवतार और वलि बन्धन की कथा का आधार यही प्रतीत होता है, परन्तु इसका यह स्पष्ट अर्थ ध्वनित है कि यज्ञ संस्था साधारण अग्निहोत्र से बढ़कर कैसे पुरुषमेध तक बढ़ गयी।

पुरुषमेध के रूप में नरबलि तक इन यज्ञों में होती थी। धीरे-धीरे सब संस्कारों और गृह्य कृत्यों में यज्ञ प्रविष्ठ हो गया। इसने पुरोहितों का महत्व भी बढ़ाया। जब दासों और आर्यो का युद्ध हुआ, तो बलिदान वाले यज्ञों का विरोधी देवकी-पुत्र कृष्ण उठ खड़ा हुआ। उसने इन्द्र का विरोध तो किया, परन्तु यज्ञों के भड़कीले प्रदर्शनों के सम्मुख उसकी गोपूजन संस्कृति टिक न सकी। अन्ततः परीक्षित राजा के समय में यज्ञ परिपाटी खूब विकसित होकर यमुना तट तक आ पहुँची, जिनका वर्णन हम अथर्ववेद में इस प्रकार पाते हैं—

"सारे मर्त्यलोक में श्रेष्ठ सार्वभौम वैश्वानर परीक्षित की स्तुति सुनो। पति पत्नी से कहता है—इस कौरव ने राजा होकर अंधकार को बाँधकर लोगों के घर सुरक्षित किये। पत्नी पूछती है—तुम्हारे लिए दही लाऊँ या मक्खन ? परी-

---

१. यज्ञमेविष्णु पुरस्कृत्येयुः...वाम नोह विष्णुरास...तेने यां सर्वा पृथिवी समविन्दन्त।
(शतपथ, ब्रा० १।२।३।३-७)

क्षित के राज्य में पका हुआ बहुत सा जौ का दलिया यों ही मार्ग में पड़ा रहता है। (इस प्रकार) परीक्षित के राज्य में सुख की वृद्धि हो रही है।"[1]

इन मन्त्रों से हम देख सकते हैं कि परीक्षित के यज्ञों से लोग प्रसन्न थे। ऐसी स्थिति में घोर आंगिरस की श्रीकृष्ण को बताई सीधी-सादी यज्ञ विधि भला क्या काम कर सकती थी? इन यज्ञों के स्वरूप का एक वर्णन 'सुत्त निपात' के ब्राह्मण धम्मिक सुत्त में मिलता है—

" इन ब्राह्मणों ने लोभवश ओक्काक राजा को गोमेध करने के लिए प्रवृत्त किया। ओक्काक राजा ने भेड़ जैसी सीधी गायों को सींग पकड़कर वध किया। जब गायों पर शस्त्र चलाया गया तो देव-पितर, इन्द्र-असुर और राक्षस सबने कहा—अच्छा हुआ। इससे प्रथम इच्छा, भूख और वृद्धावस्था ये तीन रोग थे—अब पशु यज्ञ के कारण वे अट्ठानवें हो गये।"[2]

यह 'ओक्काक' कौन था, यह कहना अशक्य है। पर यह प्रकट है कि गंगा-यमुना के प्रदेश में परीक्षित और जनमेजय ही ने यज्ञों की धूम मचाई, जिनमें पशुवध किया गया। इन्हीं से ब्रह्मावर्त की आर्य संस्कृति में हिंसक यज्ञों का प्रचलन हुआ। इसमें ब्रह्मावर्त की कोई अवनति हुई, यह तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु इतना अवश्य हुआ कि ब्राह्मणों का समाज पर श्रेष्ठत्व स्थापित हो गया। यज्ञ-क्रिया और पौरोहित्य उनके हाथ में आ गया। "जिस राजा के यहाँ पुरोहित नहीं होता—उसका अन्न देवता नहीं खाते। पुरोहित प्राप्त करके राजा स्वर्ग को ले जाने वाली अग्नि को प्राप्त करता है। इससे उसका क्षात्रबल, तेज और राष्ट्र बढ़ता है। पुरोहित की वाणी, पाद, चर्म, हृदय और गुप्तेन्द्रिय स्थानों पर पाँच क्रोधाग्नि होती हैं, जो अभ्यर्थना, पाद्य, वस्त्रालंकार और धन दान तथा महलों में ऐश्वर्य से उन्हें रखने से शान्त रहती है।"

यज्ञों के विस्तार के लिए ही ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई। परन्तु जब ब्राह्मणों की रचना हो रही थी, तभी कुछ ऐसे सम्प्रदाय भी भारत में उत्पन्न हो रहे थे—जो यज्ञ कर्म से श्रद्धारहित थे।[3] उपनिषद् तो यज्ञ की निन्दा करते ही हैं, कुछ श्रुतियाँ भी ऐसी हैं जो इनके आडम्बरमय कर्मकाण्ड की धर्षणा करती हैं।[4] सांख्य के निर्माता कपिल ने तीव्र उक्तियों से कर्मकाण्ड का विरोध करके ज्ञान ही को मुक्ति का उपाय बताया है।

---

१ अथर्व० कांड २० सूक्त १२७

२ भारतीय संस्कृति, लक्ष्मण शास्त्री।

३ "प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति।" (मुण्डकोपनिषद् १, २०७)

४ न तं विदाथ य इमा जजानान्यद् युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति। (ऋ० १०, ८२, ७)

श्रीमद्भागवत में भी हिंसावर्जित कर्मविधि को सात्विकी कहा है।[1] वास्तव में देखा जाय तो यज्ञों और उसकी पद्धतियों का ऋग्वेद में बहुत ही कम तथा अस्पष्ट उल्लेख है। यज्ञों का जोर तो यजुर्वेदकाल में हुआ, जो निस्सदेह भारत संग्राम के वाद का काल है। यजुर्वेद में यज्ञ विधि का पूरा वर्णन है। शुक्ल यजुर्वेद का तो प्रथक्करण ही यज्ञ के लिए हुआ। सच तो यह है कि किसी हद तक ऋग्वेद देवताओं की तथा यजुर्वेद आर्यो की सभ्यता का द्योतक है।

यजुर्वेद के काल में आर्यो के बड़े-वड़े राज्य फैल रहे थे। नगर-व्यवस्था सुगठित हो चुकी थी। वर्णो का संगठन हो गया था, ब्राह्मण और क्षत्रिय ये दो वर्ण बड़ी तेजी से संगठित हो रहे थे। ऋग्वेद के सूक्त और यजुर्वेद तथा उसके शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों को गम्भीरतापूर्वक मनन करने से पता लगता है कि यजुर्वेद के काल में आर्यो का मुख्य धर्म अग्निहोत्र, जो प्रातः सांयकाल के साधारण नित्य कृत्य से लेकर बड़े-वड़े वैधानिक राजसूय यज्ञों और अश्वमेध यज्ञों तक—जो कई-कई वर्षो में समाप्त होते थे—बन गया था। यज्ञों के नियम, छोटी-छोटी वातों का गुरुत्व उद्देश्य और तुच्छ रीतियों के नियम, ये ही अब लोगों के धार्मिक हृदयों में भरे थे। ये ही थोथे विचार अब राजाओं और राजगुरुओं के विचार के विषय थे और इन्हीं का ब्राह्मणों की अनथक गाथाओं में उल्लेख है।

यजुर्वेद, जो यज्ञों का मूल स्तम्भ है, उसका नवीन संस्करण जनक के दरबारी विद्वान् याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने 'शुक्ल यजुर्वेद-वाजसनेयी' के नाम से किया तथा शतपथ ब्राह्मण रचकर मन्त्रों को व्याख्या से पृथक् किया। सम्भवतः यह कार्य याज्ञवल्क्य के जीवन काल में पूरा नहीं हुआ, उनके वाद अनेक विद्वानों ने बहुत दिनों में पूर्ण किया। उसका एक सम्प्रदाय बन गया। इस प्रकार वैदिक यज्ञों का आरम्भ उस काल का है, जब सुदास के युद्धों के वाद कुरु पांचालों के प्रवल राज्य दिल्ली और कन्नौज तक फैल चुके थे, और काशी-कौशल और विदेहों के राज्य भी विस्तार पा चुके थे।

ये यज्ञ राजाओं को किस तरह उपाधि दान देते थे—इसका वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण के एक वाक्य से देते हैं—

"तव पूर्व दिशा में विदेहों ने सारे संसार का राज्य पाने के लिए ३१ दिन तक इन्हीं तीनों ऋक् यजु की ऋचाओं और गम्भीर शब्दों से उस इन्द्र का प्रतिष्ठापन किया। इसीलिए पूर्वी जातियों के सब राजाओं को देवताओं के इस आदर्श के अनुसार सारे संसार के महाराजा की भाँति राजतिलक दिया जाता है और वे इसके वाद सम्राट् कहलाते हैं।"

---

१. द्रव्य यज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि विभ्यति।
एष मा करुणो हन्यादतज्ञो ह्यसुतृपध्रुवम्। (श्रीमदभागवत)

कभी-कभी राजाओं में और इन पुरोहितों से कर्म-काण्ड के विषय पर भी विवाद होता था, जिसका मनोरंजक उदाहरण शतपथ ब्राह्मण में है।[1]

"विदेह के जनक की भेंट कुछ ऐसे ब्राह्मणों से हुई, जो अभी आये थे। ये श्वेतकेतु आरुणेय, सोमशुष्म सात्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य थे। उसने पूछा—

तुम लोग अग्निहोत्र जानते हो?

तीन ब्राह्मणों ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया। पर किसी का उत्तर ठीक न था। याज्ञवल्क्य का उत्तर यथार्थ बात के बहुत निकट था, परन्तु वह भी पूर्णतया ठीक नहीं था। जनक ने उनसे कहा—"तुम लोग कुछ नहीं जानते।" और वह रथ पर चढ़कर चला गया।

ब्राह्मणों ने कहा—इस राजन्य ने हमारा अपमान किया है। परन्तु याज्ञवल्क्य रथ पर चढ़कर राजा के पीछे गया और उससे शंका निवारण की। तब से जनक ब्राह्मण कहा जाने लगा।

वास्तव में इन निरर्थक अग्निहोत्रों का वर्णन ऐसा विस्तृत हो गया था, और क्रियाएँ इस तरह बढ़ गयी थीं कि याज्ञवल्क्य जैसे ब्राह्मण को भी याद न रहीं—संभवतः इसी गड़बड़ी को मिटाने के लिए उसे शुक्ल यजुर्वेद का सम्प्रदाय बनाना पड़ा और अपना स्वतन्त्र ब्राह्मण शतपथ बनाने में तमाम जीवन नष्ट करना पड़ा।

इन पुरोहितों को दक्षिणा का लालच बढ़ रहा था, और वे धन सोना, चाँदी जवाहरात, घोड़ा, गाड़ी, गाय, खच्चर, दास, दासी, मेत, घर और हाथियों को ठाठ से रखते थे।[2] यज्ञ में सोना दान करना उचित समझा जाता था। चाँदी के दान देने का बहुत ही निषेध था। ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी इसका अनोखा कारण बताया जाता है—

"जब देवताओं ने अग्नि को सौंपा हुआ धन उससे फिर माँगा—तो अग्नि रोई और उसके जो आँसू बहे—वे चाँदी हो गये। इसी कारण यदि चाँदी दक्षिणा में दी जाय, तो उस घर में रोना मचेगा।"

एक घटना इस प्रकार है—

(जनक विदेह) ने एक अश्वमेध यज्ञ किया। जिसमें याज्ञिकों को बहुत सी दक्षिणा दी गयी। उसमें कुरुओं और पांचालों के ब्राह्मण आये थे। जनक यह जानना चाहते थे कि उनमें से कौन अधिक पढ़े हैं। अतएव उन्होंने हजार गौओं को घिरवाया और प्रत्येक के सींगों में १८ मोहर बाँधी। तब जनक ने उन सबों से कहा— ब्राह्मणो! तुममें जो सबसे बुद्धिमान हो वह इन गौओं को हाँक ले जाय।" इस पर उन ब्राह्मणों का साहस न हुआ। पर याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य

———

१ शतपथ—११ ब्रा॰ ४, ३, ११, ६, २१।

२ छान्दोग्य उपनिषद् ३, १३, १७, ७, २४।

शतपथ ब्रा॰ ३ २, ४८। तैत्तिरीय उ॰ १, ३, १२।

से कहा—"वत्स ! इन्हें हाँककर घर ले जाओ।"

उसने कहा—"सामन की जय।" और वह उन्हें हाँककर घर ले गया।

इस पर ब्राह्मणों को बड़ा क्रोध आया। वे प्रश्न पर प्रश्न पूछने लगे। होत्री, अस्वल जारतकरव, आरतभाग, मृत्युलाहचार्यामि, उषस्तचाक्रायन, केहाल कौशिनतक्रय उद्दालक आरुणी, तथा अन्य लोग याज्ञवल्क्य से प्रश्न पर प्रश्न करने लगे पर याज्ञवल्क्य ने सबको निरुत्तर किया।

गार्गी खड़ी हुई और बोली—"हे ब्राह्मण तू क्या सबसे विद्वान् है ?"

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—"मुझे गौओं की आवश्यकता थी, मैंने उन्हें ले लिया।"

गार्गी ने कहा—"हे याज्ञवल्क्य, जिस प्रकार काशी अथवा विदेहों के किसी योद्धा का पुत्र अपने ढीले धनुष में डोरी लगाकर अपने हाथ में दो नोकीले शत्रु को वेधनेवाले तीर लेकर युद्ध करने खड़ा होता है, उसी प्रकार मैं भी दो प्रश्नों को लेकर तुमसे लड़ने खड़ी होती हूँ, मेरे प्रश्नों का उत्तर दो।"

यह वर्णन उन प्राचीन मंत्र दृष्ट्व-ऋषियों और उन यज्ञों के व्यवसाई पुरोहितों में जो अन्तर है इसे स्पष्ट करते हैं। इन्हीं याज्ञवल्क्य के दो स्त्रियाँ थीं। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि इन लोगों में यद्यपि विद्या और योग्यता थी, तथापि इनका नैतिक पतन हो चुका था, ये श्रीमंत और विलासी हो गये थे।

बड़े-बड़े यज्ञ प्रायः बसन्त ऋतु में चैत्र वैसाख के महीनों में होते थे। ऐतरेय ब्राह्मण के चौथे भाग को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

२. यज्ञों में पशुवध

एतरेय ब्राह्मण[1] में लिखा है—किसी राजा या प्रतिष्ठित अतिथि का सत्कार किया जाय तो बैल या गाय मारी जानी चाहिए। आधुनिक संस्कृत में अतिथि का एक नाम 'गोघ्न' गाय का मारने वाला भी है। कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण में यह ब्यौरेवार लिखा है—कि छोटे-छोटे यज्ञों में विशेष देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए किस प्रकार का पशु मारना चाहिए। गोपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि उस पशु का भिन्न-भिन्न भाग किसे मिलना चाहिए। पुरोहित लोग जीभ, गला, कन्धा, नितंब, टाँग इत्यादि पाते थे। यजमान पीठ का भाग लेता था और उसकी स्त्री को पेडू के भाग से संतोष करना पड़ता था।[2]

---

१. एतरेय १, १५।

२. अथातः सवनीयस्यपशोर्विभागं व्याख्यास्यामः, उद्धृत्यावदा नानि हनुसजिह्वे प्रस्तोतुः, कण्ठः सकुकुदः प्रतिहर्तुः। श्येन पक्ष उदगातुर्दक्षिणं पार्श्वं सांसमध्वर्योः, सत्यमुपगात्रीणां सव्योंसः, प्रतिप्रस्थातुर्दक्षिणाश्रोणिरथ्यास्त्री ब्रह्मणोऽवसवथ्यें ब्रह्मच्छासितः उरुः, पोतुः सव्याश्रोणि

शतपथ ब्राह्मण मे इस विषय पर एक मनोहर विवाद है कि पुरोहित को बैल का मांस खाना चाहिए या गाय का ? अन्त मे परिणाम निकाला गया है—कि दोनो ही मांस न खाने चाहिएँ। फिर भी याज्ञवल्क्य कहते हैं कि यदि नर्म हो तो हम उसे खा सकते हैं।[1]

शतपथ ब्राह्मण मे पशु का यज्ञ मे बलिदान देने के विषय मे एक अद्भुत वाक्य है—

'पहले देवताओ ने मनुष्य को बलि दिया। जब वह बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमे से निकल गया, और उसने घोडे मे प्रवेश किया। तब उन्होंने घोडे को बलि दिया। जब घोडा बलि दिया गया, तो यज्ञ का तत्व उसमे से निकल गया और उसने बैल मे प्रवेश किया। तब उन्होंने बैल को बलि दिया। यज्ञ का तत्व उसमे मे भी निकल गया, और उसने भेड मे प्रवेश किया। जब भेड बलि दी गयी तो यज्ञ का तत्व उसमे से निकलकर बकरे मे प्रविष्ट हो गया। तब उन्होने बकरे को बलि दिया। जब बकरा बलि दिया गया, तो यज्ञ तत्व उसमे से भी निकल गया और तब उसने पृथ्वी मे प्रवेश किया। तब उन्होंने पृथ्वी को खोदा और उसे चावलो और जौ के रूप मे पाया।' 'जो मनुष्य इस कथा को जानता है, उसे (चावल आदि) का द्रव्य देने से उतना ही फल होता है, जितना कि इन पशुओं के बलि करने म।'[2]

पूर्व मीमासा मे लिखा है—कि बडे-बडे यज्ञों मे कार्यकर्ता लोगो की पूरी सख्या १७ होती है। १ यजमान १६ पुरोहित। परन्तु छोटे अवसरो पर केवल चार ही ब्राह्मण होते हैं।

बलिदान की सख्या यज्ञ के अनुसार होती थी। अश्वमेध मे सब प्रकार के बलि अर्थात् पालतू और जगली जानवर, थलचर, जलचर, उडने वाले, तैरने वाले रेंगने वाले जानवरो को मिलाकर ३०९ मे कम न होने चाहिएँ।

ऐसा प्रतीत होता है—कि ज्यो-ज्यो हिंसा बढी, त्यो त्यो यज्ञ की हिंसा का विरोध और उसके प्रति घृणा का प्रदर्शन भी होने लगा था। महाभारत मे लिखा है—

'वेद मे जो लिखा है—कि 'अज' से यज्ञ करें, सो अज का अर्थ बीज है—

होतुरपर सक्थ मैत्रावरुणस्योरश्छावाकस्य, दक्षिणादोर्नेष्टुः सव्याग्सदस्य सदचान्वं च गृहपतेर्शम्नो पत्न्यास्तामां ब्राह्मणेन प्रतिग्राहयति वनिष्ठुर्हृदय वृक्को चाङ्गुल्यानि दक्षिणोबाहुराग्नीधस्य सव्य आत्रेयस्य दक्षिणो पादौ गृहपतेर्व्रतप्रदस्यसव्यौपादौ गृहपत्न्या व्रत प्रदाया।

—(गोपथ ३।१८)

1 —धेन्वै चानडुहश्च नाश्नीयाद्धेन्वनडुहौ वा इद ँ सर्व बिभृतस्ते देवा अब्रुवन् धेन्वनडुहौ वा इद ँ सर्वं बिभृतो हन्त यदन्येषां वयसां वीर्यं तद्धेन्वनडुहयोर्दधामेति—तदु होवाच याज्ञवल्क्योऽश्नाम्येवाह ँ मांसलं चेद्भवतीति। —(शतपथ ३।१।२।२१)

2 शतपथ ब्रा० १, २, ३ ७, ८।

बकरा नहीं।"[1]

"गाय अवध्य हैं, इन्हें नहीं मारना चाहिए।"[2]

"हिंसा धर्म नहीं है।"[3]

"वह कोई धर्म ही नहीं, जहाँ पशु मारे जाएँ।"[4]

चार्वाक् सम्प्रदाय वालों ने, जिनका प्रादुर्भाव उन्हीं दिनों हुआ था जब पशु हिंसा चल रही थी, उपहास से लिखा था—

"पशु के मारने से यदि स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने पिता को ही मार-कर हवन क्यों नहीं कर डालता ?"[5]

मत्स्यपुराण अध्याय १४३ में यज्ञ के विषय में मनोरंजक वर्णन पाया जाता है—

"ऋषि पूछने लगे कि स्वायंभुव मनु के समय वेदोक्त मन्त्रों से यज्ञ प्रचार किस ढंग से आरम्भ हुआ ?"

"यह सुनकर सूतजी बोले—वैदिक मन्त्रों का विनियोग यज्ञ कर्म में करके विश्व-भुक् इन्द्र ने यज्ञ का प्रचार किया। देवताओं का संगठन किया— सब यज्ञ के साधन इकट्ठे किये, और अश्वमेध का आरम्भ हुआ। इसमें महर्षि भी आये थे। इस यज्ञ में अनेक ऋत्विज अनेक प्रकार के हवि अग्नि को अर्पण करने लगे। जब सुस्वर सामगान होने लगा—और पशुओं का आलम्भन होने लगा, यज्ञ का सेवन करने वाले देवगण जब आहूत हुए—उस समय दीन पशुगणों को अवलोकन करके महर्षिगण उठे और इन्द्र से पूछने लगे कि तुम्हारी यज्ञविधि क्या है ?

"यह तो बड़ा अधर्म है कि धर्म के नाम से अधर्म हो रहा है। यह पशुहनन विधि तो अनुचित है। तूने धर्म का नाश करने के लिए ही पशु मारकर यह अधर्म करना शुरू किया है। यह धर्म नहीं है—अधर्म है। तुझे यज्ञ करना है तो यज्ञीय धान्य के बीजों से ही यज्ञ कर।" इस प्रकार ऋषियों ने कहा, परन्तु इन्द्र ने नहीं माना।

"तब इन्द्र और ऋषियों में बड़ा विवाद छिड़ गया। यज्ञ जंगम वस्तुओं से हो या स्थावरों से ? यही विवाद था। जब ऋषि थक गये, तब वे दुखी होकर सम्राट् वसु के पास गये।"

"ऋषि बोले—हे उत्तानपाद के वंशधर। तूने कैसी यज्ञ-विधि देखी है, सो कह।"

---

१. अजेर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अज संज्ञानि बीजानि छागन्नो हन्तु महंथ। (महा० अनुशा०)

२. अघ्न्या इति गवां नाम, कस्तुतांहन्तुमर्हति।

३. न हिंसा धर्म उच्यते।

४. नैषधर्मः सतां देवा यज्ञ बध्येत वै पशुः।

५. पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्ठानं गमिष्यति, स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते।

"राजा वसु बोले—द्विजो को मेध्य पशुओं से तथा फलमूलों ही से यज्ञ करना उचित है। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है। यह मैंने देखा है।"

"राजा का भाषण सुनकर ऋषियों ने उसे शाप दिया—तेरा अधःपात हो।" इससे उसका अधःपतन हुआ।[1]

यही कथा कुछ अन्तर से वायुपुराण में भी है। इससे पता लगता है कि कुछ विद्वान् लोग इन पशु-वधों से अत्यन्त घृणा करने लगे थे।

महाभारत शान्तिपर्व में भी एक ऐसी ही कथा है—"इन्द्र ने भूमि पर आकर यज्ञ किया।' जब पशु की आवश्यकता हुई, तब बृहस्पति ने कहा—"पशु के लिए आटा लाओ। यह सुनकर मांस के लालची (पशु-गृद्धाः) देवता बारम्बार बृहस्पति से कहने लगे—कि बकरे के मांस से हवन करो।"

"ऋषि बोले—यज्ञों में बीजों से (धान्यों से) यज्ञ करना चाहिए। 'अज' बीज का नाम है। बकरा मारना सज्जनों का काम नहीं। यह श्रेष्ठ कृतयुग है। इसमें पशु कैसे मारा जायेगा?"

तब सबने सम्राट् उपरिचर वसु को मध्यस्थ कर कहा—"हे महाराज! यज्ञ बकरे के मांस का करना चाहिए, या कि वनस्पतियों का? कृपा करके आप निर्णय कीजिए।

राजा बोला—पहले यह बताओ, किसका क्या मत है?

"ऋषि बोले—धान्य हवन हमारा पक्ष है, और पशु-हनन देवों का।"

"वसु ने कहा—तब बकरे के मांस से ही हवन करना चाहिए। इस पर ऋषियों ने उसे शाप दिया और उसका अधःपतन हुआ।"

अब वसु ने यज्ञ ठाना। उसमें बृहस्पति उपाध्याय था। प्रजापति के पुत्र सदस्य थे। एकत्, द्वित्, त्रित्, धनुष, रैभ्य, अर्णवसु, मेधातिथि, ताण्ड्य, शान्ति, देवशिरा, कपिल, आद्यकठ, तैत्तिरी, कण्व, देवहोत्र ये सोलह ऋत्विज थे। इस यज्ञ में पशुवध नहीं किया गया। यह यज्ञ अहिंसक और शुद्ध था। इससे फिर उसका अभ्युदय और उन्नति हुई।"[2]

महाभारत में इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि यज्ञों में पशुहिंसा वैदिक काल में बहुत पीछे चली थी।

"यह कृतयुग है, इस यज्ञ में पशु अहिंस्य है। क्योंकि इसमें चारों कलाओं से पूर्ण धर्म है। इसके बाद त्रेतायुग होगा, उसमें त्रयीविद्या होगी, और यज्ञ-पशु प्रोक्षित होकर मारे जायेंगे।"[3]

श्रीमद्भागवत् में यज्ञ के विषय में लिखा है—"हे राजन्! तेरे यज्ञ में जो

---

1 मत्स्य पुराण अ० १४३।
२ महा० शान्ति० अ० ३३६।
३ महा० शान्ति० अ० ३४०।

सहस्रों पशु तेरी निर्दयता से मारे गये, तेरी क्रूरता का स्मरण करते हुए क्रोधित होकर तीक्ष्ण हथियारों से तुझे काटने को बैठे हैं।"

"इस दयाहीन ने यज्ञ में जो पशु मारे थे, वे ही क्रुद्ध होकर उसका वह अयोग्य कर्म स्मरण करते हुए उसको कुल्हाड़ों से छिन्न-भिन्न करने लगे।"[१]

सप्तसिन्धु देश के यज्ञों में कदाचित् गोवध होता था। परन्तु गंगा-जमुना की ओर गोवध का बहुत विरोध था।[२] कृष्ण ही बड़े भारी गौरक्षक तथा गोवध विरोधी थे, संभवतः देवेन्द्र से झगड़े का एक वड़ा कारण यह भी था कि वह देवेन्द्र की रुचि के विपरीत यज्ञ में गोवध पसन्द नहीं करते थे।[३] यदि कृष्ण इन्द्र के अनुकूल रहकर गोवध कर यज्ञ करते, तो कदाचित वह भी ऋग्वेद के प्रसिद्ध देवता हो जाते। महाभारत में भी पशुवध का विरोध है।[४] यज्ञ में दो वेदियाँ वनायी जाती थीं। एक पूर्ववेदी दूसरी उत्तरवेदी। उत्तरवेदी पूर्ववेदी से दूर रहती थी, वहीं पशुवध होता था तथा वहीं यूप गाड़ा जाता था।[५] इस सम्वन्ध में तैत्तिरीय संहिता में महत्वपूर्ण संकेत हैं—ऋग्वेद दूध की, यजुर्वेद घृत की, सामवेद सोम की और अथर्व मधु की आहुतियों की विधि बताता है। परन्तु ब्राह्मण-इतिहास-पुराण-कल्प गाथा नराशांसी मेद (चर्वी) की आहुति कहते हैं।[६]

जिन दिनों ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई—उन दिनों यज्ञों के महात्म्य का वड़ा भारी जोर था। फिर भी अनेक ऋषि और मनस्वी इस पाखण्ड और हिंसा के अनाचार से अत्यन्त अप्रसन्न थे और वे विरोध करते थे। और भी एक सम्प्रदाय था जो यज्ञ-कर्म से श्रद्धा रहित हो गया था।

मुण्डकोपनिषद १—२०० में कहा गया है।

प्लवाह्येते अदृढ़ा यज्ञ रूपा अष्टादशोक्तमवयंव येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढ़ा जरा मृत्युं पुनरेवापियान्ति ॥

जिनमें निकृष्ट कर्म कहे गये हैं—वे अष्टादश जनयुक्त (१६ ऋत्विक्, १ यजमान, १ यजमान पत्नी) यज्ञरूप प्लव समूह शिथिल हैं। जो मूढ़ इनको

---

१ श्रीमद्भागवत ४, २५, ७, ८।
एतद् वा उस्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात्। (अथर्व० ९।६।९)

२. पशून् पाहि गां मा हिंसी, अजां माहिंसीः, अवि माहिंसीः, इमं-माहिंसी-द्विपदं पशुं, माहिंसी-रेकशफं पशु-माहिंस्यात् सर्वाभूतानि। (यजुर्वेद)

३. इसी देवकी पुत्र कृष्ण को घोर आंगिरस ने यज्ञ की नई विधि वताई थी, जिसकी दक्षिणा थी—तप, ज्ञान आर्जन, अहिंसा और सत्य। (छा० उ० अं० ३,१७, ४, ६)

४. "नतत्र पशुघातो भूत् स राजैरस्थितो भवत्। (म० शा० ३३६।१०)

५. "देखिए श्री डा० मार्टिनहांग कृत ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य।

६. यद्चोऽध्यगीषत ताः पय आहुतयो देवासामभवत्। यद्यजू ँ षि घृतायुतो यत्सामानि सोमाहुतयो यदथर्वांगिरसो मध्वाहुतयो-यद्ब्राह्मणानि इतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीर्मेदाहुतयो देवानाभवन्। (तैत्तिरीय प्रा० २ अ० ९ मं० २)

कल्याणकर समझकर इनका अभिनन्दन करते हैं—वे पुनर्वार जरा मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार यज्ञ की निन्दा सूचक अन्य भी श्रुतियाँ पायी जाती हैं। इन थोथे आडम्बरमय कर्मकाण्डियों की अवहेलना ऋग्वेद में देखिए है—(१०-८२-७)

न त विदाथ य इमा जजानअन्यद्द युष्मा कमन्तर बभूव।
नीहारेण प्रावृत जल्प्या असुतृप उक्थ प्रावृतचरन्ति॥

अर्थात्—ये उस सृष्टिकर्त्ता को नही जानते, तुमसे इनमे अन्तर है, नीहार द्वारा ये आच्छान्न हैं, केवल उच्चारण करके ही तृप्त होकर विचरण करते हैं।

साम्य दर्शनकार महर्षि कपिल ने तीव्र उक्तियो द्वारा इस कर्म-पाखण्ड का विरोध किया और केवल ज्ञान को मुक्ति का मार्ग बताया। कपिल ने वेदो ही के आधार पर ज्ञान-काण्ड को सिद्ध किया है।

गीता मे (२।४२।४३।४५) मे इसी कर्म-काण्ड को लक्ष्य करके वेदो की निन्दा की गयी है।

यामिमा पुष्पिता वाच प्रवदन्त्यविपश्चित।
वेदवाद रता पार्थ, नान्य दस्तीति वादिन।
त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
कामात्मान स्वर्ग परा जन्म कर्म फल प्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुला भोगैश्वर्यगति प्रति।

हे पार्थ! वेदो के मन्त्र पाठ मे भूले हुए और यह कहने वाले मूढ व्यक्ति कि इसके सिवाय और कुछ नही है, बात बढाकर ऐसा कहते हैं कि तरह-तरह के यज्ञ आदि कर्म करने से फिर जन्म रूपी फल और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।…इसलिए हे अर्जुन! वेदो मे त्रैगुण्य की बातें भरी पडी हैं। तुम गुणातीत हो जाओ।

श्रीमद्भागवत् मे हिंसावर्जित कर्मविधि को सात्विकी कहा है—

द्रव्य यज्ञैर्यक्ष्यमाण दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति।
एष मा करुणो हन्या दतज्ञोह्य सुतृप ध्रुवम।

ब्राह्मण ग्रन्थो के बाद सूत्रकाल मे वैदिक बलिदानों के सम्बन्ध की रीतियों के विस्तारपूर्वक वर्णनों के सक्षिप्त ग्रन्थ जो बनाये गये वे, श्रौत सूत्र कहे जाते हैं। उन सूत्रो मे ऋग्वेद के दो, सामवेद के तीन, कृष्ण यजुर्वेद के चार, और शुक्ल यजुर्वेद के पूरे-पूरे प्राप्त हैं। बौद्धकाल तक ये सूत्र चलते रहे हैं, जबकि यज्ञ की हिंसा अधिक बढ रही थी।

इस मांस भक्षण का प्रभाव उपनिषदों तक मे हो गया। बृहदारण्यक उपनिषद् ८।४।८ मे लिखा है कि जो कोई यह चाहे कि मेरा पुत्र विद्वान् विजयी और सर्व वेदो का ज्ञाता हो—वह बैल का मास चावल के साथ पकाकर घी डालकर खाये।

"अथ य इच्छेत् पुत्रों में पण्डितो विजिगीतः समिती गमः सुश्रूपितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदानुन्नवीत सर्वमायुरियादिति मा ᱬ सौद पाचयित्वा सर्विष्मन्तं मश्नियातामीश्वरौ जनयीत वा औक्षणेन वा ऋषंर्भणवा। वृह० उ० ८।४।१८

श्रौत्रसूत्रों में दो प्रकार के यज्ञों का वर्णन है। एक हविर्यज्ञ—जिनमें चावल, दूध, घी, माँस आदि का अर्घ्य दिया जाता है। दूसरा सोम यज्ञ जिसमें सोमरस का अर्घ्य दिया जाता है।

हविर्यज्ञ ये हैं—१ अग्न्याधान, २ अग्निहोत्र, ३ दशपूर्णमाश, ४ अग्रयण, ५ चातुर्मास, ६ विरुध पशुवघ्न, ७ सौत्रामणि।

सोमयज्ञ ये हैं—१ अग्निष्टोम, २ अत्यग्निस्टोम, ३ उक्थ्य, ४ षोडसिन, ५ वाजपेय, ६ अतिरात्र, ७ आप्तोयाम।

इसके सिवाय अन्य छोटी-छोटी क्रियाएँ जैसे—अष्टका जो जाड़े में की जाती थी। पार्वण—जो शरद पूर्णिमा को होती थी। श्राद्ध—पितरों को वलिदान। अग्रदायणी—जो अगहन में की जाती थीं। चैत्री—जो चैत में की जाती थी। आश्वपुगी—जो असौज में की जाती थी। इनमें की बहुत-सी धार्मिक क्रियाएँ और उनकी तिथि आजकल त्यौहार बन गये हैं। इन पूजा और यज्ञों को जो कि सर्व साधारण के लिए थीं, धर्म कहा गया।

३. बुद्ध का विरोध

बुद्ध ने पशुवध के विरोध में बड़ी ऊँची आवाज उठायी थी। उसने कहा—"पहले ब्राह्मण अन्न बल-कान्ति और सुख देने वाली मानकर गाय का वध नहीं करते थे, परन्तु आज घड़ों दूध देने वाली, वकरी के समान सीधी गाय को गोवध में मारते हैं।[1]

इस बात के यथेष्ठ प्रमाण हैं, कि ब्रह्मावर्त सर्वप्रथम परीक्षित और उसके पुत्र जनमेजय ने यज्ञ की धूम मचायी। इसी से इन दोनों राजाओं का अथर्ववेद में महत्व है।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धकाल में यज्ञों का बहुत जोर था, पर

---

१. अन्नदा वलदा चेतां वण्णदा सुखदा तथा, एतमत्यवसंजत्वा नास्सुगावो हनिसुते। नपादा न विसाणेन नाम्सु हिंसन्ति केनचि। गावो एलक समाना सोरता कुम्भ दूहना। ताविसाणेगहेत्वान राजा सत्येन घातीय।

२. राज्ञो विश्वजनीनस्ययोदेवो मत्यां भ्रति।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः।७
पांरच्छिन्नः क्षेममरोत्तम प्रासनमाचरन्।
कुलायन्कृण्वन्कौरव्यः पतिर्वदति जायया।८

जनता को यज्ञों से घृणा थी। राजा और धनी ब्राह्मण कृषि के उपयोगी पशु किसानों से जबर्दस्ती छीन लाते थे, और यज्ञ यूपों में बांध उनका वध कर डालते थे। ऐसा सकेत हमें 'कोशल संयुक्त सुत्त' में मिलता है—

"बुद्ध तब श्रावस्ती में रहते थे। उस समय कोशल राजा प्रसेनजित का महायज्ञ आरम्भ हुआ। पांच सौ बैल, पांच सौ बछड़े, पांच सौ बछियाँ, पांच सौ बकरे और पांच सौ भेड़ें यज्ञ में वध करने के लिए यूपस्तम्भों में बंधे थे। राजा के दास सूत और कर्मचारी दण्ड भय से रोते हुए यज्ञ के सब काम कर रहे थे। इसकी सूचना भिक्षुओं ने भगवान् को दी।"

'तब भगवान् ने कहा—अश्वमेध, नरमेध, सम्यक् पाश, वाजपेय और निरर्गल यज्ञ बहुत खर्चीले हैं, पर महत्फलदायक नहीं। जिस यज्ञ में भेड़-बकरे, गाय, बैल, आदि विविध प्राणी मारे जाते हों, उसमें सत ऋषि नहीं जाते। पर जिसमें प्राणियों की हिंसा नहीं होती उसमें सत महर्षि जाते हैं।"[1]

इस उदाहरण से यज्ञ विरोधी भावना प्रकट होती है। और भी एक उदाहरण है—

"कूटदन्त ब्राह्मण ने एक बड़ा यज्ञ करना आरम्भ किया। गाय, बैल आदि सैकड़ों प्राणी वध के लिए खम्भे से बंधे थे। बुद्ध की कीर्ति सुन वह बुद्ध के पास आया। उसकी विनती पर बुद्ध उसको प्राचीन काल में महाविजित राजा ने निरामिष यज्ञ किस प्रकार किया—यह बात बतायी। सुनकर ब्राह्मण बुद्ध का उपासक बन गया और बलिदान के पशुओं को छोड़ दिया।[2]

वैदिक आर्यों का श्रौत-स्मार्त धर्म तथा वैदिक संस्कृति का व्यापक विस्तार

वैदिक आर्यों ने प्रथम पचसिन्धु प्रदेश (सिन्धु पजाब) में प्रवेश किया—धीरे-धीरे शेष भारतीय अवैदिक प्रजा पर भी उनका प्रभाव फैल गया। इस प्रभाव का विस्तार दो रूपों में हुआ, राजसत्ता के बल पर और ब्राह्मण पुरोहितों के द्वारा। इस संस्कृति की मूलभूत वस्तु थी—नि सर्ग शक्तियों में मूर्तपूर्व जनों के कल्पित चेतन देवों की यज्ञ द्वारा आराधना या उपासना। ऐहिक जीवन की आवश्यकताओं और भौतिक साधनों की उपलब्धि ही इन यज्ञों का ध्रुव ध्येय था। राजा राजसूय करके महाराज और महाराज अश्वमेध करके सम्राट् बन जाता था। पुरोहित ब्राह्मण अनगिनत धन, दास-दासी आदि दान दक्षिणा में पाकर

कतरत्त आहराणि दधि मंथां परिश्रुतम्।
जाया पतिं विपृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ।९
अभीवस्वः प्रजिहीते यवः पक्वः पथो बिलम्।
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ।१० (अथर्व० का० २० सू० १२७)

1 कोशल संयुत्त सुत्त, वग्ग १। सुत्त ९।
2 दीघनिकाय का कूटदन्त सुत्त।

तथा राजाओं से संस्कृत और पूजित होकर खूब सम्पन्न और अधिकारपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। इन पुरोहितों को प्रसन्न करने, राजाओं के निकट पहुँचने तथा विविध भौतिक अभिलाषाओं के लिए जन साधारण भी यज्ञ करते थे। काम्येष्ठि यज्ञ से और अथर्ववेद के प्रयोग से तो ऐसा प्रतीत होता है कि यातु (जादू) भी यज्ञों का एक अंग था।

वेद में सूर्य, सविता, पूपन्, मित्र, भग, वरुण, विश्वकर्मन्, अदिति, त्ष्वा, उपस्, अश्वी, इन्द्र, ब्रह्मणस्पति, मरुत्, रुद्र, पर्जन्य, अग्नि, सोम, यम, पितर आदि जिन देवों का सूक्तों में ऋषियों ने वर्णन किया है, उन सूक्तों में उन्हें सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ बताने की चेष्टा की है। इसका परिमाण यह हुआ कि प्रत्येक देवता परमेश्वर बनने लगा और उनकी मूल भिन्न शक्तिमत्ता लुप्त हो गयी। यजुर्वेद के यज्ञों में अवश्य देवों की पृथक् शक्तिमत्ता वर्णित की गयी है। अथर्ववेद में तो ये देवता जादू के माध्यम हैं, विशेषकर भृगु-आंगिरस और अथर्वन तो बड़े भारी जादूगर प्रतीत होते हैं। ऋग्वेद के वशिष्ठ भी जादू में दखल रखते हैं। वैदिक देवता, जो अति प्राचीन आर्य पुरुप ही थे, वेदों में भौतिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली भौतिक शक्तियों में कल्पित किये गये हैं। अग्नि और सूर्य शुद्ध भौतिक चमत्कृति-जनक चेतन शक्ति की भाँति कल्पित किये गये। मित्र और वरुण ये क्रमशः दिन और रात के स्थान पर आरोपित हुए। सवितृ वर्षा ऋतु के पृथक् सूर्य के रूप में परिचित हुआ। पूपण धान्य और वनस्पतियों का पोषण करने वाले वसन्तकालीन सूर्य में आरोपित हुआ। उषस् प्रभात की देवी और इन्द्र लड़ाक्, विजयी, अधिक मात्रा में सोम पीने वाला, समूचे बैल को भूनकर खाने वाला आकाश का देव हुआ। मरुत् मारने वाला इन्द्र का सहचर हुआ। ऋग्वेद के वुध सूक्त इन्द्र के रचे हुए हैं। ऋपि जब सूक्त रचने लगे तो इन्द्र ने उनमें प्रविष्ट होकर सूक्त रचे। रुद्र पहले तूफान का देवता था तथा अदिति अखण्ड आकाश का। यद्यपि सभी देवताओं के भौतिक अधिष्ठान की संगति पूरी तौर पर नहीं बैठायी जा सकी, किन्तु भौतिक जीवन की भौतिक आकांक्षाएँ पूरी करने के लिए साधन प्राप्त करने की रीति यही हो सकती थी कि इन देवपुरुषों में भौतिक शक्ति को आरोपित किया जाय। पहले अग्नि और सूर्य पर ही बहुत सी भौतिक आवश्यकताएँ अवलम्बित थीं, इसलिए वैदिक ऋपि और गृहस्थों में अग्निहोत्र का प्रचलन हुआ। पीछे पशुपालकों में दश पूर्णमासेष्ठि विधि में गोपालन को प्रधान अंग बनाया गया और इस विधि का फल स्वर्ग प्राप्ति बताया गया। वैदिक मंत्रों की प्रार्थनाओं में अन्न, पशु, धन, शरीरबल, पत्नी, दास, पुत्र, शत्रु नाश, रोग-निवारण तथा तेज वर्चसा आदि भौतिक इच्छाओं की ही माँग है। स्वर्ग ब्राह्मण ग्रन्थों में पीछे प्रविष्ट किया गया। यद्यपि वैदिक कर्मकाण्ड में मरणोत्तर पारलौकिक गति का विचार है अवश्य —परन्तु उसका ठीक-ठीक विव-

रण वहां नहीं मिलता। देवयानगति, पितृयाणगति, अघनभरा, देवलोक, पितृलोक आदि का उल्लेख वेद में है, परन्तु उनकी चर्चा उत्तर वैदिक साहित्य में—विशेषकर उपनिषद् में ही है। यह एक बड़ी ही चमत्कारिक बात है कि वेद में इन वस्तुओं की कल्पना मरणोत्तर नहीं है, यहां तक कि यम, जो नरक के अधिपति देव कहे जाते हैं, वास्तव में सूर्य पुत्र और वैवस्वत मनु के भाई थे। यह ऋचाओं के कर्ता भी हैं। ये अपवर्त, जो वर्तमान ईरान का एक भाग है, के राजा थे। इस प्रदेश को ही मृत्युलोक या दोजख कहते थे।[1] आप उपनिषद् में इसी यम और नचिकेता का वार्तालाप देख सकते हैं। नचिकेता मृत्यु के भेद को जानना चाहता था—परन्तु यम उसे बताना नहीं चाहता था। सम्भव है कि यह कोई राजनीतिक या कूटनीतिक विषय हो—परन्तु यम और मृत्यु का जिन अर्थों में हम ज्ञान है, उसने इस वार्तालाप को कुछ और ही रंग दे दिया है। यद्यपि उस रंग में उपनिषद् की उस बातचीत का कुछ भी अभिप्राय व्यक्त नहीं होता।

ऋग्वेद काल में ब्रह्मचर्य और गृहस्थ दो ही आश्रम विकसित थे। चार आश्रमों का उल्लेख उपनिषदों में प्रथम बार आया है। गौतम धर्मसूत्र[2] में तो यह स्पष्ट लिखा है कि वेद केवल एक गृहस्थाश्रम ही को मान्यता देता है। अथर्ववेद और ब्राह्मणों में ब्रह्मचर्याश्रम का, विशेषतः उपनयन का विधान विस्तार से है, परन्तु छान्दोग्य उपनिषद् में चार आश्रमों का उल्लेख है। सच पूछा जाय तो वैदिक आर्यों ने वानप्रस्थ और सन्यास को अवैदिक संस्कृति से बहुत पीछे लिया है।

संस्कारों की कल्पना भी उत्तर साहित्य में है। गौतम धर्मसूत्र में,[3] जो सब स्मृतियों से प्राचीन है, यज्ञ को भी संस्कारों में गिना गया है। वह चालीस संस्कार बताता है। अग्न्याधान, दस पूर्णमासेष्टि, सोमयाग, पशु-वध आदि को संस्कारों में गिना है। गर्भाधान आदि सोलह संस्कारों का सम्बन्ध अथर्ववेद में है। अथर्ववेद के कौशिक सूत्र एवं गृह्य सूत्रों में यह संस्कार विधि वर्णन की गयी है। बहुत करके स्वामी दयानन्द ने वहीं से संस्कार विधि को ग्रहण किया है, परन्तु प्राचीन गृह्य सूत्रों में 'सोलह संस्कार' ऐसा वर्गीयकरण कहीं नहीं है।

४. वर्ण विभाजन और ब्राह्मण-क्षत्रियों का गठबन्धन

यज्ञ ही से वर्णों के विभाजन का प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मण अपनी स्थिति को

---

1 Yama was the first to show the way and to arrive in the starty halls of deaths Yama become transformed into the king of Dead or Dozakh as Iran Was then called
(History of Persia, Vol 1, 107)

२ गौतम धर्म सूत्र ८।८।

३ गौतम धर्म सूत्र ८।१४।२४।

जानते थे—"ब्राह्मण राज्य नहीं कर सकता ।"[१] 'ब्राह्मण क्षत्रिय की सहायता विना कुछ नहीं कर सकता—क्योंकि उसकी शक्ति केवल मुख में है ।"[२] "क्षत्रियों की भुजाओं में बल है, इससे उससे मिलकर चलना अच्छा है ।"[३] इसलिए ब्राह्मण उसकी प्रशंसा में कहता है—"राजा साक्षात् प्रजापति है, इसी से वह बहुतों पर राज्य करता है ।"[४] "ऐन्द्राभिषेक से वह इन्द्र हो जाता है ।" अभिषेक के बाद गर्जना होती थी—"इसे साम्राज्य मिला, स्वराज्य मिला, वैराज्य मिला, यह स्वयं परमेष्ठ हुआ, सारे संसार का स्वामी, पुरन्दर और धर्मरक्षक हुआ ।"[५]

इस प्रकार ब्राह्मणों और क्षत्रियों का गठबन्धन होने पर वैश्यों और शूद्रों की स्थिति बहुत गिर गयी । पुरुष सूक्त में वैश्य की उत्पत्ति जंघा से बतायी है, परन्तु ताड्य ब्राह्मण में उसकी उत्पत्ति जननेन्द्रिय से कही गयी है । "उसके पास बहुत से पशु हैं, इसलिए वह ब्राह्मणों और क्षत्रियों का भक्ष्य है ।"—"उसे कितना भी खाया जाय, वह नहीं घटेगा ।"[६] इतना ही नहीं—"वैश्य गधा है, सदा दबा हुआ···[७] शूद्र के पास कोई देवता नहीं, इसलिए वह अन्य जातियों की चरण सेवा करे ।" "उसे सदा इधर-उधर दौड़ाओ और चाहे जब निकाल बाहर करो । इच्छा हो तो पीट दो, चाहो तो मार भी डालो ।"[८] "उसे किसी को दान देने या बेचने में हानि नहीं ।" "वह चलता-फिरता श्मशान है, इससे उसके इतने निकट वेद न पढ़े कि वह सुन सके ।"[९] "यदि वह जान-बूझकर श्रुति सुन भी ले, तो लोह या सीसा गलाकर उसके कान में डाल दो ।"[१०]

दसवें मण्डल में चार वर्णों का उल्लेख ऋग्वेद का उत्तरकालीन है । 'ब्रह्म' और 'क्षत्र' शब्द अवश्य प्राचीन है, पर वे वर्ण के वर्तमान अर्थों में नहीं । 'आर्य वर्ण' और 'दास वर्ण' भी आये हैं । इससे यह प्रकट होता है कि आर्यों की भाँति दासों का वर्ण भी महत्वपूर्ण था । प्रकट है कि विजित होने पर दासों को किस प्रकार आधीन होना पड़ा । वैदिकेतर भारतीय प्रजा को आधीन करने में यज्ञ

---

१. "न वै ब्राह्मणो राज्यायालम् ।" शतपथ ब्रा० ५।१।१।१२
२. "ब्राह्मणो मुखतो हि वीर्यं करोति मुखतो हि सृष्टः ।" ताण्ड्य ब्राह्मण-६।१।६
३. बाहुवीर्यो राजन्यो बाहुभ्यो हि सृष्टः । ताण्ड्य ब्रा० ६।१।७
४. "राप वै प्रजापतेः प्रत्यक्षमतां यद्राजन्यतस्मादेकः सन्बहूनामीष्ठे यद्वेव चतुरतरः प्रजापतिश्च तुरतरो राजन्यः ।" शत० ब्रा० ५।१।५।१४
५. ऐतरेय ब्रा० ३८।१
६. ऐतरेय ब्रा० ३८।१
७. शतपथ ब्रा० ११।२।३।१६
८. ऐत० ब्रा० ३५।३
९. आप० श्रौ०
१०. कात्या० श्रौ० तथा आप० श्रौ०

की धर्म संस्था ने बड़ी मदद दी।" प्रजापति ने यज्ञार्थ ही धन निर्माण किया है।"[1] ऐसी कल्पना दृढ़ हो उठी। खास-खास अवसरों पर वैश्यों और शूद्रों का धन अपहरण करना धर्मानुमोदित ठहराया गया। शूद्र प्रजा को चाहे जो दण्ड देने तथा उसे समाज से निकाल बाहर करने का किसी भी वैदिक आर्य को अधिकार था।[2]

स्मृतियों के कायदे कानून के अनुसार वैदिक आर्य ब्याज, मुनाफा या लगान शूद्रों या कनिष्ठों से उच्च वर्णों की अपेक्षा बहुत अधिक लेते थे। शूद्रों के हाथ में कृषि, पशु पालन और सेवा ये कार्य थे। शिल्प और कृषि अच्छे धन्धे थे, परन्तु उनका अधिकांश भाग ले लिया जाता था। शूद्रों से वार्षिक साठ टका ब्याज लेने का हक उच्चवर्गीयों को था।

श्रौत स्मार्त धर्म के अनुयायियों ने खूब कसकर वैदिकेतर जनों को दासता में रक्खा, और इसमें वैदिक संस्कृति की पवित्रता की सहायता ली। वैदिक धर्माचरण करने का इन्होंने दूसरों को अधिकार ही नहीं दिया, खासकर पुरोहित का धन्धा तो दूसरा कर ही न पाता था। विश्वामित्र को पुरोहित का कार्य करने के कारण बड़े-बड़े लांछन और कष्टों का सामना करना पड़ा। 'व्रात्यस्तोम' विधि सामवेद के ताण्ड्य ब्राह्मण में है, तथा कात्यायन के श्रौत सूत्र में भी है। इसका उद्देश्य अवैदिकों को वैदिक बनाने का था। परन्तु इसका उपयोग बहुत कम होता था। धर्मसूत्रों और स्मृतियों में शूद्र को वेद पढ़ने पर प्राण-दण्ड तक देने का विधान है। वैदिक यज्ञ और स्मार्त धर्म आर्य जन को पवित्रता तथा स्वामित्व देता था, और यह पवित्रता उसे ब्राह्मण द्वारा प्राप्त होती थी। इसलिए आर्यों में ब्राह्मण पुरोहितों का स्थान उत्तरोत्तर ऊँचा होता गया। लोग समझते हैं और गीता आदि ग्रन्थों में कहा भी है कि ब्राह्मण वह है—जो त्यागी, धर्मात्मा, ज्ञानी, शीलवान् और जितेन्द्रिय हो, परन्तु स्मृति के कायदे के अनुसार यह बात नहीं है। मनु ब्राह्मण के कर्म दान लेना-देना, वेद पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना ही बताते हैं। स्मृतियों के मत से ब्राह्मण यदि अन्य वर्ण की स्त्रियों से व्यभिचार करे, तो उसके लिए बहुत हल्का दण्ड है। वह सब वर्णों की स्त्रियों से विवाह कर सकता है, शूद्र स्त्रियों को रखैल या दासी की भांति रख सकता है।[3] इसके विपरीत शूद्र या अन्य वर्ण वाला ब्राह्मण स्त्री से व्यभिचार करे, या विवाह कर ले, तो उसे अत्यन्त कष्ट देकर उसके प्राण लेने का विधान है। ब्राह्मण को किसी भी अपराध में प्राण दण्ड नहीं मिल सकता। इस प्रकार समाज में वैदिक जनों को अवैदिक जनों की अपेक्षा अधिक जन्मसिद्ध सुविधाएं मिलती गयीं। श्रौत और स्मार्त कायदे कानूनों के अनुसार ब्राह्मण को भोग, ऐश्वर्य सम्पत्ति, सत्ता

---

१ कात्यायन स्मृति।

२ यथा कामोत्थाप्यः। यथा कामवध्यः। ऐतरेय ब्रा० ३५।३

३ वशिष्ठ धर्म सूत्र १८।१६

और सम्मान सम्बन्धी सर्वोपरि अधिकार प्राप्त हो गये। ब्राह्मण के लिए त्याग, तप, संयम आदि को कोई महत्व नहीं दिया गया। महत्त्व दिया गया केवल पुरोहितायी के स्थान को। न्यायदान का काम प्रथम ब्राह्मण को मिलता था— ब्राह्मण के न मिलने पर क्षत्रिय को। शूद्र को किसी हालत में नहीं। ब्राह्मण के लिए ब्याज और लगान सबसे कम है। पुरोहित के सारे कर माफ हैं। उसे अपने से नीचे के व्यवसाय करने की आज्ञा है, पर ब्राह्मण का व्यवसाय कोई नहीं कर सकता। स्मृति धर्म के अनुसार प्राणान्त में भी उच्च वर्ण के काम शूद्र नहीं करे।

स्मृतियों का धर्मशास्त्र वर्णों के जन्मसिद्ध अधिकारों को सामान्य सामाजिक नियम के रूप में स्वीकार करने के लिए बना। वेदों का विषय यज्ञीय कर्मकाण्ड है, और उपनिषदों का ब्रह्मविद्या का व्याख्यान। परन्तु वर्णाश्रम धर्म का विस्तृत प्रतिपादन सूत्र ग्रन्थों और स्मृतियों में है। यह श्रौत और स्मार्त धर्मशास्त्र वैदिक आर्यो के समाज और धार्मिक रीति-रिवाज तथा कायदे कानून का शास्त्र है। वैदिक काल में जो कायदे-कानून तथा रीति-रस्म रूढ़ होते गये, उन्हीं को ग्रन्थ रूप से सूत्रों और स्मृतियों में संग्रह किया गया है। स्मृति का अर्थ है—वैदिक आर्यों के रीति-रिवाज और सामाजिक तथा धार्मिक नियमों की स्मरणपूर्वक की गयी नोंध, याददाश्त और सूचनाएँ। इसी से मनु आदि जोर देकर यह कहते हैं— कि स्मार्त धर्म वेदमूलक है। वेदोत्तर काल में जो नयी बातें समाज में प्रविष्ट हुई हैं, उनका समावेश भी इन स्मृतियों में है। इस स्मार्त ग्रन्थों में गौतम, आपस्तम्ब, वशिष्ठ, शंख, लिखित, मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, वृहस्पति आदि सब एक सी ही समाज संस्था का प्रतिपादन करते हैं, जिनमें मूलतः ब्राह्मणों की श्रेष्ठता और शूद्रों की हीनता का महत्व प्रदर्शित है।

वेदोत्तर काल ही में क्षत्रियों में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के विपरीत आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। यह आन्दोलन दो रूपों में खड़ा हुआ। एक तो यह—कि कुछ क्षत्रिय ब्राह्मणत्व के अधिकार माँगने लगे। विश्वामित्र और वशिष्ठ के झगड़ों का मुद्दा यही था। और भी कई कुल विश्वामित्र की भाँति ब्राह्मण हो गये।[1] दूसरा आन्दोलन क्षत्रियों की अपेक्षा ब्राह्मणों के अधिक अधिकारों के विपरीत था। एल, पुरूरवा, नहुप, वेन, हैहय, सहस्रर्जुन, वैतहव्य, सृंजय आदि राजा और राजवंश ब्राह्मणों के श्रेष्ठत्व के विरुद्ध लड़े। वेन ने यज्ञ और ब्राह्मणों की दक्षिणा का विरोध किया। ब्राह्मण के कर माफ थे, यह रियायत हैहय और वैतहव्य राजाओं ने रद्द कर दी।[2] उन्होंने ब्राह्मणों की गौओं की जबरदस्ती कुर्की करा ली। परशु-राम ने ब्राह्मणों के अधिकार के लिए संगठित युद्ध किया। अन्त में ब्राह्मण कुल,

---

१. हरिवंशपुराण।
२. अथर्ववेद।

राजकुल, राजसत्ता और पुरोहित महत्व आदि झगड़ों का निर्णय महाभारत संग्राम में ही हुआ। उसमें क्षत्रिय वर्ग नष्ट हो गया और ब्राह्मणों का स्थान समाज में फिर दृढ़बद्ध हुआ। परन्तु इसी बीच क्षत्रियों ने एक और दृढ़ कदम बढ़ाया और उपनिषदों के रूप में ब्रह्मतत्व स्थापित कर, उस ब्रह्मज्ञान से ब्राह्मणों को वंचित करने की भरपूर चेष्टा की। इस ब्रह्मवाद ने कर्मकाण्ड और यज्ञ संस्था को दुर्बल कर दिया। उसमें जीर्ण होने के लक्षण व्यक्त होने लगे। यज्ञ धर्म का निर्वाह कठिन हो गया और वैराग्य, गम्भीर विचार, सदाचार, सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह के आधार पर अवैदिक धर्म के संगठन होने लगे।[1]

५. सामाजिक जीवन

यद्यपि ऋग्वेद के हिमागम पूर्व के काल पर हम प्रकाश नहीं डाल सकते परन्तु हिमागम के बाद जब आर्य भारतवर्ष में आ पहुँचे थे, उस समय की बहुत कुछ बातों का हम अनुमान लगा सकते हैं।

वैदिक काल में स्त्री पुरुषों के विवाह सम्बन्ध युवावस्था में उनकी इच्छा से होते थे और वे सम्बन्ध आजीवन रहते थे। 'विवाह' शब्द नहीं था, कन्यादान नहीं होता था। कन्यादान का एक ही मंत्र अथर्ववेद में मिलता है जो आधुनिक है। पति के मरने पर पत्नी का दूसरे पुरुष से पूर्ववत् सम्बन्ध हो जाता था। स्त्रियाँ माता के वंश में नहीं गिनी जाती थीं। न वे माता की वारिस हो सकती थीं। पिता कुटुम्ब का रक्षक और पालक होता था। माता पर बच्चों का दायित्व रहता था, और बच्चे माता की सम्पत्ति होते थे। जाति और वर्ण ऋग्वेद के काल में नहीं थे—कुटुम्ब थे और पिता उनका मुखिया या गृहपति होता था।

पशु-पक्षियों के पालतू करने और पहचानने का हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं। शिल्प में घर गाँव नगर बसाना, सड़क, कुएँ, बगीचे बनाना, नावों का प्रयोग करना, सूत कातना, वस्त्र बुनना ऊन बनाना, चर्म के वस्त्र तैयार करना, रंगना और लकड़ी का काम आर्य बहुत अच्छी तरह जान गये थे।

खेती उनका प्रधान कार्य था, खेती के सामान—हल, बैलगाड़ी, छकड़ा, पहिया, धुरा, जुआ आदि का बार-बार उल्लेख आया है। बहुत से कुलपति अपने परिवार के साथ उत्तम चरागाहों की खोज में भारत में आगे को बढ़ रहे

---

१ हेमचन्द्रराय चौधरी का मत है—कि गुणाख्य साङ्ख्यायन बुद्ध का समकालीन था और उद्दालक आरुणि उसके गुरु का गुरु था—जो विदेह जनक का समकालीन था। शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित गुरु परम्परा के आधार पर वह सांजीवी पुत्र उद्दालक से पाँच पीढ़ी बाद का ऋषि है। इस आधार पर शतपथ और बृहदारण्यक उपनिषद् की रचना बुद्ध के बाद की प्रमाणित होती है।

थे। वे अनार्यों से युद्ध करते थे। युद्ध के शस्त्र और ढंग हम पीछे बता चुके हैं। स्वर्ण, चाँदी और लोहा उन्हें मिल चुका था।

वैदिक आर्य गौर वर्ण के, सुन्दर, कद्दावर, पुष्ट, योद्धा, सहिष्णु और बुद्धिमान थे। वे सदा अग्नि साथ रखते थे। वे गम्भीरता से प्रकृति का अध्ययन करते और उनके रहस्यों को मौलिक ढंग से खोजते थे।

आर्यो को समुद्र और समुद्र यात्राओं का पूरा अनुभव था। व्यापार में व्यवहार कुशलता बढ़ गयी थी और वस्तुओं का यथावत् विनिमय होता था। जौ और गेहूँ की खेती मुख्य थी। आर्य लोग माँस खाते थे। नशे की चीज केवल एक सोम बूटी थी जो दूध मिलाकर पी जाती थी। परन्तु जब आर्य पूर्व में दूर तक पहुँच गये तब सोम उन्हें कम मिलने लगा और वे फिर मद्य बनाकर उससे सोम का काम लेने लगे। ऊन और सूत को रंगकर सुन्दर वस्त्र बनाने की कला बहुत उन्नत हो गयी थी। वे बनों में आग लगाकर उन्हें साफ करते और उसे 'पृथ्वी का मुण्डन' कहते थे। रथ बहुत सुन्दर बनाते थे। स्वर्ण के गहने और लोहे के शस्त्र बहुतायत से बनते थे। गले, हाथ, पैर और सिरों पर आभूषण पहने जाते थे। लोहे के नगरों का भी जिक्र मिलता है जो कदाचित् किले होंगे। भवन हजारों खम्भों से युक्त पत्थरों की दीवारों के बनते थे। राजा और प्रजापति पिछले दिनों में बन गये थे, वे हाथियों पर मन्त्री के साथ निकलते थे। बकरे, भेड़, साँड़, भैंसे और कुत्ते बोझा ढोया करते थे। सिन्धु से सरस्वती तक और पर्वतों से समुद्र तक का समस्त भारतखण्ड ऋग्वेद काल में आर्यो ने जीत लिया था और गंगा तक उनका निष्कंटक अधिकार था। पाँच नदियों के निकट बसने वाले पाँच समूह या प्रजातन्त्र थे, जो पंचजन: के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ऋषि लोग सदाचारी गृहस्थों की तरह स्त्री, पुत्र धनधान्य के साथ रहते थे। खेती करते, युद्ध भी करते और होम करते थे। स्त्रियाँ परदा नहीं करती थीं। ऋषियों की कोई जाति वर्ण न था—उनके विवाह सम्बन्ध साधारण मनुष्यों के साथ होते थे। 'वर्ण' शब्द आर्य और अनार्यों में भेद करता था—आर्यो की भिन्न-भिन्न जातियों में वह कहीं भी भेद नहीं करता था। एक परिवार के भिन्न-भिन्न लोग अलग-अलग कार्य करते थे। प्रत्येक कुटुम्ब का पिता स्वयं पुरोहित होता था।

वेद में मूर्ति-पूजा या मूर्ति निर्माण का कहीं भी उल्लेख नहीं। वे लोग मूर्ति की पूजा नहीं करते थे। न वे कोई मन्दिर आदि बनाते थे। प्रत्येक परिवार में अग्नि सुरक्षित होती थी और वे वेदमन्त्र गा-गाकर उसमें नित्य नया दधि तथा कुछ घृत डाल दिया करते थे। स्त्री-पुरुषों के समान अधिकार थे। वे यज्ञ में समान भाग लेती थीं। कुछ स्त्रियाँ स्वयं ऋषि पद प्राप्त कर चुकीं थीं और विदुषी थीं। बहुत स्त्रियाँ होम करती और ऋचाएँ पढ़ती थीं। कुछ स्त्रियाँ आजन्म कुमारी रहती थीं। विवाहित रहना अनिवार्य न था। ये कुमारियाँ पिता की सम्पति में से

कुछ पाली थीं। पत्नियाँ चतुर और परिश्रमी होती थीं। वे घर के सभी कार्य प्रातःकाल बहुत तड़के उठकर करना आरम्भ कर देती थीं। कुछ व्यभिचारणी स्त्रियाँ भी थीं। जुआ सेवन का प्रचार था पर वह निन्द्य माना जाता था। विवाह की प्रतिज्ञाएँ उच्चकोटि की होती थीं। बड़े बड़े धनपति और राजा अनेक पत्नियाँ रखते थे। स्त्रियों की सौतों का उल्लेख मिलता है। परन्तु इस कुरीति का उल्लेख अन्तिम सूक्तों में है। किसी के यदि पुत्र नहीं होता था तो वह अपनी पुत्री के पुत्र को गोद लेता था। परन्तु पुत्र के रहते पुत्र ही समस्त सम्पत्ति का अधिकारी होता था—पुत्री नहीं। गोद लेने की पद्धति अधिक पसन्द न थी। ऐसे पुत्र उत्पन्न करने की लालसा खूब थी जो अन्न उत्पन्न करें और शत्रुओं का नाश करें। मृत्यु के बाद परलोक जाने में विश्वास था। मृतक का अग्नि संस्कार कराया जाता था। मृतक की भस्म पर मिट्टी के ढूहे उठाये जाते थे। विधवाएँ दूसरे पतियों से सम्बन्ध करती थीं। वे वैधव्य का दुःख सहन करें यह वैदिक ऋषि नहीं चाहते थे। ऋग्वेद के देवताओं का वर्णन हमने पीछे किया है, उससे पता चलेगा कि उस काल के ऋषि गण किस प्रकार प्रकृति की शक्तियों का अध्ययन कर रहे थे।

ऋषियों को वैदिक सूक्तों के जानने के कारण सम्मान पद मिलता था। राजा उन्हें पुरस्कार देते थे। खास खास कुछ परिवार बहुत प्रसिद्ध हो गये थे जिनमें विश्वामित्र और वशिष्ठ के कुल अधिक प्रसिद्ध थे। परन्तु धर्माचार्य और योद्धा एक ही होते थे—यह बात बहुत स्पष्ट है। परन्तु न वे ब्राह्मण थे और न क्षत्रिय यह बात ध्यान देकर समझ बूझने के योग्य है।

ब्राह्मण तथा उपनिषद्-काल के सामाजिक जीवन का प्रारम्भ ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व अनुमान किया जा सकता है। यह वह काल था जब आर्य सतलज को पार करके आगे बढ़ आये थे और उनने गंगा जमुना के किनारे किनारे काशी और उत्तर बिहार में बड़े बड़े राज्य स्थापित किये थे। ब्राह्मणों, उपनिषदों और आरण्यकों में गंगा घाटी में रहने वाले इन उन्नत आर्यों की कुरु, पांचाल, कौशल और विदेह जातियों उनके प्रबल राज्यों तथा सभ्यता का आभास मिलता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि पुरोहितों का उस समय प्राबल्य हो गया था—परन्तु उपनिषद् बताते हैं कि क्षत्रियों की भी प्रधानता थी। मालूम होता है ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों इस समाज में अपना जातीय स्थान स्थापित करना चाहते थे। उस समय उनका केवल व्यक्तिगत स्थान था पर धीरे धीरे जातीय स्थान बन रहा था। ब्राह्मण ग्रन्थों को तब तक ईश्वरीय ज्ञान माना जाता रहा था और वेद ब्राह्मणों की व्याख्या के अनुकूल समझे जाते रहे थे। उत्तर भारत में जनक, अजातशत्रु, जनमेजय और परीक्षित आदि प्रतापी राजाओं के वर्णन हमें देखने को मिलते हैं परन्तु दक्षिण भारत की बस्तियों और निवासियों का कोई वर्णन नहीं है। अतः अवश्य ही दक्षिण प्रदेश आर्यों के लिए अपरिचित था।

कुरु और पांचाल आर्य राजाओं के प्राचीन राजवंश थे। आधुनिक दिल्ली के निकट कुरुओं की प्रबल राजधानी थी और ये वही चन्द्रवंशी पुरुष थे जिनका जिक्र सुदास के युद्धों में मिलता है . ऐतरेय ब्राह्मण से पता चलता है कि उत्तर कुरु तथा उत्तर माद्र लोग हिमालय के उस पार रहते थे। टालमी का 'ओहोर-कोर्टे, उत्तर कुरु ही है परन्तु हमारा मत है यह जाति काशगर के रास्ते काश्मीर में बसती हुई गंगा की घाटियों तक आयी थी। द्वाव में कुरुओं के बस जाने पर पांचाल लोग भी आगे को बढ़े और उन्होंने कन्नौज के निकट अपने राज्य को स्थापित किया। ये पांचाल कदाचित् वही पंचजन हैं जिनका उल्लेख ऋग्वेद में है।

इन दोनों जातियों के वर्णन से ब्राह्मण ग्रन्थ भरे पड़े हैं। इनके यज्ञाडम्बरों और पुरोहितों के ठाठ, पराक्रम, विद्या और सभ्यता का ब्राह्मणों से बड़ा पता चलता है। अब ये केवल किसान जाति या तपस्वी न थे—इनके पास राज्य-संपदा, सुशिक्षित सेना, स्थायीराज महल, मन्त्री, राजसभा, हाथी, घोड़े, पैदल, रथ, योद्धा सब सामग्री थी। पुरोहित धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रहे थे और धर्म-क्रियाओं को बढ़ाये चल रहे थे। धार्मिक और सामाजिक कार्यों की यथा नियम शिक्षा थी। स्त्रियों का उचित आदर था एवं वे स्वतंत्र थीं—पर्दा न था। परन्तु कुछ लोग अनेक पत्नी करने लगे थे।

कुरु पांचालों में युद्ध होते थे। जब जमुना और गंगा के बीच की धरती भर गयी तो उद्योगी अधिवासियों के नवीन झुण्ड गंगा पार कर आगे बढ़े। वे बराबर नदियाँ पार करते तथा जंगलों को साफ करते हुए पूर्व की ओर गण्डक नदी तक बढ़ गये और राज्य स्थापित किये। गण्डक कोशल के पूर्व में तथा विदेह के पश्चिम भाग में थी। अन्ततः विदेहों का राज्य समस्त उत्तर भारत में प्रधान राज्य हो गया।

ब्राह्मण और उपनिषद दोनों ही में प्रतापी विदेह जनक का पता चलता है जो प्रबल राजा ही न था, विद्वान और विद्वानों का हितैषी भी था। वह शास्त्रार्थ किया करता था—विद्वानों को खुब दान भी देता था। उसने अक्षय कीर्ति प्राप्त की थी। एक बार काशियों के प्रतापी राजा अजातशत्रु ने कहा था कि 'सचमुच सब लोग यह कहकर भागे जाते हैं कि जनक हमारा रक्षक है।'

जनक गूढ़ ब्रह्मज्ञानी था। वह ब्रह्मज्ञान जो ईसा से २००० वर्ष प्रथम था, किसी ब्राह्मण ने नहीं प्राप्त किया था, क्षत्रियों ही को प्राप्त था।

ग्यारवाँ अध्याय

१. प्राक्वेदकालीन भारतीय संस्कृति

ऋग्वेद मे 'शूष', 'शुष्म', 'मितज्ञु' आदि नाम आये हैं।[1] एलाम की राजधानी प्राचीन काल म सुसा-शुषन (Shushan) थी। सम्भव है शूष या शुष्म ये दोनो शब्द एलाम के प्रथम सम्राट इन्द्र के लिए प्रयुक्त हुए हों। सायण ने मितज्ञु का अर्थ मितजानुक किया है पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह शब्द एलाम के वायव्य म रहने वाले 'मितन्नि' (Mitanni) लोगो के लिए प्रयुक्त हुआ है जो आर्यों के बड़े मित्र भी थे।[2] इन कारणो से यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि प्रारंभिक वेदकाल म आर्य लोग एलाम ही के निवासी थे। इसी से उनकी संस्कृति पर बैबिलोनियन संस्कृति की छाप है। हमने बताया कि एलाम के दक्षिण कोण पर ही बेबिलोन साम्राज्य था तथा उससे आर्यों के अच्छे मैत्री सम्बन्ध भी थे। उर (Ur) और उम्मा (Umma) नगर के निवासियो का उल्लेख हम ऋग्वेद मे पाते है।[3]

इन उद्धरणो से हम जान सकते हैं कि पश्चिम के मितज्ञु या मितन्नि और दक्षिण के उरु, ऊमा आदि बैबीलियनो स आर्यों के जहाँ मित्रता सम्बन्ध थे वहाँ पणियनो से, जो उनके उत्तर म थे, उनकी शत्रुता थी। इसके प्रमाण भी ऋग्वेद म मिलते हैं।[4] आवेस्ता म दो स्थानो पर इन्द्र का वर्णन है और वहाँ उसे दैत्य या राक्षस कहा गया है। इससे इस ऋचा का समर्थन होता है। आवेस्ता मे ऐसे वर्णन बहुत हैं कि इन कुकर्मी देवो को अहुरमज्द की प्रार्थना से कैसे भगाया

---

१ 'अव ग्रहेशरमासाय शूषमाशुषम्', ऋ १।६२।१

२ बोघज़ कोई (Boghaj-Koi) में मिले एक मितन्नि राजा के लेख से प्रतीत होता है कि वे लोग आर्यों की भाँति मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य देवताओं की पूजा करते थे।

३ 'त्रिं सेना इषुवला घहद्यां सतोधीरा उरवो ग्रामसाहा', ऋ ६।७५।६, 'ये यवमास उरवो वा॰ प्तास्वैमितं इन्द्राभि वशियाजम्', ६।२१।१२, 'विश्वेभिरुमोभिरा गहि', २।२।११, प्रवपाम ऊमा', १०।६।७, 'मातुष विश्वे मदायम', १०।१२०।१

४ समायस्यमित प्रतनोरिव पर्णेव, ऋ १।१०५।८

जाय। परन्तु पूर्व काल में एलाम के और पर्शिया के आर्य मित्र की पूजा करते थे। मित्र सूर्य का नाम है जो मनु का पुत्र था तथा वरुण भी मनु का पुत्र था जो पर्शिया का प्राचीन अधिपति था। इन्द्र विजयी होकर एलाम का राजा अवश्य हुआ पर वह पर्शियनों का मित्र न बन सका।

लोकमान्य तिलक ने अपने एक लेख में अथर्व की एक ऋचा के 'तैमात' शब्द से 'तिअमात्' (Tiamat) का सम्बन्ध जोड़ा है।[1] बैबिलोनियों के मतानुसार 'तिअमात्' एक राक्षसी थी, उसी का अथर्व में उल्लेख है, ऐसा तिलक का मत है। पर पुल्लिग होने से 'तैमात' को 'तिअमात्' की संतान कहा जा सकता है। इस राक्षसी के पति का नाम 'अप्सु' था। उसका ऋग्वेद में श्री तिलक ने उल्लेख दिखाया है।[2] ऋग्वेद में कुछ स्थानों पर 'यव्ह' शब्द आया है, जैसे 'तू यव्ह नाम का देव।'[3] एक मन्त्र में तो 'य' देवता का नाम है।[4] 'य' सुमेरियन प्राचीनतम देवता है। उसी का नाम ऋग्वेद में अग्नि के साथ आया है। एलाम के राजा पुरुर्वस के साथ उर्वसी अप्सरा की प्रेम-कथा वेद में भी है और पुराणों में भी। उर्वशी शब्द उरु+अस को 'ई' प्रत्यय लगाकर बना है। सुमेरियन भाषा में 'अस' मनुष्य वाची है। इसलिए उर्वशी का अर्थ हुआ उर नगर की रहने वाली सुन्दरी। यह स्त्री पुरुर्वस के साथ एलाम आई थी। पीछे जब उसकी राजा से अनबन हुई तो वह चली गई। जाते समय उसका जो वार्तालाप पुरुर्वस से हुआ वह ऋग्वेद १०।९५ में है। ऋग्वेद में मिलने वाले अन्य बैबिलोनियन देवताओं के नाम है—'अंशन' (Anshan)। ऋग्वेद में इसका उल्लेख 'अंश' नाम से हुआ है।[5] सायण ने इसका अर्थ 'एतन्नामको देवोऽसि' किया है। 'एतन' (Etana) दूसरा देवता है जिसका उल्लेख ऋग्वेद में 'ऐतश' नाम से है।[6] बैबिलोनिया के मुख्य देवता इश्तर (Ishtar) और तम्मूज (Tammus) या दमुत्सि (Damutsi) का उल्लेख हम ऋग्वेद में पाते हैं। कुछ ऋचाओं में इन्द्र को 'मेष' संज्ञा दी गयी है।[7] सायण ने इसका अर्थ 'शत्रुभिः स्पर्द्धमानं' किया है।

---

१. 'असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च', अथर्व ५।१३।६ देखिये तिलक कृत Sri R. G. Bhandarkar Commemoration Volume, The Chaldean and Indian Vedas.

२, अप्सुजित्, ऋ० ८।१३६।११ कई स्थानों पर अप्सु का 'अभ्व' में रूपान्तर हुआ प्रतीत होता है—जैसे 'बाधते कृष्णमभ्वम्', १।९२।५, द्यावारक्षतं पृथिवीनो अभ्वात्, १।१८५।२-८आदि।

३. 'त्वं देवानामसि यव्ह होता', ऋ १०।११०।३

४. पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना, ऋ० ६।१५।५

५. 'त्वमंशो विदथेदेव भाजयुः', ऋ० २।१।४

६. स ऐतशो रजांसि देवः सविता महित्वना, ऋ० ५।८१।३

७. अभित्य मेषं पुरुहूतं मृग्मिय मिन्द्रं, ऋ० १।५१।१

२. आर्यों की सप्तसिन्धु विजय

यह एक महान् प्रागैतिहासिक घटना है। जब इस पर प्रकाश पड़ेगा तब इतिहास की रेखाएँ सहस्रों वर्ष पीछे खिसककर इस घटना का स्पर्श करेंगी। वैदिक काल में सिन्ध और पंजाब को 'सप्त सिन्धु' कहते थे, पीछे सिन्धु कहने लगे।[1] सप्त सिन्धु प्रदेश पर तब वृत्र का राज्य था। उसका दूसरा नाम 'अहि' था। वह दासों का नेता था।[2] दास का अर्थ गुलाम या हीन पुरुष नहीं—प्रत्युत् जिन दासों का वेद में उल्लेख है वे श्रीमन्त और सामन्त थे।

महाभारत में वृत्र गीता प्रकरण है। उसमें भीष्म के मुँह से वृत्र की बहुत प्रशंसा कराई गई है। इसी के समर्थन में ऐतरेय ब्राह्मण के ३५वें अध्याय के दूसरे खण्ड में एक कथा है जिसमें देवताओं द्वारा इन्द्र पर वृत्र को मारने, विश्वरूप को वध करने, यतियों को कुत्तों को खिला देने, असमर्थों की हत्या करने और बृहस्पति पर प्रतिप्रहार करने के पाँच अभियोग लगाने का उल्लेख है। तैत्तिरीय संहिता में लिखा है कि इसके लिए इन्द्र को प्रायश्चित करना पड़ा। पर कौषीतकी उपनिषद् में तो वह बड़े दर्प से कहता है—"मैंने यतियों को कुत्तों को खिला दिया पर मेरा बाल भी बाँका न हुआ...मातृ वध, पितृ वध, चोरी, भ्रूण हत्या से भी (मुझे) पाप नहीं लगता, चेहरे का रंग नहीं पलटता।"[3] उस काल में ऐसा जान पड़ता है कि बेबिलोनिया में मर्दुक (Marduk) के नाम से और एलाम तथा पर्शिया के मित्र के नाम से और सिन्धु में विष्णु के नाम से मनु पुत्र सूर्य की पूजा प्रचलित हो गई थी। विष्णु वृत्र का मित्र था। इन्द्र ने उससे कहा—"मैं वृत्र का वध करूँगा। मित्र विष्णु, तू इस मामले से दूर ही रहना।"[4] ऐसा ऋग्वेद की एक ऋचा में 'विक्रमस्व' पाठ है। सायण ने इसका अर्थ 'पराक्रम करो' किया है, पर 'दूर रहो' अधिक ठीक है।

इस बात को मान लेने के यथेष्ट आधार हैं कि सिन्ध और पंजाब में जो 'हरप्पा' और मोहिन्जोदारो' के अवशेष मिले हैं वे दास लोगों के समय के हैं। यदि ऐसा है तो दासों की संस्कृति बहुत ऊँची स्वीकार करनी पड़ेगी। परन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि बेबिलोनियन जनों की भाँति दास भी घोड़ों से परिचित

---

१ ऋ० १।३२।१२ १।३५।८ तथा २।१२।१२ में 'सप्त सिन्धून्' का प्रयोग है। ८।२४।२७ में सप्त सिन्धुषु शब्द है। ऋग्वेद के चौथे मण्डल के १७, १८ और १९वें सूक्त की १, ७ और ८वीं ऋचा में 'सिन्धून्' शब्द आया है।

२ 'विश्वा अपोअगृहद्दासपत्नी', ऋ० ५।३०।५, 'दासपत्नी रहिगोपा', १।३२।११, 'वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून्', ४।१९।८, 'योऽहत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून्', २।१२।३

३ यतीन्सालावृकेभ्य प्रायच्छं तस्य मे तत्र न लोम च नामीयते न मातृ वधेन न पितृ-वधेन स्तेयेन न भ्रूणहत्यया नास्य पापं च चकृषो मुखान्नीलं वेत्येति, कौषीतकि उ० ३।१

४ अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व, ऋ० ४।१८।११

नहीं क्योंकि इन दोनों नगरावशेषों में घोड़े का कोई अंकित चित्र नहीं मिला है। यह संभव हो सकता है कि ये दास सुमेरियन ही हों। वृत्र यद्यपि उनका नेता था, पर वह कोई बड़ा राजा नहीं प्रतीत होता। पर दास बड़े वीर थे। नमुचि दास ने स्त्रियों तक को इन्द्र से लड़ने भेजा था।[1] इन्द्र ने शंवरदास के निन्यानवे नगर नष्ट किये, फिर भी शंवर ४० साल तक इन्द्र के हाथ नहीं आया, पहाड़ों में छिप कर छापे मारता रहा।[2] त्वष्टा ने वृत्र की जाति का होने पर भी उसे वृत्र को मारने के लिए वज्र दिया। उसके इनाम में त्वष्टा के पुत्र त्रिशीर्ष को इन्द्र ने अपना पुरोहित बनाया। पीछे विद्रोह की आशंका से उसे भी मार डाला। इसी त्रिशीर्ष का नाम विश्वरूप भी था इसका उल्लेख तैत्तिरीय संहिता[3] में है। महाभारत के उद्योग पर्व में भी इस घटना की चर्चा है। त्रिशीर्ष को मारने पर तक्ष ने इन्द्र से कहा—"इस ऋषि पुत्र को मारकर भी तुम्हें ब्रह्महत्या का भय नहीं?" तब इन्द्र ने कहा—"कुछ परवा नहीं, पीछे मैं प्रायश्चित कर लूंगा।"[4] विश्वरूप की हत्या का उल्लेख ऋग्वेद १०।८।८६ में भी है। ऋग्वेद से पता लगता है कि इन्द्र ने दिवोदास के लिए दासों के १०० नगर नष्ट किये।[5] दिवोदास के पुत्र 'सुदाः' की भी इन्द्र ने सहायता की। इसी प्रकार त्रसदस्यु, पुरुकुत्स आदि को मिलाकर इन्द्र ने सप्तसिन्धु में अपना सार्वभौम राज्य स्थापित किया। ऋग्वेद में एक ऋचा है कि तुर्वश और यदु दास थे तो भी इन्द्र ने उनकी रक्षा की, पर अर्ण और चित्ररथ आर्यों का भी वध किया,[6] यह सब राज्य स्थापन के लिए।

३. इन्द्र वैदिक आर्यों के भारत का प्रथम सम्राट्

वैदिक साहित्य में इस इन्द्र के सम्बन्ध में जो इधर-उधर स्फुट विवरण मिलते हैं उनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कौशिक[7] गोत्र के किसी सामन्त राजा के वीर्य से एक कुमारी कन्या से[8] एक पुत्र हुआ। उसने लोक लाज और अपवाद से बचने के लिए छिपकर घर से बाहर गोशाला में[9] उसे चुपचाप

---

१. स्त्रियोहिदास आयुधानिचक्रे कियाकरन्नबला अस्य सेनाः, ऋ० ४।३०।६
२. 'यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्', ऋ० १।१२।११
३. तै० सं० काण्ड २।५।१
४. उद्योग पर्व अ० ६ श्लो० ३४-३५
५. 'भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय दाशुषे', ऋ० १।१३०।७
६. ऋ० ४।३०।१७-१८
७. 'मातून इन्द्र कौशिक', ऋ० १।१०।११ इस ऋचा में इन्द्र को कौशिक कहा गया है।
८. 'सद्योह जातोवृषभः कनीनः', ऋ० ३।४८।१ इस ऋचा में जो कनीन शब्द है उसका सायण ने 'कमनीय' अर्थ किया है जो ठीक नहीं है। कनीन का अर्थ होता है कन्यावस्था में जन्मा।
९. 'अवद्यमिव गुहा करिन्द्रंमाता वीर्येण न्यृष्टम्', ऋ० ४।१८।४ इस ऋचा का यह अर्थ है कि अपनी प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाने वाला समझ कर माता ने उस सामर्थ्यवान् पुत्र इन्द्र

वामदेव के अतिरिक्त और ऋषियों ने भी इन्द्र की स्तुति में ऋचाएँ रचीं। इसी से ऋग्वेद के चतुर्थांश सूक्त इन्द्र की स्तुति से भर गये। इसके बाद अग्नि, वरुण आदि देवताओं के सूक्त हैं जो आर्यों के पूर्वज थे और फिर देव हो गये थे। मित्र, वरुण, नासत्य, आर्यों के भी और पर्शियनों के भी देवता थे—जो मूलतः आर्य थे। विष्णु के नाम से सूर्य की पूजा दास करते थे।

४. कृष्ण इन्द्र का प्रतिस्पर्द्धी

ऋग्वेद की ऋचाओं में इन्द्र की स्तुति तो है, पर तीन ऋचाएँ देखिये—

शीघ्रगामी कृष्ण ने दश सहस्र सेना के सहित अंशुमती नदी के समीप छावनी डाली। महाघोर शब्द करने वाले उस कृष्ण के पास इन्द्र आया और मैत्रीपूर्ण सन्धि की बातचीत की। अपनी सेना से उसने कहा—"अंशुमती नदी की तंग घाटियों में द्रुतगामी तथा आकाश के समान तेजस्वी कृष्ण की सेना छिपी बैठी है। अब तुम उससे युद्ध करो।"[1] इसके बाद कृष्ण ने युद्ध में बड़ा पराक्रम दिखाया। इस देवतार सेना के आक्रमण सहन करने में इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता ली।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र को अंशुमती तट पर अपने देश से आने में काफी दिक्कत उठानी पड़ी होगी। पीछे कृष्ण के विकट व्यूह से घबराकर वह पराजय न होने ही को विजय मानकर वहाँ से बृहस्पति की सलाह से हट गया होगा। एक ऋचा से पता चलता है कि इन्द्र ने कृष्ण की गर्भवती स्त्रियों को मार डाला।[2]

भागवत के दशम स्कन्ध के २४ और २५ वें अध्यायों में यह कथा है कि नन्द आदि गोपालों ने यज्ञ से इन्द्र को संतुष्ट करना चाहा पर कृष्ण ने उसका विरोध किया और वह इन्द्र पूजा को रोककर गोवर्द्धन पर्वत पर चढ़ गये। इन्द्र ने वर्षा कर गोकुल का नाश किया चाहा तब कृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत उठाकर गोकुल को आश्रय दिया। भागवत की इस दन्त कथा से ऋग्वेद की ऋचाओं से कुछ निकट सम्बन्ध प्रकट होता है।

कृष्ण के सम्बन्ध में हम यहाँ कुछ और भी कहना चाहते हैं जिसमें मुख्य

---

१. अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रः।
आवत्त मिन्द्रः शच्याधमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त॥
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्त मुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्ण यववतस्थि वांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ॥
अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयन्तन्वति त्विषाणः।
विशो अदेवीरभ्या चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे॥ ऋ० ८।९६।१३-१५।
इन ऋचाओं के अर्थ में सायण ने 'तन्व' का अर्थ 'शरीर' किया है। १५वीं ऋचा में 'अभि' उपसर्ग का 'ससाहे' से संबंध जोड़कर उसका अर्थ 'जघान' अर्थात् मार डाला किया है। पर 'सह' धातु से वह अर्थ ध्वनित नहीं होता। धातु का अर्थ तो 'सहना' या 'जीतना' होता है।

२. यः कृष्णगर्भा निरहन्, ऋ० १।१०१।१

बात यह है कि कृष्ण कौन हैं तथा उनका कुल वंश जाति क्या है। इसका ठीक-ठीक अभी तक पता नहीं लगा है। साथ ही यदु के राज्य का भी कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक आधार नहीं है। कनिंघम ने जो मथुरा की खुदाई कराई थी उसमें यदु के नाम से विख्यात टीला बौद्धों का एक विहार स्तूप प्रमाणित हुआ तथा पुराणों में जो कृष्ण एवं कंस का वंश वृक्ष प्राप्त है उसके आधार पर यदु वंश की माथुर शाखा में वैवस्वत मनु की पुत्री इला और पुरूरवा की संतानों में ५२वीं पीढ़ी में राजा आहुक हुए थे। उनके समकालीन देवमीढ़ थे जो पूर्वोक्त वंश वृक्ष के ४६वें राजा वृष्णि से भिन्न किसी वृष्णि वंश के थे। इन्हीं के वंश में चौथी पीढ़ी में कृष्ण का नाम है।[1]

अब विचारने योग्य बात यह है कि इन्द्रप्रस्थ से हस्तिनापुर ६० मील तथा मथुरा ९० मील है। मथुरा से वृन्दावन और गोकुल ४।५ मील है। ऐसी हालत में इन प्रदेशों में तीन तीन चक्रवर्ती महाराज्य कैसे? तब क्या 'आसमुद्रांतंतीश' की उपाधि मात्र गप्प है? भागवत के अनुसार कंस प्रेरित अक्रूर गोकुल से कृष्ण को लेने के लिए वायुवेगी रथ पर चढ़ प्रातःकाल से सन्ध्या तक चलकर मथुरा से गोकुल पहुँचे। इस पर विचारना चाहिए कि यह ४।५ मील का सफर दिन भर में वायुवेगी (?) रथ पर पूरा किया गया। फिर कृष्ण जब अहर्निश गोकुल में गायें चराते थे—तब कंस जैसा सामर्थ्यवान् नृपति उन्हें अपने भौमासुर, वृत्रासुर, आदि योद्धाओं से पकड़वा नहीं सकता था? यह भी विचित्र बात है कि कृष्ण एक बार मथुरा आकर फिर गोकुल गये ही नहीं! महाभारत से प्रतीत होता है कि शिशुपाल और दुःशासन आदि दस सहस्र जंगल के अधिपति थे। ऐसी हालत में मथुरा, इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर के बीच महाराज्यों की कल्पना उचित नहीं।

कृष्ण पाण्डवों के समकालीन थे इसका कोई ऐतिहासिक आधार प्राप्त नहीं है। महाभारत में कंस और कौरवों का कोई सम्बन्ध नहीं दिखाया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि घोर आंगिरस ऋषि ने कृष्ण को यज्ञ की एक सरल रीति बताई थी जिसकी दक्षिणा थी तपश्चर्यादान-आर्जव-अहिंसा और सत्य।[2] जैन ग्रन्थों में कहा गया है कि कृष्ण के गुरु नेमिनाथ तीर्थंकर थे। यह यदि संभव हो कि नेमिनाथ और घोर आंगिरस एक व्यक्ति हैं तो कृष्ण की गोरक्षा की भावना पर प्रकाश पड़ेगा, क्योंकि इन्द्र से कृष्ण का एक विरोध यह भी था कि वह गोवध करके यज्ञ करता था। यदि कृष्ण ने इन्द्र का विरोध न किया होता तथा दिवोदास की भाँति इन्द्र का आधिपत्य स्वीकार कर लिया होता तो वह भी ऋग्वेद के एक प्रसिद्ध व्यक्ति हो गये होते।

• •

1. वायु पुराण ९९ ३, हरिवंश ३८, मत्स्य ४४।४६
2. अथ यत्तपोदानमार्जवमहिंसा सत्य वचनमिति ता अस्य दक्षिणा, छा० उ० अ० ३, १७।४